एचडी–05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

आधुनिक काव्य

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

आधुनिक काव्य

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रोफेसर (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक एवं सदस्य

प्रो.(डॉ.) कुमार कृष्ण
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग
हिमांचल प्रदेश विश्वविद्यालय,शिमला

डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्य एवं संयोजक,, हिन्दी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो.(डॉ.) सुदेश बत्रा**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो.(डॉ.) नन्द लाल कल्ला**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,जोधपुर
- **प्रो.(डॉ.) जवरीमल पारख**
  अध्यक्ष, मानविकी विद्यापीठ
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, नईदिल्ली
- **डॉ. नवलकिशोर भाभड़ा**
  प्राचार्य
  राज. कन्या महाविद्यालय, अजमेर
- **डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा**
  पूर्व प्राचार्य,
  राजकीय महाविद्यालय,सरदार शहर, चुरू

सम्पादन एवं पाठ्यक्रम-लेखन

संपादक

डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्य एवं संयोजक, हिन्दी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई-लेखक	इकाई-संख्या	इकाई-लेखक	इकाई-संख्या
• **डॉ. मीता शर्मा** सहायक आचार्य एवं संयोजक हिन्दी वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	1,12	• **डॉ. माधव हाड़ा** वरिष्ठ व्याख्याता, हिन्दी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिरोही	7,8
• **डॉ. दयाशंकर त्रिपाठी** हिन्दी विभाग सरदार पटेल महाविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, गुजरात	2,3,4	• **डॉ. देवेन्द्र गुप्ता** वरिष्ठ व्याख्याता वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली	11
• **डॉ. मनोज गुप्ता** पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी सुबोध पी.जी. महाविद्यालय, जयपुर	5,6,9,10	• **डॉ. रीता गौड़** प्राचार्य मालवीय कॉलेज फॉर गर्ल्स, मालवीय नगर, जयपुर	13,14,15,16

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया
निदेशक
अकादमिक

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

ISBN NO- 13/978-81-8496-134-8

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

आधुनिक काव्य

खण्ड/इकाई संख्या	खण्ड/इकाई विवरण	पृष्ठ सं.
(क)	**लम्बी कविता व खण्डकाव्य : स्वरूप-विश्लेषण, परम्परा और विकास**	
1	आधुनिक काव्य : पृष्ठभूमि	8–20
2	लम्बी कविता और खण्डकाव्य : स्वरूप-विश्लेषण, परम्परा और विकास	21–38
(ख)	**लम्बी कविताएँ : अध्ययन और विवेचन**	
3	'परिवर्तन'(सुमित्रानन्दन पंत) की व्याख्या और विवेचन	39–60
4	'परिवर्तन' कविता का अनुभूति एवं अभिव्यंजनात्मक पक्ष	61–80
5	'सरोज स्मृति'(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला') की व्याख्या व विवेचन	81–101
6	'सरोज स्मृति' कविता का अनुभूति व अभिव्यंजनात्मक पक्ष	102–118
7	'ब्रह्मराक्षस' (मुक्तिबोध) की व्याख्या एवं विवेचन	119–133
8	'ब्रह्मराक्षस' कविता का अनुभूति एवं अभिव्यंजनात्मक पक्ष	134–142
9	'दो चट्टानें' (हरिवंशराय बच्चन) की व्याख्या व विवेचन	143–162
10	'दो चट्टानें' कविता का अनुभूति व अभिव्यंजनात्मक पक्ष	163–176
11	'कुआनों नदी' (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना) की व्याख्या एवं विवेचन	177–192
12	'कुआनों नदी' (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना) कविता का अनुभूति एवं अभिव्यंजनात्मक पक्ष	193–208
(ग)	**खण्डकाव्य : प्रवाद पर्व (नरेश मेहता) का अध्ययन और विवेचन**	
13	नरेश मेहता : व्यक्तित्व और कृतित्व	209–224
14	'प्रवाद पर्व'(नरेश मेहता) खण्डकाव्य के संकलित अंशों की व्याख्या एवं विवेचन	225–252
15	'प्रवाद पर्व' का अनुभूति पक्ष	253–274
16	'प्रवाद पर्व' का अभिव्यंजनात्मक पक्ष	275–294

खण्ड परिचय

प्रिय विद्यार्थीगण । आप तृतीय वर्ष (हिन्दी) के प्रथम प्रश्न पत्र आधुनिक्। काव्य (एचडी-०5) का अध्ययन कर रहे हैं ।

इस पाठ में तीन खण्ड हैं । इन तीनों खंडों में विद्यार्थियों को आधुनिक काव्य का ज्ञान कराया जाएगा । इनमें भी प्रमुख रूप से दो उपविभाग हैं - लम्बी कविता और खण्ड काव्य । खण्ड (क) में दो इकाइयाँ हैं - इकाई संख्या 1 में आधुनिक काव्य की पृष्ठभूमि के रूप में सक्रिय सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिस्थितियों का ज्ञान कराया गया है क्योंकि बिना पृष्ठभूमि को समझे किसी काल के साहित्य का अध्ययन सरल नहीं होता । इसी खण्ड की इकाई संख्या 2 में आधुनिक काव्य की दो विधाओं - लम्बी कविता तथा खण्ड काव्य का शास्त्रीय पक्ष विवेचित किया गया है क्योंकि किसी विधा के स्वरूप को समझकर ही किसी रचना का आस्वादन किया जा सकता है ।

इस पाठ के खण्ड (ख) में तीन से लेकर चौदह तक कुल 10 इकाइयाँ हैं । इन इकाइयों में पाठ्यक्रम में निर्धारित लम्बी कविताओं का विवेचन और विश्लेषण किया गया है । प्रत्येक कविता में से परीक्षा में पद्यांशों की व्याख्या करनी होगी इसलिए निर्धारित कविताओं का व्यापक अध्ययन करना होगा । इकाई संख्या 3 में सुमित्रानन्दन पंत की कविता की व्याख्या से संबंधित अंशों को पढ़ने होंगे तथा कविता की साहित्यिक व्याख्या करने की कला का ज्ञान विद्यार्थियों को होगा । इकाई संख्या 4 में 'परिवर्तन' कविता के अनुभूति पक्ष (भावपक्ष) व अभिव्यंजना पक्ष (कला पक्ष) का ज्ञान विद्यार्थियों को कराया जाना अपेक्षित रहेगा । इस मूल्यांकन में कविता के प्रतिपाद्य, भावपक्ष व कविता में उद्वेलित रस के साथ कविता की भाषागत विशिष्टता, आलंकारिकता, सांकेतिकता, बिम्बात्मकता आदि का अनुशीलन किया गया है । इस प्रकार विद्यार्थी 'परिवर्तन' कविता का मर्म समझ सकेंगे और उसका मूल्यांकन कर सकेंगे ।

इसी क्रम में जो लम्बी कविताएँ इस प्रश्न-पत्र में निर्धारित हैं उनसे सम्बन्धित दो-दो इकाइयाँ ह्वै जो इस प्रकार हैं -

इकाई संख्या 5 व 6 - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लम्बी कविता ।

इकाई संख्या 7 व 8 - मुक्तिबोध कृत 'ब्रह्मराक्षस' लम्बी कविता ।

इकाई संख्या 9 व 10 - हरिवंशराय बच्चन कृत 'दो चट्टानें' लम्बी कविता ।

इकाई संख्या 1 व व 12 - सर्वेश्वरदयाल सक्सैना कृत कुआनो नदी' लम्बी कविता ।

इन कविताओं का विवेचन उसी प्रकार किया गया है जैसा पंत कृत 'परिवर्तन' का किया जाना बताया गया है । इसी तरह कविताओं के मूल्यांकन से विद्यार्थी हिन्दी की लम्बी कविताओं की साहित्यिक समीक्षा करने की समझ विकसित कर सकेंगे ।

इस पाठ के खण्ड (ग) में कुल 4 इकाइयाँ हैं जो पाठ्यक्रम में पाठ्यपुस्तक के रूप में निर्धारित कवि नरेश मेहता रचित 'प्रवाद पर्व' नामक खण्ड काव्य से सम्बन्धित है । इकाई संख्या 13 में कवि नरेश मेहता के व्यक्तित्व और कृतित्व का सम्यक परिचय दिया गया है । इकाई संख्या 14 में खण्डकाव्य के संकलित अंशों की व्याख्या व विवेचन किया गया है । इकाई संख्या 15 में खण्ड काव्य 'प्रवाद पर्व' का मूल्यांकन तथा प्रतिपाद्य, भाव पक्ष तथा रस विधान की पड़ताल की जाएगी । इकाई

संख्या 16 में 'प्रवाद पर्व' खण्डकाव्य में कला पक्ष का विवेचन किया गया है जिसमें खण्डकाव्य के रूप में इस काव्य की समीक्षा, 'प्रवाद पर्व' की भाषागत विशेषता का परिचय, छंद विधान, अलंकार विधान, बिम्ब विधान आदि का सम्यक्' विवेचन निहित है ।

इस प्रकार इस पूरे पाठ्यक्रम में लम्बी कविता और खण्डकाव्य विधाओं का विशद् अध्ययन करने का अवसर मिलेगा और विद्यार्थीगण इन रूपों के रचना-विधान की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे । विस्तृत व गहन अध्ययन के लिए सहायक व उपयोगी संदर्भ ग्रंथ सूची दी गई है, आप इन्हें भी देखे व अध्ययन करें । आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना सहित यह पाठ्यक्रम आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है ।

इकाई - 1

आधुनिक काव्य : पृष्ठभूमि

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आधुनिकता का स्वरूप

1.3 आधुनिक काल का आरम्भ

1.4 आधुनिक काव्य की पृष्ठभूमि

- 1.4.1 राजनीतिक पृष्ठभूमि
- 1.4.2 धार्मिक व सामाजिक पृष्ठभूमि
- 1.4.3 साहित्यिक पृष्ठभूमि
- 1.4.4 आर्थिक पृष्ठभूमि
- 1.4.5 शैक्षिक पृष्ठभूमि
- 1.4.6 प्रेस जनमत व यातायात के साधन

1.5 ब्रिटिश नीतियों का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

1.6 आधुनिक हिन्दी काव्य का प्रारंभ व विकास

1.7 सारांश

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.9 संदर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल के संबंध में अपेक्षित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आधुनिकता के अर्थ व स्वरूप को समझ सकेंगे ।
- आधुनिक कालीन काव्य की पृष्ठ भूमि को समझ सकेंगे और पृष्ठ भूमि से प्रेरित आधुनिक चेतना से परिचित हो सकेंगे ।
- आधुनिक साहित्य की विषय-वस्तु एवं भाषा-शैली के प्रति उत्पन्न हुई सजगता से आप परिचित हो सकेंगे ।

1.1 प्रस्तावना

साहित्य अपने युग की उपज होने के साथ-साथ उसका मार्गदर्शक भी होता है । आधुनिक युग का साहित्य जिस परिवेश में विकसित हुआ उसे समझने के लिए हमें आधुनिक युग को लाने वाली स्थितियों और विचारधाराओं का अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है ।

इस इकाई में हिन्दी साहित्य के विकास को दृष्टिगत रखते हुए इस बात को भी स्पष्ट करेंगे कि रीतिकाव्य कैसे आधुनिक काव्य में बदल गया है । ब्रज भाषा का स्थान खड़ी बोली ने और दरबारी कविता का स्थान आम आदमी के काव्य ने कैसे ले लिया । राष्ट्रीयता की भावना ने तत्कालीन साहित्य को किस तरह से प्रभावित किया इस पर भी विचार करना आवश्यक है । आधुनिक युग में छापेखाने के आगमन और हिन्दी-गद्य के विकास से जनचेतना कैसे प्रभावित हुई इस पर भी विचार किया जाएगा । आधुनिक हिन्दी साहित्य से ठीक पहले जो रीतिकालीन काव्य रचा जा रहा था, आधुनिक युग का काव्य किन अर्थो में कथ्य और शिल्प के स्तर पर उससे अलग हुआ इस पर भी इस इकाई में विचार करना उपयोगी होगा । हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग तथा छायावाद परवर्ती युग का सम्पूर्ण साहित्य आ जाता है, जिसमें गद्य और पद्य की विभिन्न विधाओं में रचा साहित्य शामिल है । इस विशाल साहित्य की मूल-प्रवृतियों को समझने के लिए प्रस्तुत इकाई में विवेचित पृष्ठभूमि सहायक रहेगी

1.2 आधुनिकता का स्वरूप

आधुनिकता का सम्बन्ध वर्तमान काल से जोड़ा जा सकता है परन्तु साहित्य में 'आधुनिक' शब्द केवल काल सूचक न होकर कुछ नई प्रवृतियों अथवा स्थितियों का सूचक है । 'आधुनिकता' से अभिप्राय उस नए भावबोध से है जो पश्चिम में नवजागरण से पन्द्रहवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ और भारत में 19वीं शताब्दी के नवजागरण और स्वाधीनता संग्राम के परिणामस्वरूप सामने आया । 'अधुना' धातु से आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकतावाद शब्द बने हैं । 'अधुना' का कोशगत अर्थ है 'इस समय का' या 'अब का' । इस प्रकार वर्तमान में बहुत कुछ ऐसा घटित होता रहता है जो पारंपरिक, पुरातन अथवा रूढ़िवादी है किन्तु जिसे आधुनिक नहीं कहा जा सकता । 'आधुनिकतावाद', आधुनिकता का रूढ़ रूप है, जिसमें आधुनिकता के बाह्य चिन्हों पर अधिक बल दिया जाता है परन्तु उसमें नयेपन का अंश क्रमश: मिटता जाता है और वह रूढ़ हो जाता है । सरल शब्दों में आधुनिकता को प्राचीनता अथवा मध्यकालीन बोध से भिन्न नवीन ज्ञान-विज्ञान से प्रभावित मानव समाज कहा जा सकता है । जब कभी निरंतर चली आ रही परम्परायें अपना मूल्य खो बैठती हैं और उनके स्थान पर नयी मान्यताएँ और मूल्य उत्पन्न हो जाते हैं तो वह स्थिति नवीनता की स्थिति कहलाती है और यही एक प्रकार के आधुनिक है और इसी से आधुनिकता शब्द बना है ।

आधुनिकता का ठीक ठाक अर्थ समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि आधुनिकता न तो पश्चिम का अंधानुकरण है, न औद्योगीकरण है और न ही अपनी परम्परा का परित्याग । आधुनिकता के सम्बन्ध में डॉ. पुष्पपाल सिंह की यह धारणा पर्याप्त संतुलित है कि आधुनिकता को एक प्रकार की प्रश्नाकुलता कहा जा सकता है जो प्रत्येक मूल्य और स्थिति को विवेक की तुला पर खरा पाकर ग्रहण करती हैं । इस प्रकार आधुनिकता एक सतत् प्रक्रिया है जो हर युग में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहती है ।

1.3 आधुनिक काल का आरंभ

हिन्दी साहित्य में प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन (सन् 1857) के पश्चात् मोटे तौर पर अंग्रेजों की दासता के प्रति विद्रोह की भावना ने जन्म लिया था । अपनी नियति के प्रति जागरूकता तथा

नियति को बदलने के लिये एक नवीन उद्योग और पराक्रम का भाव भारतीय समाज में जन्म लेने लगा था । इसी काल खण्ड में देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक पुनर्जागरण की लहर उत्पन्न हुई । उत्तरी भारत में आर्य समाज, बंगाल में ब्रह्म समाज, महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज तथा थियोसोफिकल सोसायटी के द्वारा प्रवर्तित विचार धाराओं ने भारत के जनमानस में एक नवीन हलचल उत्पन्न कर दी थी । समाज सुधार कार्यक्रम के द्वारा अंधविश्वासों पर प्रहार, रूढ़ियों और कुप्रथाओं का विरोध, शिक्षा का प्रचार, प्रसार किया गया । अपने स्वर्णिम अतीत के प्रति गौरव का भाव समस्त भारतीय भाषाओं के माध्यम से रचे गये साहित्य के द्वारा जनसाधारण में उत्पन्न किया गया । एक नया वायुमण्डल समाज में निर्मित होने लगा ।

जहाँ तक हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र का सम्बन्ध है इसमें भी आर्यसमाज की विचारधारा अपनी जड़ जमा चुकी थी । कांग्रेस की स्थापना के साथ एक नवीन राजनीतिक चेतना का भी प्रचार प्रसार होने लगा था । 19वीं सदी के अंतिम वर्षो में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नेतृत्व में नवीन साहित्यिक रचनाशीलता सामने आने लगी । काशी को केन्द्र बना कर भारतेन्दु मण्डल के पत्रकारों, लेखकों और कवियों के द्वारा समाज में नवजागरण की लहर उत्पन्न की जाने लगी ।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि सन् 1857 के बाद अंगेजों ने देश व्यापी शासन को चुस्त दुरुस्त बनाने के लिये रेल, तार और डाक सुविधाओं का विस्तार किया । आधुनिक शिक्षा के लिये स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना की गयी ताकि अंग्रेजी हुकूमत को चलाने के लिये अंग्रेजी भाषा से परिचित सरकारी कर्मचारियों की फौज खड़ी हो सके । शिक्षा के प्रचार-प्रसार और मुद्रण की सुविधाओं के अस्तित्व में आने से अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ छपने लगीं । इन सबका मिला जुला प्रभाव हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र पर भी पड़ा । हिन्दी गद्य लेखन की शुरूआत इन्हीं परिस्थितियों में हुई । कविता की भाषा अब तक ब्रज भाषा ही थी, किन्तु शनैः शनैः ब्रज भाषा को अपदस्थ कर खड़ी बोली हिन्दी साहित्य रचना के क्षेत्र में अग्रसर होती गयी । कुल मिलाकर इन्ही परिस्थितियों में आधुनिकता का उदय हुआ ।

आरम्भिक काल का आरम्भ - हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का ऐतिहासिक अध्ययन करने के क्रम में सबसे बडी बाधा तो यह आती है कि इसका आरम्भ कब से माना जाए । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संवत् 1900 अर्थात् 1843 ई. से इसका आरम्भ माना है पर 1843 से 1868 तक की अवधि के खड़ी बोली गद्य साहित्य के निर्माण के पीछे एकत्र हो रही शक्तियों का विश्लेषण करने के बाद आधुनिक गद्य साहित्य परम्परा का वास्तविक प्रवर्त्तन 1868 के बाद ही माना है । 1868 के बाद वे आधुनिक साहित्य के प्रथम उत्थान का विवेचन करते है और इसी के अन्तर्गत भारतेन्दु मण्डल के सभी कृतिकारों और उस जमाने के पत्रकारों का भी हवाला देते हैं । इतना ही नहीं बल्कि वे नाटक की विधा से आधुनिकता की शुरुआत बताते हुए कहते हैं कि - आधुनिक गद्य साहित्य की परम्परा का प्रवर्त्तन नाटकों से हुआ ।

1.4 आधुनिक काव्य की पृष्ठभूमि

1.4.1 राजनीतिक पृष्ठभूमि

भारतीय साहित्य का अध्ययन इस बात की सूचना देता है कि शासन और साहित्य का कितना व्यापक सम्बन्ध था । वेदों से लेकर ब्राह्मण युग तक जितना साहित्य रचा गया, उस पर ब्राह्मणों की सत्ता की पूर्ण छाप है, किन्तु जब बाद में क्षत्रिय वर्ग ने सभी क्षेत्रों पर अपना अधिकार कर लिया तो, साहित्य के नायक राम और कृष्ण जैसे क्षत्रिय बनने लगे । आधुनिक काल में भी राजनीतिक परिस्थितियाँ साहित्य की प्रेरणा स्रोत रही । डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार " हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरम्भ सन् 1857 में हुआ पर भारतवर्ष के आधुनिक बनने की प्रक्रिया की शुरुआत एक शताब्दी पूर्व (1757) तभी हो गयी थी जब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में हराया था । "

1757 में अंग्रेजों ने बंगाल जीत लिया और 1857 में दिल्ली । इस बीच उनका राज्य क्रमश: भारत में फैलता गया । विजित प्रदेशों पर उन्होंने अपने ढंग से शासन व्यवस्था तथा अर्थव्यवस्था को लागू किया । लार्ड डलहौजी की लैप्स की नीति इस काल की प्रमुख घटना है । 1 857 का प्रथम स्वतंत्रता-युद्ध इस काल की प्रमुख घटना है । अंग्रेजी सेना के दमन और भारतीय राजा महाराजाओं के विश्वासघात के स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम असफल हुआ । जिसमें नाना साहब, तात्या टोपे और झांसी की रानी आदि वीर शहीद हुए । अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया । इस देश के लोग भी नये सन्दर्भ में कुछ नया सोचने और करने के लिए बाध्य हुए । साहित्य मनुष्य के वृहत्तर सुख-दुःख के साथ पहली बार जुड़ा । यह प्रक्रिया भारतेन्दु के समय में शुरू हुई, वह भी गद्य के माध्यम से । आधुनिक जीवन-चेतना की चिंगारियाँ जैसे गद्य में दिखाई पड़ी वैसी पद्य में नहीं । खड़ी बोली गद्य आधुनिक चेतना के फलस्वरूप ही सक्षम बन पड़ा ।

1.4.2 धार्मिक व सामाजिक पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आन्दोलन हुए । राजा राम मोहन राय के ब्रह्म समाज स्वामी दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज एनिबेसेन्ट की थियोसोफिकल सोसायटी स्वामी विवेकानन्द, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी आदि नेताओं तथा आन्दोलनों ने उपनिषद गीता आदि के ज्ञान की युग सम्मत पुनर्व्याख्यायें की थी । इनके द्वारा भारतीयों को अंधविश्वासों मुक्ति धर्म और कर्तव्य के सच्चे स्वरूप का ज्ञान तथा एक उन्नत, स्वस्थ व विवेकशील समाज का प्रशिक्षण मिला । एकाएक सभी भारतीय धर्मो ने अपने पुराने संकीर्ण व कट्टर आवरण को उतारकर उदार तथा आधुनिक स्वरूप को ग्रहण किया । भारतीय समाज में नवचेतना का प्रादुर्भाव हुआ । पुरानी अनुपयुक्त सामाजिक व्यवस्था तथा मान्यताओं को बिना सोचे-समझे, तर्कवाद की कसौटी पर परखे बिना स्वीकार करने की प्रवृत्ति बदलने लगी । डॉ. बच्चन सिंह ने इस सम्बन्ध में लिखा है - "धीरे-धीरे तर्क की संगति पर विशेष बल दिया जाने लगा । इससे रूढ़ियों को उच्छिन्न करने में सुविधा हुई । फलत: परम्परावादी और धर्म सुधारक दोनों ही अतीत के गौरव को जागरित करने

में सफल हुए । इससे भारतीयों को आत्मसम्मान का बोध हुआ और बराबरी के स्तर पर पश्चिम का सामना करने तथा स्वतंत्रता की माँग करने का आत्मविश्वास मिला । "

1.4.3 आर्थिक पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में उद्योगों की स्थापना के साथ ही मूल्यों में परिवर्तन होने लगा । गाँव की अपेक्षा शहरों में शिक्षा रोजगार एवं स्वास्थ्य की अधिक सुविधाएँ होने के कारण लोगों का नगरों के प्रति आकर्षण बढ़ना स्वाभाविक था, इसके फलस्वरूप नगर महानगरों में और कस्बे नगरों में परिवर्तित होते गए । गाँव के लोग शहरों में विभिन्न जाति, धर्म सम्प्रदाय और रीति -रिवाजों को मानने वाले अन्य लोगों के सम्पर्क में आए और इस प्रकार विभिन्न विचारों, मूल्यों एवं मान्यताओं के फलस्वरूप लोगों में आधुनिकता का प्रभाव धीरे-धीरे रंग जमाने लगा । आधुनिकता के प्रभाव के कारण अंध विश्वासों भ्रान्तधारणाओं, जाति व धर्म के बंधनों, छुआछूत आदि सभी प्रकार की वैचारिक संकीर्णताओं के मुक्त होकर आधुनिकता के रंग में रंगते गए ।

1.4.4 साहित्यिक पृष्ठभूमि

आधुनिक काल का साहित्य विषय और शैली दोनों क्षेत्रों में अपने पूर्ववर्ती साहित्य से भिन्न है । इस भिन्नता का कारण जहाँ तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक चेतना है, वहाँ इस दिशा में बाह्य सम्पर्क तथा विविध साहित्यों के प्रभावों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है । रीतिकाल का अधिकतर साहित्य राजमहलों में पल रहा था । वह साहित्य सीमित कटघरे में बन्द था जबकि आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट उदारता, व्यापकता और विविधता आई, जिसके फलस्वरूप उसने विशाल समूह को खुली आँखों से देखा । रीतिकालीन साहित्य में ऐन्द्रियता, श्रृंगारिकता, अलंकरण, प्रकृति के प्रति अनावश्यक मोह, सामंती वातावरण में पुष्ट होने के कारण जीवन के प्रति संकुचित दृष्टिकोण, मुक्तक शैली की प्रधानता और ब्रजभाषा का प्रयोग देखने को मिलता है । संक्षेप मं रीति साहित्य की भाषा, भाव और शैली सभी कुछ रूढिग्रस्त थी, जो कि बदले हुए आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं थी । अत: आधुनिक हिन्दी साहित्य में इन सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण क्रान्ति हुई। अंग्रेजों के भारत आगमन के साथ जो नवीन ज्ञान-विज्ञान तथा औद्योगीकरण की सभ्यता भारत में आरम्भ हुई उसे ठीक ठाक समझने-समझाने के लिए गद्य की आवश्यकता थी । विज्ञान तथा नवीन ज्ञान तर्काश्रित था और तर्क के लिए गद्य ही उचित माध्यम हो सकता था । इन नवीन परिस्थितियों का सामना करने तथा आधुनिकता को आत्मसात् करने के उद्देश्य से दिल्ली मेरठ के समीपस्थ ग्राम समुदाय की ग्रामीण बोली को खड़ी बोली के कम से ब्रज भाषा के स्थान पर नयी भाषा के रूप में स्थापित करने के प्रयास हुए । खडी बोली जो आज हिन्दी के नाम से जानी जाती है । भारतेन्दु युग के प्रारंभ होने से पूर्व अस्तित्व में आ चुकी थी । लेकिन तरह-तरह के विवादों के कारण उसका स्वरूप स्थिर नहीं हो पा रहा था । "इस युग के दो प्रसिद्ध लेखकों - राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह ने हिन्दी का समर्थन किया और राजा शिवप्रसाद ने हिन्दी का गँवारूपन दूर करते-करते उसे उर्दू ए मुअतला बना दिया ।

इन दोनों के बीच सर्वमान्य हिन्दी गद्य की प्रतिष्ठा कर साहित्य की विविध विधाओं के विकास का ऐतिहासिक कार्य भारतेन्दु युग में पूरा हुआ। "आधुनिकता के फलस्वरूप यह जो भाषागत परिवर्तन भारतेन्दु युग में हुआ और जो गद्य साहित्य अस्तित्व में आया, कालान्तर में उसके माध्यम से कहानी, उपन्यास, आलोचना, रिपोर्ताज, यात्रा वृतान्त, रेखाचित्र, संस्मरण आदि विविध विधाओं का तो विकास हुआ ही विज्ञान, उद्योग, कृषि व चिकित्सा विज्ञान की पुस्तकें भी हिन्दी में खूब प्रकाशित हुई। हिन्दी गद्य के माध्यम से आधुनिकता का संदेश जन-जन तक पहुँचाना भी सहज होता गया । आज हिन्दी भाषा का गद्य अद्भुत अभिव्यक्ति क्षमता से युक्त हो चला है क्योंकि निरंतर प्रयोग होते रहने तथा नवीन प्रयोगों के कारण इसमें निखार आता गया है।

1.4.5 शैक्षिक पृष्ठभूमि

भारत में आधुनिक शिक्षा पद्धति का शुभारम्भ अंग्रेजों ने ही किया । ईस्ट इंडिया कम्पनी के भारत आगमन के उपरांत कहने भर के लिए शिक्षा के द्वार सभी के लिए खोल दिए और मिशनरियों ने बड़े शहरों में स्कूल भी प्रारम्भ किए । बोर्ड ऑफ एजुकेशन की स्थापना तथा बम्बई में विश्वविद्यालय खोलने जैसे कार्य किए गए । वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा कलकत्ता मदरसा (1780) खोलना बनारस के रेजीडेन्स द्वारा 'बनारस संस्कृत कॉलेज 1791 की नींव डालना और कम्पनी के सिविल सर्वेयर को अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए कलकत्ता मे फोर्ट विलियम कॉलेज (1801) की स्थापना उल्लेखनीय घटनाएँ है । अंग्रेज शासकों के भारत में सुचारु शिक्षा व्यवस्था की स्थापना की दृष्टि से 1823 ई. में एक शिक्षा समिति गठित की तथा 1882 को गर्वनर जनरल रिपन द्वारा सर विलियम हंटर की अध्यक्षता में आयोग का गठन किया गया । यहाँ ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय शिक्षा के लिए अंग्रेज शासकों द्वारा किए गए प्रारम्भिक प्रयासों का उल्लेख केवल आधुनिक शिक्षा के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से किया गया है । भारतीय विद्वान प्रो. हुमायूं कबीर ने अंग्रेजों की स्वार्थ पर आधारित शिक्षा व्यवस्था की आलोचना करते हुए लिखा है कि "शिक्षा सार्वजनिक करने का अंग्रेजों का कार्य भले ही अच्छा हो, लेकिन उद्देश्य भला नहीं था । वे भारत में अंग्रेजी साहित्य शास्त्र तथा संस्कृति का प्रचार करना चाहते थे ।

अंग्रेज मिशनरियों का उद्देश्य यद्यपि मुख्यत: अपने धर्म का प्रचार करना व अन्य धर्मो की निन्दा करना ही अधिक या तथापि" मिशनरियों के काम ने भी भारतीय भाषाओं में गद्य शैली दी । हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती भाषाओं में गद्य शैली अत्यन्त आरम्भिक स्थिति में थी । जनता में धर्म के प्रचारार्थ मिशनरियों को उसकी आवश्यकता महसूस हुई ।" आधुनिक शिक्षा पद्धति के फलस्वरूप भारतवासियों को अंध परम्पराओं और रूढ़ियों से मुक्त होने तथा अपने दृष्टिकोण को व्यापक बनाने का अवसर प्राप्त हुआ । आधुनिकता को समझने और इसके वास्तविक लाभ को जीवन में उतारने की दृष्टि से भारतवासियों के लिए आधुनिक शिक्षा पद्धति सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक सिद्ध हुई ।

1.4.6 प्रेस जनमत व यातायात के साधन

किसी भी नए विचार अथवा मान्यता को आत्मसात् करने तथा उसका समाज में प्रचार-प्रसार करने की दृष्टि से प्रेस की विशेष भूमिका होती है । प्रेस की स्थापना भारत में सर्वप्रथम यद्यपि सन्

1550 में पुर्तगालियों के द्वारा की गई तथापि "सन् 1674 में ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा बम्बई में मुद्रण कार्य आरम्भ किया गया । अठारवीं शताब्दी में मद्रास कलकत्ता, हुगली, बम्बई आदि स्थानों में छापेखाने स्थापित हुए । अंग्रेजों और मिशनरियों ने समाचार पत्र निकाले, किन्तु अपने देश के संदर्भ में पत्र निकालने की पहल राजा राममोहन राय ने की । सन् 1821 में उनके सहयोग से "संवाद-कौमुदी नामक साप्ताहिक बंगला पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ ।"

सन् 1926 में हिन्दी के पहले पत्र "उदन्त मार्तन्ड" के प्रकाशन के उपरान्त हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का काम चल पडा । प्रेस का प्रयोग अंग्रेज मुख्यत: अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए करते थे । अत: प्रेस की स्वतंत्रता को लेकर अंग्रेजों और भारतवासियों में आरम्भ से ही टकराव रहा । "समाचार पत्रों के माध्यम से विचारों का विनिमय सहज हो गया । भारतीय पुनर्जागरण के लिए प्रेस का वरदान अत्यधिक मूल्यवान सिद्ध हुआ । भारतवासियों को आधुनिकता से भली प्रकार परिचित कराने तथा भ्रान्त धारणाओं और अंधविश्वासों से मुक्ति दिलाकर उनमें वैचारिकता की शक्ति विकसित करने में पत्र-पत्रिकाओं की ऐतिहासिक भूमिका को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । यहाँ यह उल्लेखित करना अनुचित न होगा कि यद्यपि अंग्रेजों ने इस देश में नयी अर्थव्यवस्था, औद्योगिकता संचार सुविधा प्रेस आदि को अपने निजी स्वार्थो के लिए स्थापित किया, फिर भी इससे भारत का हित हुआ । एक स्थिर व्यवस्था से छूटकर देश को नूतन गत्यात्मकता का अनुभव हुआ। परम्परायें टूटने लगी । नये परिवेश में ऐतिहासिक मांग के फलस्वरूप लोग अपने को नए ढंग से ढालने लगे ।" स्पष्ट है कि भारत में आधुनिकता के प्रचार-प्रसार तथा देशवासियों में वैचारिक क्रान्ति लाने की दृष्टि से प्रेस और जनमत की स्थापना का महत्वपूर्ण योगदान रहा ।

ब्रिटिश शासन काल में यातायात एवं संचार माध्यमों की दृष्टि से उन्नति हुई और नई सभ्यता व संस्कृति के सम्पर्क से देशवासियों की आँखें खुली । उन्हें देश की स्थिति, शासन-व्यवस्था, गुलामी और स्वतंत्रता आदि को लेकर सोचने-विचारने का अवसर मिला । देशवासी दुनिया के प्रत्येक कोने में होने वाली हलचल से जुड़े और अब वे अपने तथा अपने परिवेश को समझने में रूचि दिखाने लगे। परिवेश के प्रति जागरूकता व्यक्ति को नई सम्भावनाओं से युक्त और कर्मठ बनाती है । डॉ. बच्चन सिंह का मत है कि "रेलवे और अच्छी सड़कों की सहायता से फौजों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचना सुगम हो गया । स्पष्ट है कि इस देश के सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए इसका आयोजन नहीं हुआ, बल्कि अंग्रेजों के अपने स्वार्थ साधन के लिए ही रेलवे का जाल बिछाया गया और अच्छी सड़कें निर्मित हुई । वैसे इसमें सन्देह नहीं कि रेलों और सड़कों ने कृषि को व्यावसायिक बनाने में मदद पहुँचायी, दुनिया सिमटकर कम हो गई और विभिन्न क्षेत्रों के लोगो को एक-दूसरे से अल्प समय में सुविधानुसार मिलने का अवसर मिला । छुआछूत, भेदभाव आदि में कमी आयी । अकाल के समय एक स्थान से दूसरे स्थान पर अन्न, वस्त्र आदि भेजने की सुविधा हुई । किताबों, पत्र-पत्रिकाओं आदि को दूर-दूर तक सरलतापूर्वक पहुँचाया जाने लगा । इससे पुराने संकीर्ण विचारों को भंग करने में भी सहायता मिली"

1.5 ब्रिटिश नीतियों का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

कुछ विद्वान बंगाल में बौद्धिक जागरण तथा महाराष्ट्र में समाज सुधार एवं नारी उत्थान के प्रयासों से चमत्कृत होकर प्राय: कह देते हैं कि हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण का प्रभाव नहीं हुआ अथवा यहाँ नवजागरण आया ही नहीं । हिन्दी क्षेत्र बिहार से हिमाचल तक तथा हिमाचल से मध्यप्रदेश तक फैला है और आज भी आठ प्रांतों के 40 करोड़ से अधिक लोग हिन्दी भाषी हैं । इस विशाल भू-भाग में नवजागरण ने दस्तक न दी हो यह संभव नहीं भले ही इसका स्वरूप अन्य राज्यों से भिन्न रहा है । ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक उथल-पुथल यही हुई और 1857 की क्रांति के पश्चात् सर्वाधिक दमन भी इसी क्षेत्र में हुआ। इतना कुछ होने के उपरान्त भी हिन्दी क्षेत्र में साहित्य अधिकतर लोक विमर्श ही रहा है न कि सत्ता विमर्श । आदि काल के कुछ कवियों ने दरबारी कविता भी लिखी परन्तु अधिकांश जैन, बौद्ध तथा लोककवि सीधे जनता से जुड़े रहे । भक्तिकाल का सम्पूर्ण काव्य लोक को अपने साथ लेकर चलता है, उसके साये में पलता है और लोक संस्कृति से रस ग्रहण करता है। भक्तिकालीन कवि लोक संस्कृति के सशक्त आलोचक भी थे और उन्होंने 'राष्ट्रीय आदर्श' गढ़ने में लोक की सहायता भी की । रीतिकाल में हिन्दी काव्य दरबारों में लिखा गया परन्तु उसकी श्रृंगारिक चेतना लोक के लिए भी आनन्ददायी थी । आधुनिक युग में हिन्दी कविता ने लोक से ही नाता जोड़ा और सत्ता-विमर्श से प्राय: दूर रही । नवजागरण काल में उपनिवेशवाद की कटु आलोचना और सामाजिक- धार्मिक रूढ़ियों का विरोध आधुनिक हिन्दी कविता की पहचान बना ।

हिन्दी क्षेत्र में अंग्रेजों का दमन चक्र और फूट डालने का षड्यन्त्र सर्वाधिक सफल रहा । हिन्दू और मुसलमानों को परस्पर लड़ाने के लिए हिन्दी और उर्दू को साम्प्रदायिक भाषाएँ बनाने का षड्यन्त्र फोर्ट विलियम कॉलेज के माध्यम से सम्पन्न किया गया । शिक्षा के विकास, धार्मिक सुधारों और आधुनिकीकरण का काम इस क्षेत्र में धीमी गति से हुआ परन्तु भारतीय राष्ट्रीयता की पहचान, हिन्दी-उर्दू का अन्तर पाटने, स्त्री उत्थान, किसान और दलित की दशा सुधारने का कार्य इस क्षेत्र में निरन्तर हुआ । हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण मूलत: आत्म-पहचान का संघर्ष बनकर आया जिसे साहित्यकारों ने अपने साहित्य में प्रमुख स्थान दिया । मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी 'भारत-भारती' में हम कौन थे, क्या हो गए, और क्या होंगे अभी, आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।' का परामर्श दिया था । हिन्दी नवजागरण में सामंती भेदभाव का विरोध, धार्मिक असहिष्णुता के विरुद्ध आवाज और कूपमंडूकता का विरोध निहित था । समग्र रूप से कह सकते हैं कि हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण उपनिवेशवाद विरोध और सामाजिक धार्मिक रूढ़ियों के विरोध की भूमि पर स्थापित था । हिन्दी क्षेत्र में भले ही उपनिवेशवाद की बौद्धिक जड़े न उखड़ी हों परन्तु आधुनिकता का उदार राष्ट्रीय स्वरूप यहाँ उभर आया था । अनुदारता और अंध-राष्ट्रवाद भले ही इस क्षेत्र में पूरी तरह न मिटे हों परन्तु आधुनिक राष्ट्रीयता का स्वरूप समग्र रूप से यहाँ दिखाई पड़ने लगा था ।

हिन्दी नवजागरण का प्रमुख लक्ष्य हिन्दी भाषा का विकास करना था । हिन्दी को राजभाषा और राष्ट्रभाषा बनाने के आन्दोलन इसी क्षेत्र में चले । बंगाल से हिन्दी की अनेक पत्र-पत्रिकाएँ सर्वप्रथम निकली क्योंकि प्रेस की स्थापना सबसे पहले वहीं हुई थी । अंग्रेजों ने भेद नीति के चलते हिन्दी की देवनागरी लिपि को आधार बनाकर यह प्रचारित किया । इस लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी मूलत:

ब्राह्मण, क्षत्रिय और बनियों की भाषा है अर्थात् उच्च वर्ण के हिन्दुओं की भाषा है । फारसी लिपि में लिखी जाने वाली 'हिन्दुस्तानी' का सम्बन्ध कायस्थों से जोड़कर उसे मुसलमानों और मुनीमों की भाषा करार दिया गया । भाषा के आधार पर ही नहीं, लिपि के आधार पर भी समाज को बाँटने का कुप्रयास अंग्रेजों ने किया ।

विश्व का इतिहास साक्षी है कि उपनिवेशवाद जहां कहीं भी मिटा है उसकी राख से आधुनिकता के अंकुर अवश्य फूटे हैं और साथ ही वह स्थानीय अनुदारता, अंधराष्ट्रवाद और सामाजिक प्रभेदों को बढ़ावा देकर गया है । हिन्दी क्षेत्र के सन्दर्भ में यह दोनों बातें सच हैं । आज हिन्दी में दलित, आदिवासी, स्त्री और किसान विमर्श तेजी से उभर रहे हैं क्योंकि नवजागरण काल में और आधुनिक काल में इनसे न्याय नहीं किया जा सका और इन वर्गो को पूरा न्याय नहीं मिल सका । आज के उत्तर आधुनिक साहित्य में हाशिये पर पड़े वर्गो का साहित्य केन्द्र में आ रहा है । आज इतिहास के अन्त की घोषणा हो रही है और धर्म, भाषा, लिंग, जाति, प्रजाति, क्षेत्र, संगठन अथवा पेशों के आधार पर लघु इतिहासों की रचना की जा रही है । इन आधारों पर इतिहास लिखने से ज्यादा महत्वपूर्ण है प्रगतिशील मानवता का इतिहास रचना । हिन्दी क्षेत्र की संस्कृति एक सीमा तक दमित संस्कृति रही और यहां के बुद्धिजीवियों ने प्रखरता-से जनता के प्रश्न आधुनिक युग में नहीं उठाए ।

1.6 आधुनिक हिन्दी काव्य का प्रारंभ व विकास

आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ 1850 से माना जाता है । छापाखाने के आगमन और गद्य के प्रचार प्रसार के साथ ही नाटक, उपन्यास, कहानी आदि नई विधाओं का प्रचलन हिन्दी में हुआ । समाचार पत्रों से नई चेतना आई और एक बड़ा पाठक वर्ग निर्मित हुआ । प्रेस में प्रारम्भ में धार्मिक पुस्तकें और स्कूल-कॉलेजों की पाठ्य-पुस्तकें छपती थीं परन्तु धीरे-धीरे मनोरंजक साहित्य की मांग बढ़ी । साहित्य दरबारों से निकल कर जनता की आवाज बनने लगा । इस प्रकार आधुनिक साहित्य सत्ता-विमर्श की अपेक्षा लोक विमर्श बन गया ।

आधुनिक हिन्दी काव्य से पूर्व हिन्दी में दो सौ वर्षों तक रीतिकाव्य का प्रचलन रहा । भक्तिकाल का भक्तिभाव क्रमश: श्रृंगारिकता में तिरोहित हो चुका था और भक्तों के आराध्य राधा और कृष्ण रीतिकाल में साधारण नायक-नायिका बन चुके थे । राधा कृष्ण के बहाने से लौकिक प्रेम वर्णन, नख-शिख वर्णन, नायक-नायिका संयोग और वियोग का चित्रण ही काव्य के प्रमुख विषय था । काव्य के केन्द्र में नारी अथवा नारी का शरीर था । कवि प्राय: मध्य अथवा निम्नवर्ग से आए थे इसलिए उनके श्रृंगार वर्णन में मौलिकता सम्भव न थी । उन्होंने संस्कृत के श्रृंगारिक ग्रंथों का अनुकरण किया । इस युग के कवियों ने अपनी सारी प्रतिभा भाषिक-चमत्कार प्रदर्शन में खर्च की क्योंकि विषय मौलिक न थे । ब्रज भाषा का सरस, कोमल एवं अत्यधिक अलंकृत रूप विकसित हुआ । ब्रज भाषा में ओजपूर्ण एवं गहन जीवनानुभवों को वयक्त करने की क्षमता क्षीण होती गई । रीतियुग का काव्य नायिका भेद तथा छंद-अलंकार वर्णन तक ही सीमित हो गया । छंद-अलंकार सम्बन्धी ग्रंथों में मौलिकता का प्राय: अभाव था । कथन की अपेक्षा कथन की शैली पर अधिक बल दिया गया।

आधुनिक युग के आते-आते सामन्ती प्रभाव बिखरने लगा, रियासतें अंग्रेजी राज्य में विलीन की जाने लगी और कवियों को राज्याश्रय देने वाले लोग मिटने लगे । नए युग में पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान

और विचारों का प्रभाव बढ़ा तथा छापेखाने ने जिस नए शिक्षित मध्यवर्ग को जन्म दिया उसे अलग तरह के साहित्य की जरूरत थी । अंग्रेजी और बंगला के प्रभाव से नए प्रकार का साहित्य हिन्दी में भी रचा जाने लगा ।

नए विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए ब्रज की काव्य-भाषा सक्षम नहीं थी और ब्रज का गद्य प्राय: धार्मिक आख्यानों अथवा चिट्ठी-पत्री तक सिमटा था । खड़ी बोली हिन्दी का गद्य विभिन्न समाचार-पत्रों, पाठ्य-पुस्तकों तथा साहित्य की नई विधाओं के द्वारा निरन्तर विकसित हो रहा था। यह मांग उठने लगी थी कि साहित्य लोकभाषा में ही लिखा जाए तथा बोलचाल तथा साहित्य की भाषा के बीच की दूरी समाप्त हो । भारतेन्दु युग के अधिकांश कवियों ने गद्य के लिए तो खड़ी बोली को स्वीकार कर लिया था परन्तु पद्य के लिए खड़ी बोली को स्वीकार करने में संकोच बना हुआ था । गत पाँच सौ से भी अधिक वर्षो से जिस ब्रजभाषा ने काव्य-भाषा के रूप में अपनी पहचान बनायी थी उसे एकाएक अपदस्थ कर देना आसान न था । प्रताप नारायण मिश्र, अम्बिका दत्त व्यास, बद्री नारायण प्रेमधन, ठाकुर जगमोहन सिंह आदि ने गद्य तो भारतेन्दु की तरह खड़ी बोली में ही रचा परन्तु काव्य-रचना ब्रज में ही करते रहे । इनके पश्चात् द्विवेदी युग में खड़ी बोली में कविता करने वाले हरिऔध जी और श्रीधर पाठक जी ने भी प्रारम्भिक कविता ब्रज में ही की । खड़ी बोली को पूरी तरह काव्य भाषा के रूप में अपनाने वाले प्रथम बड़े कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ही थे । गुप्त जी ने सिद्ध किया कि काव्य-भाषा के रूप में भी खड़ी बोली का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है । आगे चलकर प्रसाद, पंत और निराला आदि ने खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में गरिमा प्रदान की ।

हिन्दी साहित्य, आदिकाल से आज तक प्रमुख रूप से लोक-विमर्श केन्द्रित रहा है, सत्ता-विमर्श परक नहीं । कहने का भाव यह है कि हिन्दी साहित्य की प्रेरणा लोक से आई है और लोक के कल्याण और रंजन के हेतु ही इसका सृजन होता आया है । आदिकाल के कुछ रासों ग्रन्थों और रीति काल की कुछ दरबारी कविता को छोड़कर अमीर खुसरो और विद्यापति से लेकर पंत, निराला अथवा मुक्तिबोध और नागार्जुन तक हिन्दी कविता जन कविता रही है । शम्भुनाथ सिंह इस क्षेत्र की संस्कृति की विशेषता बताते हुए लिखा है, "सदियों का अनुभव यही बताता है कि हिन्दी क्षेत्र की संस्कृति के सौन्दर्य उदारता, बहुरंगेपन और धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को उजाड़ने की ताकत न धार्मिक कट्टरवाद में है और न नव-उदारवादी वैश्वीकरण में, क्योंकि इस क्षेत्र के लोक में गजब की प्रतिरोधात्मक और वैकल्पिक संस्कृति. के निर्माण की क्षमता है । "

अजय तिवारी आधुनिक हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए स्पष्ट करते हैं कि आधुनिक हिन्दी कविता ने लोक साहित्य का संस्कृतिकरण नहीं किया बल्कि लोक-संस्कृति से प्रेरणा लेकर शिष्ट साहित्य में सम्वेदना, विषय-वस्तु और अभिव्यक्ति के जड़ ढांचे को तोड़ा है । इस प्रकार हिन्दी कविता का जनतांत्रिक रूप विकसित हुआ है । आधुनिक हिन्दी कविता इस अर्थ में भी जनतांत्रिक है कि इसका लेखन आम आदमी के लिये हुआ है और आम आदमी का जीवन ही इसका कथ्य है। हिन्दी कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से भीड़ को जाग्रत करके जुझारू जनता में परिवर्तित करने का प्रयास किया है ।

राष्ट्रीय भावों के प्रसार की दृष्टि से हिन्दी में उदार राष्ट्रवाद को ही अधिकतर अपनाया गया। हिन्दू-मुस्लिम एकता का भाव इसके साहित्य में प्रखर है । दिनकर ने लिखा था, "लड़ते हैं हिन्दू मुसलमान, भारत की आंखें जलती हैं । आने वाली आजादी की, दोनों आंखें जलती हैं ।

हिन्दी में विदेशी शासन, ब्रिटिश साम्राज्य को ही माना गया । हिन्दी पट्टी में साम्प्रदायिकता भड़काने का दोषी भी अंग्रेज शासन की नीतियों को माना गया । सामन्त प्राय: अंग्रेज समर्थक थे इसलिए उनके विरोध एवं उपेक्षा का स्वर आधुनिक हिन्दी कविता में सर्वत्र मिलता है ।

धर्मनिरपेक्षता का स्वर हिन्दी कविता में प्रमुख है । भक्तिकाल का धार्मिक साहित्य भी सम्पूर्ण मानवता की मंगल कामना से ओत-प्रोत है और उसमें साम्प्रदायिकता नाममात्र को भी नहीं है । धार्मिक प्रतीकों को भी राष्ट्रीय बनाकर प्रस्तुत किया गया है । भारतेन्दु ने राधानाथ (कृष्ण) को भारतनाथ बनाकर चित्रित किया । अयोध्यासिंह उपाध्याय के 'प्रियप्रवास' में राधाकृष्ण, ब्रजरक्षक और लोकरक्षक बनकर आते हैं । पौराणिक पात्र, प्रशंसा अथवा उपहास के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं ।

आधुनिक हिन्दी कविता में जातीय चेतना का स्वर प्रखर है साथ ही जनसाधारण के साथ अपने साहित्यिक रिश्तों की पहचान भी इस काव्य में है । आधुनिक हिन्दी कविता के निर्माणकाल में अतीत तथा पश्चिम के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि भी रही है और नए तथा मंगलकारी विचारों को स्वीकार करने का भाव भी रहा है । आधुनिक कविता में साम्राज्यवाद विरोधी वैश्विक स्वर भी विद्यमान है । धर्मनिरपेक्षता के साथ-साथ मानववादी दृष्टि इस काव्य को शक्ति प्रदान करती रही है । रूढ़िवाद विरोध, संघर्ष का भाव तथा जनतान्त्रिक दृष्टि इस काव्य के प्रमुख गुण हैं ।

1.7 सारांश

साहित्य परम्परागत जीवन मूल्यों और सम सामयिक वातावरण से प्रभावित होकर आकार ग्रहण करता है । आधुनिक काल का साहित्य इसका अपवाद नहीं है । भारतीय जीवन तथा परम्पराओं से ही अनुप्रेरित होकर यह अपना स्वरूप निर्धारित कर सका है, इसलिए आधुनिक काल के प्रेरक तत्वों पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है, जिससे कि उसके मूलाधार का ढाँचा हमारे सामने स्पष्ट हो सके।

प्रस्तुत इकाई में हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल की परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराया गया है । किसी भी काल खण्ड में नवीन परिवर्तनों को जन्म देने के लिये कुछ न कुछ कारक तत्व होते हैं जिनसे प्रेरित और प्रभावित होकर नया काल खण्ड अपनी पहचान उभारता है । हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल भी इरा नियम का अपवाद नहीं है ।

साहित्य के इतिहासकारों ने अपने विवेचन में आधुनिकता के कारक तत्वों की विशद चर्चा की है । प्रमुख रूप से मध्ययुगीन रूढ़ियों का, अंधविश्वासों का और समाज को जकड़ कर रखने वाली मानसिकता का अंत करके आधुनिकता सामने आती है । प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् एक नवीन राजनीतिक चेतना भारतीयों के मन में उदय हुई। अंग्रेजी शासन का अंत करके स्वाधीनता का मूल्य एक स्वप्न की भाँती भारतीय जन मानस को उद्वेलित करने लगा । तत्कालीन समाज में देश और समाज का आर्थिक ढाँचा भी शोषण और उत्पीड़न की मिसाल बना हुआ था । रूढ़ियों में बँधी हुई सोच भी मध्यकालीन मानसिकता के रूप में व्यक्ति और समाज की चेतना पर छायी हुई थी । ऐसी परिस्थिति में कुछ स्वाधीनता चेत्ता मनस्वियों ने समाज सुधार के आन्दोलन खड़े किये । फलस्वरूप

रूढ़ियों पर प्रहार होने लगा । एक नवीन बौद्धिक और तार्किक दृष्टि से जीवन को समझने का प्रयास दिखायी पड़ा । इसी को साहित्य के इतिहासकार पुनर्जागरण की संज्ञा देते है ।

अंग्रेजों के शासन में द्रुत गति से आवागमन के साधन, संचार माध्यम और शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने गति पकड़ी । फलस्वरूप पत्र-पत्रिकाओं से एक नवीन प्रकार की बौद्धिक बहस समाज में आरम्भ हुई। इन सबका मिला-जुला प्रभाव आधुनिकता को जन्म देने के लिये एक कारक तत्व के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये।

आधुनिकता ऐतिहासिक काल बद्धता न होकर दृष्टिकोण की नवीनता और चेतना में आये परिवर्तन से अपने को परिभाषित करती है । विचारकों और साहित्य के आलोचकों ने इसी रूप में आधुनिकता को विवेचित करने का प्रयास किया है । इस पाठ में इन्ही बिन्दुओं को उभार कर आधुनिकता की पृष्ठभूमि को समझाया गया है।

भारत में आधुनिक युग, अंग्रेजी शासन की स्थापना से लगभग 1850 से माना जाता है। आधुनिक युग के मूल में नवजागरण, यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति के कारण भारत की अर्थ-व्यवस्था का विनाश, प्रेस और शिक्षा से उत्पन्न राष्ट्रीयता का बोध तथा स्वाधीनता संग्राम की शक्तियां ही हैं ।

हिन्दी क्षेत्र अत्यधिक विशाल है । 1857 की क्रान्ति की पीड़ा सर्वाधिक इसी क्षेत्र ने झेली स्वाधीनता-संग्राम के लिए सर्वाधिक आन्दोलन इसी क्षेत्र में हुए । इस क्षेत्र में नवजागरण राष्ट्रवाद का रूप धारण कर लेता है ।

हिन्दी साहित्य में रीतिकालीन श्रृंगारिकता और दरबारीपन का विरोध बदली परिस्थितियों में सहज ही होने लगा । गद्य का विकास तथा नवीन राजनीति, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों में समाज-संसृक्ति का काव्य रचा जाने लगा ।

आधुनिक युग में हिन्दी अपने क्षेत्रीय स्वरूप को त्याग कर ब्रज और अवधी से आगे बढ़कर खड़ी बोली का रूप धारण कर लेती है । भारतेन्दु युग में खड़ी बोली गद्य की भाषा बनी तो द्विवेदी युग में वह पद्य की भी भाषा बन गई ।

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आधुनिकता का स्वरूप के स्पष्ट करते हुए बताइये कि आधुनिक काल का आरम्भ कब से माना जाये?
2. "साहित्य के प्रेरक तत्वों में राजनीतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।" कैसे? स्पष्ट कीजिए ।
3. आधुनिक काव्य की पृष्ठभूमि की विवेचना कीजिए ।
4. "आधुनिक काल का साहित्य विषय और शैली दोनों क्षेत्रों में अपने पूर्ववर्ती सहित्य से भिन्न है ।" इस कथन की विवेचना कीजिए ।

1.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1. शिवदान सिंह चौहान; हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष ।
2. नन्द दुलारे वाजपेयी, हिन्दी साहित्य बीसवीं सदी ।

3. नन्द दुलारे वाजपेयी; आधुनिक साहित्य का इतिहास ।
4. श्रीकृष्ण लाल; आधुनिक हिन्दी साहित्य की रूपरेखा ।
5. आ. रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्य का इतिहास ।
6. नगेन्द्र; हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, 1995 ।
7. डॉ. बच्चन सिंह; हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास ।
8. कृष्णलाल; आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय ।
9. गणपतिचंद्र गुप्त; हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।
10. रामस्वरूप चतुर्वेदी; हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
11. रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

इकाई - 2

लम्बी कविता और खंड़काव्य : स्वरूप-विश्लेषण, परम्परा और विकास

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 लम्बीकविता: स्वरूप-विश्लेषण

2.3 लम्बीकविता: परम्परा और विकास

2.4 खण्डकाव्य : स्वरूप-विश्लेषण

2.5 खण्डकाव्य : परम्परा और विकास

2.6 सारांश

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप-

- आधुनिक हिन्दी काव्य की लम्बी कविता के स्वरूप, उसकी परम्परा और विकास से परिचित हो सकेंगे ।
- आधुनिक हिन्दी खण्ड़ काव्य के स्वरूप, उसकी परम्परा और विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना

आधुनिक काल विशेष रूप से गद्य के विविध रूपों के विकास के लिए जाना जाता है । इसी को ध्यान में रखते हुए पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को 'गद्यकाल' कहा है । गद्य के विविध रूपों के विकास ने परम्परा से केन्द्र में चले आते हुए प्रबंध काव्य को प्रभावित तो किया ही, बल्कि उसके महत्तव को भी अपेक्षाकृत कम कर दिया । वैसे तो आधुनिक काल में प्रबंध काव्य महाकाव्य और खण्ड़काव्य की परम्परा 'कंसबध' (अम्बिकादत्त व्यास) ; साकेत, जयद्रथ वध, यशोधरा, सिद्धराज (मैथिलीशरण गुप्त); प्रिय प्रवास, वैदेही वनवास (अयोध्या सिंह उपाध्याय); कामायनी (जयशंकर प्रसाद); तुलसीदास (सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला); उर्वशी, कुरूक्षेत्र, रश्मिरथी (रामधारी सिंह दिनकर); कनुप्रिया (धर्मवीर भारती) आदि के रूप में आगे बढ़ी, लेकिन उनकी संरचना पहले के प्रबंध काव्यों से भिन्न हो गयी । सही बात तो यह है कि आधुनिक परिशुद्ध काल में महाकाव्यों का स्थान उत्तरोत्तर प्रबंधात्मक और प्रगीतात्मक लम्बी कविताओं ने ले लिया । स्वातंत्र्योत्तर काल में महाकाव्यों की रचना के लाभ में आने वाले कवियों की संख्या कम नहीं है, लेकिन काव्यत्व की दृष्टि से लम्बी कविताओं ने उनसे बाजी मार ली । इसी प्रकार खण्डकाव्य की परम्परा संस्कृत में आधुनिक काल के पूर्व हिन्दी

में बहुत समृद्ध नहीं है । आधुनिक काल में खण्ड काव्य के विकास के लिए अधिक अवकाश मिला और उसका कारण भी आधुनिक ही है । कथानक भले ही पुराना हो, लेकिन आधुनिक काल के खण्डकाव्य आधुनिक बोध से सम्पन्न है । हम आपको आगे लम्बी कविता और खण्डकाव्य के स्वरूप, परम्परा और विकास से परिचित करवाने जा रहे हैं ।

2.2 लम्बी कविता : स्वरूप-विश्लेषण

परम्परागत प्रबंधकाव्य; वह महाकाव्य हो या खण्डकाव्य, सामन्ती व्यवस्था की ऊपज थे। आधुनिक काल की पूंजीवादी व्यवस्था, लोकशाही की आकांक्षा ने जीवन की जिन जटिलताओं के सामने साहित्यकार को ला खड़ा किया, उसकी अभिव्यक्ति के लिए पुराने काव्य स्वरूप अपर्याप्त सिद्ध हुए और उनकी साहित्यिक उपयोगिता संदेहास्पद हो गयी । व्यवस्था जन्म यथार्थ के बदल जाने के साथ कमोबेश काव्य रूप और उसकी अभिव्यक्ति की प्रणाली बदल जाती है । आधुनिक काल के जटिल यथार्थ के सामने प्रबंधकाव्य ने उपयोगिता खो दी और जो महाकाव्य आधुनिक काल में लिखे गए उनका स्वरूप संस्कृत के महाकाव्यों जैसा न रहा । पुराने कथानक के साथ संभव है पात्र पुराने हो, लेकिन उनकी समस्या आधुनिक है । उपन्यास गद्य विद्या के विकास के कारण आख्यान का दबाव भी कम हो गया । इसलिए आधुनिक कवियों में पहले के कवियों जैसी आख्यान निष्ठा भी न रह गयी । सही बात तो यह है कि आधुनिक काल में महाकाव्य की तुलना मे लम्बी कविताओं का महत्व बढ़ गया है । यदि यह कहा जाए कि आधुनिक काल मे धीरे धीरे लम्बी कविताएं महाकाव्यों का स्थानापन्न होता गई तो कोई अतिश्योक्ति न होगी । इनके लिए कई नाम प्रचलित है । जैसी लम्बी प्रबंधात्मक, लम्बी कथात्मक कविताएं । लेकिन इन नामों को एकमात्र सही मानने से लम्बी प्रगीतात्मक कविताएं बाहर रह जाती है । इसलिए लम्बी कविता नाम ऐसा नाम है जिसमे कविता चाहे प्रगीतात्मक हो या प्रबंधात्मक दोनों का समावेश हो जाता है । लम्बी कविताओं के स्वरूप में इतनी विविधता मौजूद है कि उनके लिए कोई निश्चित नियम निर्धारित नहीं किये जा सकते हैं ।

लम्बी कविता के बारे में पहला सवाल उसके 'नामकरण' से जुड़ा है । क्या लम्बी कविता के नामकरण का आधार उसकी लम्बाई हैं? इस विषय में हिन्दी कविता के आलोचक एक मत नहीं है । कुछ विद्वान उसके आकार की दीर्घता के आधार पर लम्बी कविता कहना पंसद करते है, कुछ विद्वान उसके अख्यान या कथागत आधार के मद्दे नजर उसे प्रबंधात्मक या कथात्मक कविता कहते है । कुछ उसकी पहचान नाटकीय रूप में है । डॉ. नरेन्द्र मोहन का कहना है कि "लम्बी कविताओ की रचना पद्धति का प्रश्न, अन्ततः इनकी अन्विति के स्वरूप से जुड़ा है । लम्बी कविता ऊपर से विश्रृंखल और अराजक हो सकती है, पर भीतर से संगठित हो सकती है ।लम्बी कविताओं में यह अन्विति सीधी और तार्किक नहीं होती । अनेक प्रसंगों, कथात्मक अंशों और संदर्भो - संकेतों का असम्बद्ध - सा दिखने वाला वर्णन चित्रण इसमें रह सकता है, पर इस असम्बद्धता में ही संगबद्धता और अन्विति के आन्तरिक सर्जनात्मक सूत्र विधान रह सकते हैं । लम्बी कविताओं में अन्विति के ये दोनों ही प्रकार बिम्बात्मक और वैचारिक मिलते हैं । पहले प्रकार की अन्विति में सभी विवरण संदर्भऔर प्रसंग केन्द्रीय बिम्ब द्वारा संतुलित रहते हैं तो दूसरे प्रकार की अन्विति में किन्ही विचार से जुड़े बिम्बों का अनवरत क्रम । लम्बी कविता की संरचना में कोई कवि आख्यान और बिम्ब की ओर से विचार की दिशा में बढ़ सकता है और कोई विचार से शुरू करके बिम्ब की विधान की ओर । यह प्रक्रिया

बिम्ब से बिम्ब और विचार से विचार की ओर भी हो सकता है । वैसे बिम्ब और विचार का तनाव लम्बी कविता की संरचना का मूल आधार है" (लम्बी कविताओं का रचना विधान सं. नरेन्द्र मोहन, पृष्ठ - 2-3)

लम्बी कविता के स्वरूप निर्धारण में दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है - नाटकीयता । यह नाटकीय एकता कविता पर आख्यान के भार को कम करती है, दूसरे उसे गतिमय और उसके आकार को संयमित भी करती है । तीसरे अन्तर्विरोधी जटिल स्थितियों को प्रकट करने में मद्दगार साबित होती है । इस प्रकार "लम्बी कविता के रचना विधान का अनिवार्य लक्षण है - नाटकीय । इसके बिना आज के जीवन की अन्तर्विरोधों भरी स्थितियाँ उजागर नहीं हो सकती । स्थितियों के पीछे की स्थितियाँ, व्यवहारों मानसिक - आत्मिक क्रियाकलापों को अभिव्यक्त करने के लिए नाटकीय विधान को लम्बी कविता की अनिवार्य संरचना माना जा सकता है । कार्यो और व्यापारों को नाटकीय विधान में प्रस्तुत करके स्थितियों के अन्तर्विरोधी का बोध जगाया जा सकता है । इसमें नाटकीय संवादों की योजना विशेष कारगार हो सकती है । लम्बी कविता की संरचना में जिस गहरे कलात्मक संयम की आवश्यकता होती है, वह भी नाटकीय विधान द्वारा प्रभावी तौर पर सम्पन्न हो सकता है ।" (वही, पृष्ठ - 4)

लम्बी कविता के स्वरूप निर्धारण में 'सर्जनात्मक तनाव' की भी विशेष भूमिका है । इसलिए उसे लम्बी कविता की रचना प्रक्रिया का एक विधायक अन्तवर्तीतत्व माना जाता है । दरअसल लम्बी कविता की रचना तभी संभव है जब सर्जनात्मक तनाव दीर्घकालीन हो तथा विस्तृत फलक पर अपनी क्रियात्मकता सिद्ध कर रहा हो । इसके लिए यह जरूरी है कि लम्बी कविताओं में सर्जनात्मक तनाव के विविध रूप से स्तर और धरातल विद्यमान रहे । लम्बी कविता का तनाव एक आयामी नहीं होता । लम्बी कविता के संरचनात्मक विकासक्रम में एक तनावपूर्ण अंश या परिच्छेद के बाद निहायत सीधा - सादा, सपाट और गद्यात्मक अंश या परिच्छेद भी रह सकता है जो पूर्ववर्ती तनाव दशा के परिप्रेक्ष्य में या समग्र कविता के संदर्भ में सार्थक रहे । लम्बी कविता में इस तरह के संरचनात्मक संतुलन को साधना और कायम रखना जरूरी है । (वही - पृष्ठ 6-7)

लम्बी कविता की वस्तु का आधार पौराणिक, अर्द्ध ऐतिहासिक, ऐतिहासिक, समसामयिक और काल्पनिक में से कुछ भी हो सकता है । लम्बी कविता की वस्तु के बारे में कोई निश्चित नियम नहीं है । यह कवि प्रकृति, रूचि और सजृनात्मक आवश्यकता पर निर्भर है । डॉ. हरदयाल का कहना है कि मोटे तौर पर आधुनिक काल में अब तक हिन्दी मे लिखी गयी लम्बी कविताओं को दो वर्गों में रखा जा सकता है ।. (1) आख्यान श्रयी लम्बी कविताएँ और (2) आख्यान हीन लम्बी कविताएँ । पहले वर्ग में आने वाली लम्बी कविताओं की अनिवार्य विशेषता किसी घटना का आधार लेकर चलना है । 'प्रलय की छाया' (प्रसाद), 'राम की शक्ति पूजा (निराला)' , 'असाध्य वीणा' (अज्ञेय) को पहले वर्ग के प्रतिनिधि उदाहरणों के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है । दूसरे वर्ग के प्रतिनिधि लम्बी कविताओं में 'परिवर्तन' (पंत), 'मुक्तिप्रंसग' (राजकमल चौधरी), 'लुकमानअली' (सौमीय मोहन), 'अंधेरे में' (मुक्ति बोध), 'उपनगर में वापसी' (बलदेव वंशी) को प्रस्तुत किया जा सकता है ।"

डॉ. नरेन्द्र वशिष्ट ने एक ओर आख्यान धर्मी प्रबंधात्मक लम्बी कविता की बात की है और दूसरी ओर उन्होंने लम्बी कविताओ को काल के आधार पर विभाजित किया है । एक तरफ यह कहते है कि "जिस प्रकार महाकाव्य में अनेक युगों की संचित जातीय अनुभूतियों, संवेदनाओं, सत्यों,

दृष्टिकोणों तथा संघर्ष का विराट लेखाकंन होता है । उसी प्रकार लम्बी कविता में समसामयिक युग सत्य को उसकी सम्पूर्णता, सश्लिष्टता और नाटकीयता में पकड़ने की बड़ी कोशिश होती है । इसलिए लम्बी कविता को महाकाव्यात्मक रचना कहा जाता है । ऐसी कविता प्राय: एक विराट रूपक के माध्यम से युग सत्य को चित्रित करती है । " उन्होंने काल के मद्दॅनजर कहा कि लम्बी कविता का रूप दो प्रकार का हो सकता है :काल प्रवाह को सीधे रेखांकित करने वाला तथा उसको विच्छिन्न करके विपर्यय बोध जगाने वाला । अंग्रेजी में पहले को 'लाइनीयर' तथा दूसरे को 'फ्यूगल' कहा जाता है । लाइनीयर फार्म काल क्रम की रक्षा करती है, जबकि फ्यूगल' फार्म काल धारा को चेतनाप्रवाह, स्वप्न, फैंटेसी तथा मिथक द्वारा खंडित करके उसे पारे की तरह बिखरा देती है । ऐसे फार्म में कालबोध समाप्त सा हो जाता है तथा भूत, वर्तमान भविष्य आपस में घुलते - मिलते प्रतीत होते हैं, जैसे कि मुक्ति बोध की कविता में लाइनीयर फार्म की कविता की पठनीयता और सरलता तथा फ्यूगल फार्म उसको जटिलता और दुरूहता की दिशा में ले जाती है । 'प्रमथ्युगाथा' अपने रूप में लाइनीयर है, क्योंकि वह कालक्रम की रक्षा करती है ।"

डॉ. नामवर सिंह ने काव्य रचना की दृष्टि से लम्बी कविताओं को दो वर्गों में रखा है । एक प्रगीतात्मक दो नाटकीय । उनकी दृष्टि में प्रगीतात्मक लम्बी कविता की संरचना वर्तुलाकार और भावबोध, आत्मपरक व अनुभूति प्रधान होता है । इसके उदाहरण के बतौर उन्होंने अज्ञेय की लम्बी प्रगीतात्मक कविता 'असाध्यवीणा को याद किया है । दूसरी कोटि की लम्बी कविताएं वे है जो 'नाटकीय' होती हैं । दूसरा उदाहरण मुक्तिबोध की लम्बी कविताएं अंधेरे में है । उन्होंने प्रगीतात्मक लम्बी कविताओं का एक दूसरा वर्ग भी बनाया है । जिनकी संरचना वर्तुलाकार के बजाय 'सर्पिल (स्वाइरल)' है और वह अपने भाव बोध में प्रगीतात्मक के बावजूद निर्वैयक्तिक है । इनमें उन्होंने राजकमल चौधरी के 'मुक्ति प्रसंग' को रखा है । इसी प्रकार नाटकीय कविताओं में एक वर्ण उन लम्बी कविताओं का बनाया है जो अपनी काव्यानुभूति में 'आत्मपरकता का आभास' देती है । लेकिन उनकी संरचना ' अप्रगीतात्मक है । इसके उदाहरण रूप में श्री कान्त वर्मा की समाधिलेख और रघुवीर सहाय की लम्बी कविता 'आत्महत्या के विरूद्ध' को रखा गया है ।

इसके अलावा लम्बी कविताओं के विभाजन का एक आधार, शिल्प और छन्द को माना जा सकता है । इस प्रकार के आधार का जिक्र निराला के संदर्भ में श्री दूधनाथ सिंह ने किया है । उन्होंने 'राम की शक्ति पूजा' और सरोज स्मृति का छन्दों बद्ध लम्बी कविता और पंचवटी प्रसंग, शिवाजी का पत्र, स्वामी प्रेमानंद जी महाराज को मुक्त छन्द की कविता माना है और शिल्प की दृष्टि से इनके वर्ग अलग से होंगे । इस प्रकार लम्बी कविता के वर्गीकरण के अनेक आधार हो सकते है ।

जहाँ तक भाषा और शैली का प्रश्न है लम्बी कविताओं में इस बारे में कोई निश्चित नियम नहीं है । भाषा संस्कृत निष्ठ हो सकती है । सपाटबयानी भी । निराला की 'राम की शक्ति पूजा' संस्कृत पदावली के आग्रह को लेकर चलती है लेकिन धूमिल की पटकथा 'सपाटबयानी' को । भाषा बोलचाल की हो सकती है अखबारी भी । इसका संबंध कविता के रचनात्मक परिवेश और रचनाकार की सर्जनात्मक प्रकृति से है । इसी प्रकार लम्बी कविता की शैली के बारे में कोई निर्धारित नियम नहीं है । मसलन किसी कविता की शैली निर्वैयक्तिक हो सकती है तो किसी की वैयक्तिक । वैयक्तिक

में भी वह आत्मपरक एकालाप का सहारा ले सकती है । अभिव्यक्ति प्रणाली में वह स्वप्न कथा की मदद ले सकती है तो बिम्बबपरकता का भी ।

2.3 लम्बी कविता : परम्परा का विकास

हिन्दी की लम्बी कविताओं के पहले अंग्रेजी साहित्य में लम्बी कविता की बड़ी समृद्ध परम्परा रही है । आधुनिक यूरोप में उपन्यास के उदय ने परम्परागत महाकाव्य, उनकी महत्कथा, महानपात्रों, उनकी संरचना के सामने बहुत बड़ा संकट खड़ा कर दिया । ऐसी स्थिति में कविता ने महाकाव्य की राह छोड़कर लम्बी कविता का आकार ग्रहण किया । वहाँ लम्बी कविता के पक्ष में जहाँ अनेक रचनाकार मौजूद है वही उसके विरोध में कई खडे हैं । यूरोप में लम्बी कविता लिखनेवाले कवियों में टी.एस. इटलीयर (वैस्टलैण्ड), एजरापाउण्ड़ (केंटोज), वाल्ट हिवटमैन, कार्लोस विलियम्स (प्रेटरसन हार्ट), क्रेन (दिब्रिज) एलन गिंसवर्ग और शोरेनटाट के नाम लिये सकते हैं । दूसरे वर्ग ऐसे रचनाकारों और आलोचकों का हैं जो यह मानते है कि कविता सिर्फ प्रगीतात्मक होती है । तीव्र आवेग प्रगीत का मूल आधार है । गीत में उनका लम्बा होना संभव नहीं है । यूरोप की 'लांगपोयट्री ने आधुनिक हिन्दी कविता को भी प्रभावित किया और उसका विकास यहाँ भी हुआ । लेकिन आधुनिक हिन्दी कविता में लम्बी कविता के विकास के कारण विदेशी नहीं, भारतीय है । हाँ, वह लम्बी कविताओं के लिए प्रेरक अवश्य है ।

आधुनिक काल के पहले मध्यकाल में वर्णनात्मक प्रबंध रचना की परम्परा मिलती है, लेकिन उसका स्वरूप आधुनिक काल में विकसित लम्बी कविताओं से अलग है । दरअसल ये वर्णनात्मक प्रबंध महाकाव्य के वृहद् आख्यान के एक अंग होते थे । आख्यान के अंश को लेकर स्वतंत्र रचना करना वर्णनात्मक प्रसंगों की विशेषताए है । पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल के विवेचन के सिलसिले में प्रबधात्मक महाकाव्य से भिन्न कोटि में इन्हें रखा है । जैसे महाभारत या भागवत्पुराण के वृहद् आख्यान में यदि कोई कवि उसके रासलीला पर स्वतंत्र रचना करता है तो वह वर्णनात्मक प्रबंध कहा जायेगा । इसमें वस्तु वर्णन पर विशेष बल रहता है । इसी प्रकार रामलिला नहछू , पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, रूक्मिणी मंगल**, द्रौपदी स्वयंवर** को इसी प्रकार की रचनाएँ कहा जा सकता है ।

पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल के प्रथम चरण भारतेन्दु युग की काव्यधारा का विवेचन करते हुए कहा है सामान्य विषयों की स्वतंत्र ढंग से रचना की परम्परा भारतेन्दु युग से चली । जैसे स्व देश प्रेम, स्वदेशी, स्वभाषा प्रेम आदि पर कविता बनाने का चलना द्विवेदी युग के कवियों की प्रवृत्ति विशेष रूप से आख्यान धर्मी महाकाव्य या खण्डकाव्य लिखने की रही यद्यपि वे शुद्ध रूप में पारम्परिक न थे । लेकिन वह चाहे रीतिकाल का वर्णनात्मक प्रबंध हो या फिर द्विवेदी युग के आख्यान मूलक महाकाव्य और खण्डकाव्य हो इनसे लम्बी कविता की विकास यात्रा सम्बद्ध नहीं । दरअसल ये लम्बी कविता की संरचना की पृष्ठभूमि मात्र है । उसके विकास के लिए अवकाश द्विवेदी युग के बाद छायावादयुग के बाद उसके विकास की परिस्थिति निर्मित होती है । यही वह काल है जिसने पुराने शास्त्रीय ढंग से महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, राह छोड़कर नये ढ़ंग के महाकाव्य और खण्डकाव्य के विकास की परिस्थिति खड़ी की और लम्बी कविता का विकास का कारण सिद्ध हुआ । पूंजीवादी व्यवस्था और लोकशाही के आगमन ने उच्चवर्गीय आख्यानधर्मी प्रबंध काव्य की परम्परा को तिरोहित करते हुए मध्यवर्गीय कथा साहित्य के विकास के लिए रास्ता तैयार किया । कविता

के भीतर भी प्रबंध काव्य का जो महत्व पहले था वह धीरे धीरे सिर्फ घट नहीं गया, बल्कि उसका स्वरूप काफी बदल गया । दूसरी बात बदली हुई जटिल परिस्थितियों में कविता के कुछ नये काव्य रूप दाखिल हुए, उनमें अनुभूति प्रदान प्रगति एक था, विचार प्रगति लम्बी कविता एक दूसरी थी।

कविता के केन्द्र में पहली बार महत् व्यक्तित्व के स्थान पर मध्यवर्गीय या सामान्य उपेक्षित व्यक्ति आ गया । नयी परिस्थिति में इसी मनुष्य की अनुभूति की जटिलता और विचारों के द्वंद्व ने लम्बी कविता के विकास को संभव बनाया । डॉ. सत्य प्रकाश ने सही लिखा है कि "जीवन के जीने के लिए आवश्यक शर्तों और स्वयं सिद्ध तथ्यों के बदल जाने से प्रबंधात्मकता का संरचनात्मक आकार और उस आकार के अनुकूल कथ्य सब बदल गया । लम्बी कविताओं में निष्कर्षात्मक प्रवृत्तिवाला अनुभव भी अपने युग का सारतत्त्व हो सकता है, परन्तु उसमें कथा वह रूप या विस्तार संभव ही नहीं है । जैसा प्रबंधों में । क्योंकि अनुभव का इतिहास व कविता की वस्तु में अपेक्षित नहीं है । इसलिए लम्बी कविता में प्राय: संकेत, प्रतिकात्मक और बिम्बों से अर्थ कि प्रतीति नहीं, बल्कि अर्थ परम्परा की प्रतीति के माध्यम से बहुत कुछ संभव हो जाता है । " डॉ. महेश्वर ने लम्बी कविता के बनाने के कारणों पर विचार करते हुए कहा कि "लम्बी कविता आधुनिक जीवन की गहरी संश्लिष्ट तथा जटिल, किन्तु आकुल छटपटाहट की काव्याभिव्यक्ति है । लम्बी कविता का रूप विधान एक व्यापक किन्तु विरूप वस्तु जगह की असंगतियों अमानवीयताओं और निरर्थकता से जूझने की नाकाम कोशिश से बनता है । इन्ही, अर्थो में लम्बी कविता आधुनिक यानि पूंजीवादी समाज के अन्तर्विरोधों की कविता है । कुल मिलाकर लम्बी कविता अन्तर्वस्तु, 'प्रोटेस्ट', असहमति, असहिष्णुता व अनुदारता की होती है । लम्बी कविता का समूचा विधान वस्तुजगत की संश्लिष्ट, जटिल, किन्तु त्रासद स्थितियों के अस्वीकार का विस्फोटक दीर्घ तथा समान रूप से जटिल एवं संश्लिष्ट काव्याभिव्यक्ति है । " इस प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था और लोकशाही की विसंगति लम्बी कविता के उद्भभव और विकास का प्रधान कारण है।

द्विवेदी युग की आख्यानधर्मी प्रबन्घात्मक को देरकिनार करते हुए सबसे पहले छायावादी कवियों - पन्त, प्रसाद, निराला ने नये ढंग के प्रबंधकाव्यों और लम्बी कविताओं के लिए जमीन तैयार की । प्रियप्रवास, जयद्रथवध, पंचवटी आदि में आख्यान का जो दबाव था, उसे प्रसाद, पंत, निराला ने बहुत कम कर दिया । यह बदलाव वस्तु-संवेदना, काव्यशिल्प हर स्तर पर था । इन कवियों की प्रतिभा इतनी सजृनात्मक है कि उन्होंने नये ढग के प्रबध, प्रगीत लिखने के साथ लम्बी कविता की नींव डाली । इस बात को लेकर विवाद अवश्य है पहली लम्बी कविता किसे माना जाए, 'परिवर्तन' (पन्त), प्रलय की छाया (प्रसाद) या 'राम की शक्ति पूजा (निराला) को । ये तीनों कविताए आकार की दृष्टि से लम्बी हैं, पर कालक्रम की दृष्टि से 'परिवर्तन' प्राथमिक, 'प्रलय की छाया' दूसरे नम्बर पर 'राम की शक्ति पूजा', तीसरे नम्बर पर है । डॉ. हरदयाल कालक्रम और संरचनागत विशेषता दोनो दृष्टियों से उसे हिन्दी की लम्बी कविता मानते है । वे अपने समर्थन में कहते है कि "इस कविता में निराशा की एक केन्द्रीय मनोदशा है, जो इस कविता को बाँधे हुए है, इस कविता के खण्ड एकता स्थापित करते है, जो इसे एक लम्बी कविता बनाते हैं ।" वे आगे लिखते है कि "यह कविता केवल आकार में बड़ी नहीं है, बल्कि अपने रागात्मक और वैचारिक आयाम में बड़ी है । कवि ने अपने वैयक्तिक द्वंद को सार्वभौमिक बना दिया है । वह दिक् और काल दोनों में बड़ी हो गई है ।इसलिए उसे लम्बी

कविता का अभिधान देना उचित नहीं है ।" (लम्बी कविताओं का रचनाविधान, पृष्ठ - 35) नरेन्द्र मोहन भी डॉ. हरदयाल हामीदम हैं । डॉ. बलदेव वंशी की राय डॉ. हरदयाल और डॉ. नेरन्द्र मोहन से भिन्न है । वे लम्बी कविता की सार्थक शुरूआत परिवर्तन और प्रलय की छाया से नहीं राम की शक्ति पूजा से मानते है । वे कहते है कि "लम्बी कविता वस्तुत: आधुनिक युगीन स्थितियों की अनिवार्यता की ऊपज है, जो प्रबन्धात्मक काव्य के विकल्प स्वरूप अस्तित्व में आई है । अनुभव बताता है, ज्यों-ज्यों आधुनिक मानसिकता विकसित होती गई है, त्यों- त्यों इसके दबाव से, हिन्दी साहित्य में, प्रबंधात्मक काव्य के चरित्र में तात्विक दृष्टि से ढील आती गई और अन्तत: 'राम की शक्ति पूजा' (निराला) जिस काव्य ढाँचे को लेकर उपस्थित हुई है, वह प्रबंधात्मक कम, मुक्त आधुनिक अधिक है और प्रबंधात्मक का सही विकल्प भी । इससे हिन्दी काव्य में लम्बी कविता की वर्तमान धारा की सार्थक शुरूआत मानी जा सकती है ।" (वही पृष्ठ - 172,173)

छायावाद से लेकर अब तक हिन्दी में चर्चित व अचर्चित लम्बी कविताओं पचास के ऊपर पहुँच गई है, लेकिन उनमें से लगभग दो दर्जन लम्बी कविताओं की चर्चा किसी की संख्या किसी रूप में आधुनिक हिन्दी आलोचना में होती रही है । कालक्रम की दृष्टि से मुख्य लम्बी कविताओं के विकास को इस रूप मे देखा जा सकता है ।

कवि	कविता संग्रह /पत्रिकाएं	लम्बी कविता
सुमित्रा नन्दन पंत	पल्लव (सन् 1923)	परिवर्तन
जय शंकर प्रसाद	लहर (सन् 1933)	प्रलय की छाया
सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला	अनामिका (सन् 1937)	राम की शक्ति पूजा, सरोज स्मृति, शिवाजी का पत्र आदि
नरेश महेता	दूसरा सप्तक (सन् 1951)	समय देवता
धर्मवीर भारती	सात गीत वर्ष (सन् 1959)	प्रमथ्यु गाथा
स. ही. उज्ञेय	ऑगन के पार द्वारा (सन् 1961)	असाध्य 'वीणा
गजानन माधव मुक्ति बोध	चाँद का मुँह टेढ़ा है (1964 सन्)	अंधेरे में, चम्बल की घाटियाँ
विजय देव नारायण साही	मछली घर (सन् 1966)	अलविदा
राजकमल चौधरी	मुक्ति प्रसंग (सन् 1966)	मुक्ति प्रसंग
श्री कान्त वर्मा		समाधि लेख
रघुवीर सहाय	आत्म हत्या के विरूद्ध (सन् 1967)	आत्म हत्या के विरूद्ध
श्री राम वर्मा	नई कविता (सन् 1966-67)	शब्दों की शताब्दी
सौमित्र मोहन	कृति परिचय (सन् 1968(	लुकमान अली
भारत भूषण अग्रवाल	आलोचना (सन् 1968)	चीरफाड़
रामदरश मिश्र	पक गई है धूप (सन् 1969	फिरवही लोग
प्रमोद सिन्हा	तलघर (सन् 1970)	तलघर
धूमिल	संसद से सड़क तक (सन् 1972)	पटकथा
लीला धर जगूड़ी	नाटक जारी है (सन् 1972)	नाटक जारी है
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	कुआनो नदी (सन् 1972)	कुआनो नदी
रमेश गौड़	लहर (सन् 1974)	एक मामूली आदमी का बयान

बलदेव वंशी	उपनगर में वापसी (सन् 1974)	उपनगर में वापसी
त्रिलोचन	आलोचना (सन् 1973)	नगई मेहरा
स्वदेश भारती	आवाजों के कटघरे में (सन् 1975)	आवाजों के कटघरे में
नागार्जुन	खिचडी विप्लव देखा (सन् 1977)	हरिजन गाथा
केदार नाथ सिंह	उत्तर कबीर वाघ (सन् 1995)	उत्तरकबीर वाघ

इनके अलावा आजादी के बाद के कवियों मे राजीव सक्सेना (अस्तित्व का गीत) दूध नाथ सिंह (सुरंग से लोटते हुए), विनय (लगातार स्वप्न), विजेन्द्र (जन शक्ति) और इधर के युवा कवियों में सुल्तान अहमद, एकान्त श्री वास्तव की लम्बी कविताओ को याद किया जा सकता है ।

छायावादी कवियों में लम्बी कविता के विकास में निराला का योगदान सबसे ज्यादा है । लम्बी कविताओं की संख्या, उनके कथ्य और शिल्प की विविधता, सभी दृष्टियों से उनकी लम्बी कविताओं में पंचवटी प्रसंग, यमुना के प्रति, राम की शक्ति पूजा, सरोज स्मृति, शिवाजी का पत्र, स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज का नाम लिया जाता है लेकिन इनमें सर्जनात्मक की दृष्टि से राम की शक्ति पूजा, सरोज स्मृति और शिवाजी का पत्र सबसे समृद्ध है । निराला अपनी इन कविताओं में लम्बी कविता के विकास के दोनों चरण को सम्पन्न करते है । लम्बी कविता अपने विकास के पहले चरण में पौराणिक-ऐतिहासिक कथा से पूरी तरह मुक्त नहीं थी और दूसरे चरण में उसने पारम्परिक कथा का आधार छोड दिया । सरोज स्मृति दूसरे चरण की कविता कही जा सकती है और शेष कविताए पहले चरण की । निराला का इन कविताओं में महत्व इस मायने में है कि उन्होंने इसमें अपने निजी रचनात्मक जीवन का विक्षेप करके उसे पूरे इतिवृत के माध्यम से सर्वथा एक नये मौलिक और अनुभूत अर्थ - प्रसंग की सर्जना की है । आख्यान को तोड़कर भी उसके पुराने, पारम्परिक, संदर्भगत, इतिहास सिद्ध अर्थ की रक्षा करते हुए, उसमें नये अर्थ की प्रतिष्ठा ही इन कविताओं की मौलिक शक्तिमत्ता का प्रमाण हैं । निराला में पारम्परिक कथात्मकता भी है और पारम्परिकता से पृथक् उसका आत्मसाक्षात्कार के स्तर पर एक नया अर्थ - विकास भी ।

छायावाद के बाद नयी कविता के दौर में अज्ञेय और मुक्ति बोध की कविताओं ने हिन्दी पाठकों आलोचकों का विशेष रूप से ध्यान खींचा । लम्बी कविता के विकास में योगदान की दृष्टि से मुक्ति बोध का महत्व ज्यादा है । दोनों की लम्बी कविताओं में कथ्य और रूप दोनो दृष्टियों से बुनियादी फर्क है । इसका प्रदान कारण है- कविता के प्रति दोनो की अलग अलग दृष्टि । एक ओर अज्ञेय कहना है कि "लम्बी कविताए भी होती है, हो सकती है, पर उनकों कलात्मक एकता और गठन देने वाली चीज फिर दूसरी हो जाती है- भाव संहति और तीव्रता नहीं । वह ढंग दूसरा है, और कहूँ कि मेरा वह नही है । " अज्ञेय की असाध्य वीणा पहले ढंग की कविता है । जिसमें कलात्मक एकता है, भाव सहति और तीव्रता है । शब्द प्रयोग संबंधी सर्तकता और वर्णन 'चातुरी' है, नाटकीयता है।

अज्ञेय की भाषा को डॉ. नामवर सिंह ने 'तनवाहीन भाषा' और संरचना को 'वर्तुलाकार', प्रगीतात्मक सही कहा है । मुक्ति बोध की लम्बी कविता को उन्होंने 'नाटकीय' वर्ग में रखा है । 'अंधेरे में, 'चम्बल की घाटियाँ' आदि कविताएँ नाटकीय संरचना की है । ऐसी कविताओं में तनाव या घिराव का वातावरण रहता है । मुक्ति बोध ने अपनी कविताओं के लम्बी और अधूरी रह जाने के कारण स्पष्ट करते हुए कहा है कि यथार्थ के तत्व परस्पर गुम्फित होते है, साथ ही पूरा यथार्थ प्रस्तुत होता

है वह भी ऐसा गतिशील और उसके तत्व भी परस्पर गुम्फित होते है । मैं अपनी बात कह रहा हूँ । और इस प्रकार की न मालूम कितनी ही कविताएं मैने अधूरी लिखकर छोड़ दी है । उन्हें समाप्त करने वाली कला मुझे नहीं आती, यह मेरी ट्रेजडी है" (एक साहित्यिक की डायरी, पृष्ठ -27) सर्जनात्मक दृष्टि से अंधेरे में मुक्ति बोध की सबसे समृद्ध लम्बी कविता है जिसका मूल्यांकन करते हुए डॉ. नामवर सिंह कहते है कि "कुल मिलाकर 'अंधेरे में' कविता का संसार एक साथ ही दहशत भरा और उम्मीद से मुक्त दोनो ही है । यह फैटेंसी का दुहरा प्रयोग है । कवि ने यथार्थ पर 'अंधेरे' की एक चादर डालकर उसके अंदर से एक जीती-जागती स्पष्ट गोचर दुनिया को उभार कर रख दिया है जो यथार्थ से अधिक यथार्थ मामूल होती है' वे आगे लिखते है कि 'वस्तुत: अंधेरे में कविता' कविता की अर्थवत्ता उसके स्वप्न चित्रमय वातावरण में है जो अपने नाटकीय संरचना के द्वारा सीधे वाक्यों को भी कथात्मक अनुगूँज से अनुरणित कर देती है" (कविता के नये प्रतिमान, पृष्ठ - 159,160) उन्होंने इस कविता को निराला की 'राम की शक्ति की पूजा' के बाद लम्बी कविता के विकास में 'सबसे बड़ी उपलब्धि माना है ।

साठोत्तरी हिन्दी काव्य से लेकर अब तक जिन लम्बी कविताओं विशेष रूप से योगदान माना जाता है उनमें विजय देव नारायण साही की 'अलविदा', राजकमल चौधरी की 'मुक्त प्रसंग' रघुवीर सहाय की 'आत्माहत्या के विरूद्ध' सौमित्र मोहन की 'लुकमान अली', धूमिल की 'पट कथा' लीलाधर जगूड़ी की 'नाटकजारी' है, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'कुआनो नदी' नागार्जुन की 'हरिजन गाथा', केदारनाथ सिंह की उत्तरकबीर और बाध आदि लम्बी कविताओं के नाम लिये जा सकते हैं । इन कविताओं की विशिष्टता पर विचार केवल नामोल्लेख से करते हुए संतोष किया जा सकता है ।

2.4 खण्डकाव्य: स्वरूप विश्लेषण

श्रव्यकाव्य के दो भेद है :- प्रबंध और मुक्तक । प्रबंधकाव्य के दो प्रकार है- महाकाव्य और खण्डकाव्य । इस प्रकार खण्डकाव्य प्रबन्धकाव्य का एक प्रकार है । संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में महाकाव्य के स्वरूप की चर्चा अपेक्षाकृत पुरानी और खण्डकाव्य के स्वरूप की चर्चा काफी परवर्ती है । संस्कृत काव्य शास्त्र की परम्परा में खण्डकाव्य का पहली बार स्पष्ट उल्लेख चौदहवीं शताब्दी के आचार्य विश्वनाथ ने किया । छठी-सातवीं शताब्दी के आचार्य भामह और दण्डी ने महाकाव्य के लक्षणों की चर्चा की है लेकिन, 'खण्डकाव्य' का नामोल्लेख भी नहीं किया । शायद उनके जमाने में खण्डकाव्य नामक प्रबन्धकाव्य प्रकाश में नहीं आया था, इसीलिए वे उससे परिचित भी नही जान पड़ते । भामह और दण्डी के परवर्ती संस्कृत आचार्य रूद्रट ने प्रबंधकाव्य के दो प्रकारों - महान और लघुकाव्य का उल्लेख पहली बार किया, किन्तु उससे भी खण्डकाव्य की बात बनती नहीं है । इस सम्बन्ध में उनका मन्तव्य इस प्रकार है:-

तत्र महान्तों येषु च विस्तस्तेष्वभिधीयते ।
चतुर्वगे :सर्वेरक्षा: कियन्ते काव्यस्थानानि सर्वाणि ।
ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमों भवेच्चतुर्वगात् ।
असनग्रानेकरसा ये च समग्रैक रक्षयुक्ता: ।

काव्यालंकार - 16/ 5,6

रूद्रट के मन्तव्य में लघुकाव्य ही खण्डकाव्य है ऐसा कोई स्पष्ट अंकित नही है । दूसरी बात-लघुकाव्य के बारे में उनका मन्तव्य अत्यन्त सामान्य है और बहुत स्पष्ट भी नहीं है ।

रूद्रट के परवर्ती आचार्यों में आनंदवर्द्धन और हेमचन्द्र ने प्रबंधकाव्य के रूप में महाकाव्य की चर्चा अवश्य की है, लेकिन उन्होने भी खण्डकाव्य के बारे में कोई चर्चा नहीं की है । इससे ऐसा लगता है कि संस्कृत साहित्य की परम्परा में बारहवींशती तक न तो खण्डकाव्य का विकास हुआ था और न उसकी कोई चर्चा ही थी । हाँ प्रबंधकाव्य के समानान्तर संस्कृत में 'गीतिकाव्य' की समृद्ध परम्परा थी और इसी नाते कालिदास के मेघूदत और जयदेव के 'गीत गोविन्द' से पूर्ववर्ती परवर्ती आचार्य अच्छी तरह परिचित थे । संस्कृत के आचार्यो में आचार्य विश्वनाथ ने पहली बार प्रबंधकाव्य के तीन प्रकारों- सर्गवद्ध महाकाव्य, काव्य और खण्डकाव्य का स्पष्ट उल्लेख किया । उन्होंने कहा कि-

भाषा विभाषा नियमात्काव्यं सर्गसमुत्थितम् ।
एकार्थ प्रवणै: पद्यै: सन्धिसामग्रयवर्जितम् ।
खण्डकाव्य भवेत्काव्यस्यैक देशानुसारि च ।

साहित्यदर्पण - 6/328,329

महाकाव्य की सापेक्षता में खण्डकाव्य को समझने-समझाने की कोशिश करते हुए यह कहा कि " मोटे ढंग से कहा जा सकता है कि खण्डकाव्य एक ऐसा पद्यबद्ध कथाकाव्य है जिसके कथानक में इस प्रकार की एकात्मक अन्विति हो कि उसमें अप्रांसगिक कथाएं सामान्य तथा अन्तर्मुक्त न हों सके, कथा में एकांगिता-साहित्य दर्पण के शब्दो में एकदेशीयता हो तथा कथा विन्यास-क्रम आरम्भ,विकास ,चरमसीमा और निश्चित उद्देश्य में परिबल हो । कथा की एकांगिता के परिणामस्वरूप खण्डकाव्य के आकार में लघुता स्वाभाविक है और साथ ही उद्देश्य की महाकाव्य जैसी महनीयता संभव नहीं है । खण्डकाव्य का प्रतिपाद्य चाहे कोई चरित्र ,घटना, प्रसंग परिस्थिति विशेष या कोई सामाजिक अथवा जीवन दर्शन सम्बंधी सत्य हो, कवि अपने व्यक्तित्व का उसके साथ अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठतापूर्वक तादात्म्य कर लेता है । अत: खण्डकाव्य में कवि का दृष्टिकोण उतना व्यक्ति निरपेक्ष या वस्तु परक नहीं रहता, जितना महाकाव्य के लिए अपेक्षित है । कथा विन्यास में नाटकीयता खण्डकाव्य आकर्षण बढा देते है । इस प्रकार उसकी कथा का विकास बहुत कुछ भाव विकास पर आधारित होता है । खण्डकाव्य का यही लक्षण उसे चरित काव्य या साधारण प्रबंधकाव्य से भिन्न करता है । (वहीं पृष्ठ-213) डॉ वर्मा के ध्यान में संस्कृत का गीतिकाव्य रहा है और उन्होने उसके लक्षणों को खण्डकाव्य के साथ घालमेल कर दिया है । अर्थात् भाषा या विभाषा में रचित सर्गबद्ध सभी संधियों से रहित एक कथा का आधार लेकर चलने वाला पद्यग्रंथ को 'काव्य' कहते है और उसके एक देश या खण्ड का अनुसरण करने वाली रचना को 'खण्डकाव्य' कहते है । आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के बारे में जितने विस्तार से लिखा है उसके आधे विस्तार में भी खण्डकाव्य पर विचार नहीं किया है । इसका मतलब है कि खण्डकाव्य उनके लिए विशेष महत्व का प्रबन्धकाव्य नहीं है। दूसरी बात-खण्डकाव्य के बारे में उन्होने जो संक्षेप में कहा है उसमे सर्गबद्धता और कथानक से सिवा स्पष्टता नही है । आचार्य विश्वनाथ के बाद संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में खण्डकाव्य के स्वरूप

निर्धारण की दिशा मे प्रयास नदारद है । खण्डकाव्य के स्वरूप निर्धारण में विश्वनाथ का मंतव्य हमारी खास मदद नहीं करता ।

हिन्दी आलोचना की परम्परा में पहले-पहल खण्डकाव्य के स्वरूप की सैद्धान्तिक चर्चा का प्राय: अभाव है । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का ध्यान पहले पहल इस प्रबंध प्रकार की ओर गया अवश्य, लेकिन उन्होने आचार्य विश्वनाथ की मान्यता को अपेक्षाकृत विस्तार अवश्य दिया, लेकिन उस पर मौलिक ढंग से विचार नहीं किया । उनका कहना है कि "महाकव्य के ही ढंग पर जिसकाव्य की रचना होती है, पर जिसमें पूर्व जीवन न ग्रहण करके खण्ड जीवन ही ग्रहण किया जाता है उसे खण्डकाव्य कहते है । यह खण्ड जीवन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है जिससे वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वत: पूर्व प्रतीत होता है । (वाठ मय विमर्श, पृष्ठ 39) उन्होने एकार्थकाव्य जो आचार्य विश्वनाथ के काव्य का स्थानापत्य है, से खण्डकाव्य का पार्थक्य बताते हुए कहा कि 'खण्ड काव्य का विस्तार भी थोडा होता है । एकार्थकाव्य की भांति पूर्ण जीवन का कोई उद्दृष्टि पक्ष उसमें नही होता ।'

खण्डकाव्य के स्वरूप के बारे में अपेक्षाकृत विस्तार से डॉ ब्रजेश्वर वर्मा ने विचार किया । दरअसल महाकाव्य सहचरित्र, समग्र युगजीवन, महदुद्देश्य, गरिमायी शैली को लेकर चलता है । " जिन प्रबंधकाव्यों में महाकाव्य के उपुर्यक्त लक्षण नहीं मिलते, वे चाहें आकार में बडे हो या छोटे, चाहे आठ से कम सर्गवाले हो या अधिक सर्गवाले, महाकाव्य नहीं माने जायेंगे । ऐसे प्रबंधकाव्य दो प्रकार के होते है- एक तो वे जिनमें किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण होता है, पर समग्र युगजीवन का चित्रण नहीं होता और न महाकाव्य के अन्य सभी लक्षण पाये जाते है । दूसरे वे जिनमें जीवन का खण्ड दृश्य चित्रित होता है और जो कथावस्तु की लघुता तथा उद्देश्य की सीमाओं के कारण वृहदाकार तथा महान् नहीं बन पाते । इनमें से प्रथम प्रकार के प्रबंधकाव्य को एकार्थकाव्य और दूसरे को खण्डकाव्य कहना उचित है । (हिन्दी साहित्य कोश, भाग- 1, पृष्ठ 212) आगे वर्मा जी ने महाकाव्य से खण्डकाव्य को अलग करके उसके स्वरूप के बारे में यह कहा कि- " बाह्य रूप रचना सम्बन्धी सर्गबद्धता का नियम जिस प्रकार महाकाव्य की रचना से पालन नहीं किया गया है, इसी प्रकार खण्डकाव्य के लिए भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी वस्तु भिन्न सर्गो में अनिवार्य रूप से विभाजित होनी चाहिए । सर्गो की संख्या निर्धारित करना और भी अप्रासंगिक है । साधारण तथा खण्डकाव्य में छंदो की विविधता नही होती, प्राय: सम्पूर्ण काव्य एक ही छंद मे रचा जाता है । परन्तु इनके अनेक अपवाद भी है । बीच-बीच में गीतों का प्रयोग भी खण्डकाव्य की विशेषता कही जा सकती है ।" (साहित्यकोश, भाग- 1 पृष्ठ-213) ।

महाकाव्य और खण्डकाव्य के स्वरूप पर तुलनात्मक ढंग और अपेक्षाकृत विस्तार से विचार करने का प्रयत्न डॉ सत्यदेव चौधरी ने किया है । उन्होनें कथानक पात्र, रस, छंद और प्रभाव के मध्य नजर दोनो को अलगाने का प्रयास किया है । 'कथानक' पर विचार करते हुए कहा है कि "महाकाव्य का कथानक अत्यन्त विस्तृत होता है । विभिन्न प्रकार के वर्णनों तथा प्रासांगिक कथाओं से उसे अत्यन्त विस्तृत बना दिया जाता है । किन्तु खण्डकाव्य में कथाविस्तार नही होता और न ही इसमें प्रासांगिक कथाओं का जमघट होता है । हाँ, कथा सम्बन्धी कुछ बातें दोनों में समान हो सकती हैं । यथा-कथा के मार्मिक प्रसंगो का चयन, कथा संगठन, रोचकता आदि । " (भारतीय काव्य शास्त्र, पृष्ठ 699)

जहाँ तक पात्रों का प्रश्न है "खण्डकाव्य में पात्रों की संख्या महाकाव्य की अपेक्षा कम होती है । उनका चारित्रिक विकास भी पूरी तरह नहीं किया जा सकता । फिर भी उनके चरित्र की सभी रेखाएं संक्षेपत: प्रकट हो जाती है । नायक दोनों में उच्च वंश का होता है । 'सुदामाचरित्र' का नायक उच्चवंशीय ब्राह्मण है तथा पंचवटी का नायक श्रेष्ठ क्षत्रिय वंश का है ।" अनेक आधुनिक खण्डकाव्यों ने मुख्यपात्र की कुलीनता वाला आधार तोड़ दिया है । इसी के चलते शम्बूक,शबरी,हिडिम्बा, कर्ण और मेघनाद को नायक बनाकर खण्डकाव्य लिखे गये ।

खण्डकाव्य के रस और छंद के बारे में कोई निश्चित नियम नहीं है । "महाकाव्यों में श्रृंगार,वीर और शान्त इन तीन रसो में से कोई एक रस अंगीरूप और अन्य रस अंगरूप होते है । खण्डकाव्य में इस प्रकार का कोई नियम नहीं है । उसमें किसी एक रस का परिपाक प्रधान रूप से किया जाता है और अन्यरस गौण रहते है । यह भी हो सकता है कि खण्डकाव्य में किसी एक रस का परिपाक न दिखाकर किसी उदात्त भाव का चरम उत्कर्ष दिखाकर पाठक को मुग्ध कर दिया जाए । जैसे-'सुदामाचरित' में किसी रस विशेष का चमत्कार न दिखाकर मैत्री भाव का ही चरम उत्कर्ष दिखाया गया है । "(वही पृष्ठ -700) इसी प्रकार महाकाव्य में जिस प्रकार भी छंद योजना होती है यानि प्रत्येक सर्ग में एक छंद और सर्गान्त में छंद परिवर्तन का नियम खंडकाव्य में मान्य नहीं है । भावानुरूप छंद का चयन खण्डकाव्य के लिए विशेष उपयोगी समझा जाता है ।

"वास्तव में खण्डकाव्य में महाकाव्य की अपेक्षा अभिनेयता की मात्रा अधिक होती है । इसी कारण कवि को पात्र, परिस्थिति और भावना के परिवर्तन के साथ छंद भी परिवर्तित करना पडता है । (वहाँ पृष्ठ-700)

खण्ड काव्य अपने उद्देश्य और प्रभाव में महाकाव्य से अलग होता है । महाकाव्य के समान खण्डकाव्य का प्रभाव व्यापक नही होता । खण्डकाव्य का उद्देश्य समग्र युग या समग्र जीवन को प्रभावित करने के बदले उसके प्रभावशाली अंश को सामने लाना है ।

खण्डकाव्य के कथानक का आधार या स्त्रोत महाकाव्य की तुलना से अधिक व्यापक है । वह पौराणिक, ऐतिहासिक, लौकिक, समसामायिक,मिथकीय, प्रतीकात्मक मे से कोई भी हो सकता है । उदाहरण के लिए मैथिली शरण गुप्त के जयद्र वध का आधार अर्द्ध ऐतिहासिक 'सिद्धराज का ऐतिहासिक और 'नहुष का पौराणिक है जबकि निराला के तुलसीदास' का आधार लोकाख्यान है । कवि युग की आवश्यकता और अपनी पसंद से किसी आधार को ले सकता है । वह चाहे तो काल्पनिक आधार पर खण्डकाव्य की सृष्टि कर सकता है । जैसे-रामनरेश त्रिपाठी का पथिक और मिलन खण्डकाव्य।

कुल मिलाकर खण्डकाव्य जीवन की किसी महत्वपूर्ण घटना, सीमित कथानक, सीमित आकार, सीमित पात्र, एक विशेष उद्देश्य को लेकर चलता है ।

2.5. खण्डकाव्य परम्परा और विकास

वैसे हिन्दी मे ऐसे उत्साही खोजी विद्वानों को ढूँढा जा सकता है जो खण्डकाव्य की परम्परा ढूँढते-ढूँढते संस्कृत के गीतिकाव्य-मेघदूत,गीतगोविन्द तक पहुँच जाते हैं । लेकिन हिन्दी का समझदार विद्यार्थी मात्र जानता है कि गीति काव्य वैयक्तिक अनुभूति प्रधान विधा है जबकि खण्डकाव्य आख्यान मूलक प्रबंध काव्य है । गीतिकाव्य में आख्यान संवेदना के लिए भूमिका भर तैयार करता है । इसलिए

पुराने संस्कृत साहित्य में खण्डकाव्य की परम्परा ढूँढने की कोशिश निरर्थक है । इसी प्रकार प्राकृत और अपभ्रंश के चरित काव्यों से खण्डकाव्य को जोडना सही प्रतीत नही लगता, कारण कि उनका उद्देश्य काव्यत्व की रक्षा से अधिक उपदेश देना है दरअसल खण्डकाव्य की परम्परा और विकास का सीधा-सीधा सम्बन्ध हिन्दी साहित्य के विकास से है । खण्डकाव्य की व्यवस्थित परम्परा और विकास सही अर्थो में हिन्दी साहित्य में वह भी विशेष रूप से आधुनिक काल में हुआ ।

कहने के लिए आधुनिक काल के पहले मध्यकाल में कुछ खण्डकाव्य मिल जाते है । जैसे- सुदामाचरित्र जो आकार में छोटा है, पर जिसकी रचना बहुत 'सरस और हृदय ग्राहिणी है और भाषा बहुत परिमार्जित और व्यवस्थित है । इसी प्रकार की अनेक रचनायें -पार्वतीमंगल, जानकीमंगल (तुलसीदास), रूक्मिणी मंगल (नरहरि) आदि -मध्यकाल में ढूँढी जा सकती है लेकिन उन्हें व्यवस्थित खण्डकाव्य नही कहा जा सकता, हाँ वर्णानात्मक प्रबंध अवश्य माना जा सकता है । इसी प्रकार कुछ विद्वान खण्डकाव्य की परम्परा ढूँढते हुए आदिकाल के रासो साहित्य और मध्यकाल की प्रेमाख्यानक काव्य तक पहुँचते है, पर वर्णन की प्रधानता और कथा रूढ़ियो के आधिक्य के कारण उन्हें सही अर्थो में कायदे का खण्डकाव्य नहीं कहा जा सकता है । रीतिकाल का विवेचन करते हुये उस काल के इस प्रकार के काव्यों को वर्णनात्मक प्रबंध के भीतर ही रखा है जो बिल्कुल सही है । उनका कहना है कि - "रीतिकाल मे कथात्मक प्रबन्धों से भिन्न अनेक वर्णानात्मक प्रबधो की रचनाएं की गयी है । जैसे दानलीला,मानलीला,जलविहार, वनबिहार, होली वर्णन, जन्मोत्सव वर्णन, मंगल वर्णन, रामकलेवा आदि बड़े-बड़े प्रबन्धकाव्यों के भीतर इस प्रकार के वर्णनात्मक प्रसंग रहा करते थे । रीतिकाल में उनके अंग निकालकर स्वतंत्र पुस्तके तैयार की जाने लगी । इसमें वस्तु वर्णन पर विशेष ध्यान रहता था । (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 222-23) दरअसल इस प्रकार की कोशिश भक्तिकाल से शुरू हो गयी थी । रामलला नहछू पार्वती, मंगल, जानकी मंगल, सीय स्वयम्बर आदि काव्य इसी कोटि के है ।

आधुनिक काव्य के प्रथम चरण यानि भारतेन्दु युगीन रचनाकारों की विशेष प्रवृति फूटकर रचनाओं की ओर है। साधारण विषयो पर छोटे-छोटे प्रबन्धो या निबंधकाव्यों की शुरुआत भारतेन्दु के जमाने से हुई लेकिन वे खण्डकाव्य की परिधि में नहीं आते । द्विवेदीयुग आधुनिकाल का वह दूसरा चरण है जिसमें खण्डकाव्य के विकास के लिए पर्याप्त अवकाश मिला । ब्रजभाषा काव्य की परम्परा को आगे बढाते हुए बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर ने उद्धतशतक, हरिश चन्द्र, गंगावतरण आदि खण्डकाव्यों की रचना की । लेकिन उनका सायास आग्रह खण्डकाव्य प्रस्तुति का नही है फिर भी विद्वानों ने उनके काव्यों को खण्डकाव्य की संज्ञा दी है । रत्नाकर जी की तीनों रचनाओं का आधार पौराणिक आख्यान है और इनमें गोपियों की आत्मसक्षमता के कारण आधुनिक युग की अनुगूंज विशेष रूप से उद्वशतक में है । आख्यान और छंद में नयापन नहीं है, लेकिन उसकी रवानगी पाठक को सहज बहा ले जाती है ।

खण्डकाव्य के विकास के लिए द्विवेदीयुग की खड़ी बोली काव्य धारा बहुत चर्चित है और इसके सिर मौर है- मैथिलीशरण गुप्त । उन्होने दर्जन से अधिक खण्डकाव्यों की रचना आग्रह की। रंग से भग, पंचवटी, वनवैभव, जयद्रथवध, बकसंहार, हिडिम्बा ,सिद्धराज,नहुष, विष्णु प्रिया, रत्नावली आदि उनके खण्डकाव्य है और इनमें पंचवटी, जयद्रथ, बध, सिद्धराज तो बहुत लोकप्रिय है । गुप्त

जी ने विशेष रूप से पौराणिक, ऐतिहासिक और लौकिक आख्यानों को आधार बनाकर अपने खण्डकाव्यों की रचना की व पारम्परिक कथा का निर्वाह करते हुए उसकी परिधि में युगसापेक्ष नयी उद्भावना के लिए जगह बनायी । पारम्परिक चरित्रों को उन्होने मानवीय गरिमा प्रदान की । उनके दौर में अनेक कवियों ने खण्डकाव्य के विकास में योगदान दिया । जैसे रामचरित उपाध्याय (पवनदूत) गिरधर शर्मा (सती सावित्री), अनूप शर्मा (सुपनाल), सत्यनारायण कविरत्न (भ्रमरदूत) आदि । इस दिशा में उनके छोटे भाई सियाराम शरण गुप्त ने मौर्य विजयनकुल आदि खण्डकाव्य लिखकर योगदान दिया । लेकिन इनमे से विशेष लोकप्रियता भ्रमरदूत और मौर्यविजय को अवश्य मिली शेष तो खण्डकाव्य की परम्परा गिनाने भर के काम आये ।

छायावाद की विशेष ख्याति प्रगीतों के कारण मिली, लेकिन प्रबन्धकाव्य के विकास की धारा समाप्त नहीं हुई । उन्होने द्विवेदी युग की आख्यानमूलक धारा में गुणात्मक रूप से काफी परिवर्तन किया । एक -कथावस्तु वहाँ क्षीण हो गया । दो-वस्तुपरकता के स्थान पर पात्रों की व्यक्तिगत संवेदना और कल्पना शीलता को प्रसार,पन्त, निराला,रामनरेश त्रिपाठी ने विशेष महत्व दिया । महान चरित्रों का मोह छोड़कर काल्पनिक, लोकाख्यान आधारित चरित्रों को खण्डकाव्यों का विषय बनाया गया । रामनरेश त्रिपाठी ने पौराणिक-ऐतिहासिक कथा और पात्रों का मोह छोड़कर देश भक्ति भाव से प्रेरित नयी कथा और उसके अनुरूप नये पात्रों की उद्भावना अपने पथिक, मिलन और स्वप्न खण्डकाव्यों में की । इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद का 'प्रेम पाथिक' और सुमित्रा नंदन पंत का 'ग्रंथि' खण्डकाव्य है । सामन्ती रूढ़ियों के भीतर प्रेम की विडम्बना को पंत ने ग्रंथि में उजागर किया । सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने तुलसीदास के लोकाख्यान को आधार बनाकर अपना तुलसीदास खण्डकाव्य लिखा जिसमें देश की सास्कृतिक चिन्ता सर्जनात्मक स्तर पर प्रसिद्ध होती है । रामकुमार वर्मा ने ऐतिहासिक कथानक के आधार पर 'चित्तौड़ की चिता' खण्डकाव्य लिखा । छायावादी दृष्टि के बावजूद उसे पंत निराला के खण्डकाव्यों जैसी लोक प्रियता प्राप्त नहीं हुई ।

छायावादोत्तर काल में भी कई कवियों की प्रवृत्ति खण्डकाव्य के सृजन की ओर रही है । इनमें रामधारी सिंह दिनकर की 'रश्मिरथी' बालकृष्ण शर्मा नवीन का प्राणार्पण, नरेन्द्र शर्मा की द्रोपदी, केदारनाथ मिश्र प्रभात की 'कर्ण' उद्यशंकर भट्ट की कौन्तेयकथा, सोहनलाल द्विवेदी की 'कुणाल' आदि खण्डकाव्य कृतियों के नाम लिए जा सकते है । जयंशकर प्रसाद ने आधुनिक काल की विशेषताओं में लघुता के प्रति दृष्टिपात को शामिल किया था । उनके पहले महावीर प्रसाद द्विवेदी इस बात के पक्षधर थे कि जो पात्र इतिहास मे उपेक्षित रह गये है, उन्हें काव्य के भीतर महाकाव्य या खण्डकाव्य के रूप मे महत्व देना चाहिए । कर्ण इतिहास के उपेक्षित पात्रों में से एक रहा है और छायावोदात्तर काल के कवियों ने कर्ण के जीवन संघर्ष को अपने खण्डकाव्यों में विशेष महत्व दिया लेकिन कर्ण सम्बन्धी कृतियों में अपने काव्यत्व और प्रवाहशीलता के कारण दिनकर की रश्मिरथी को जो मुकाम हासिल हुआ वह दूसरी कृति को प्राप्त नहीं हो सका ।

खण्डकाव्य के विकास की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य बहुत समृद्ध है । स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने खण्डकाव्य की परम्परा को नई सोच और संवेदना के साथ आगे बढाया । इन कवियों ने अपने खण्डकाव्यों का कथानक वैदिक, पौराणिक, अर्द्ध ऐतिहासिक-रामायण और महाभारत से खासतौर पर चुना लेकिन उनकी संवदेना उन्होंने समकालीन रखी । स्वातंत्र्योत्तर खण्डकाव्य की परम्परा को

आगे बढाने वाले कवियों में अनेक नाम गिनाये जा सकते है, लेकिन जिन कवियों ने अपनी पहचान बनायी उनमें धर्मवीर भारती (कनुप्रिया), नरेश मेहता (संशय की एक रात, प्रवाद पर्व, महाप्रस्थान, शबरी), कुँवर नारायण (आत्मजयी), नागार्जुन (भस्मांकुर) जगदीश गुप्त (शम्बूक) के नाम विशेष रूप से लिए जा सकते है ।

नरेश मेहता स्वातंत्र्योत्तर युग के सबसे बडे प्रणेता है- खण्डकाव्य कृतियों की संख्या की दृष्टि से । संशय की रात, प्रवादपर्व, महाप्रस्थान, शबरी आदि उनके खण्डकाव्य है और इनमें संशय की रात सर्वाधिक चर्चित है । संशय की रात का सम्बन्ध रामायण के 'राम' से है । लेकिन इस में राम के जीवन की एकरात के संशय का सन्दर्भ है । रावण से युद्ध के पहले राम रातभर युद्ध के औचित्य पर विचार करते है । मेहता जी ने राम के संशय और उसके निराकरण को चार वर्गो में फैला दिया है । राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले युद्ध और उनके परिणाम रचना की पृष्ठभूमि के रूप में है । इसी प्रकार 'राम जैसे ऐतिहासिक पात्र के जरिए उनकी चिन्ता आधुनिक युग की है । मेहता जी ने संशय की एकान्त की भूमिका मे लिखा हैं कि 'युद्ध आज की प्रमुख समस्या है । अपने प्रयोजन के लिए मैने वह स्थल चुना जो घटनाहीन था,किन्तु मेरी रचना-संभावना के लिए उर्वर । राम जिस द्विविधत्व को प्रस्तुत करते है, उसके लिए यही उपयुक्त स्थल था ।" राम के बारे में उनका कहना है कि "राम आधुनिक प्रज्ञा का प्रतिनिधित्व करते है । युद्ध आज की प्रमुख समस्या है । संभवत: सभी युग की । इस विभिषीका को सामाजिक एंव वैचारिक धरातल पर सभी युगों में भोगा जाता रहा है और इसीलिए राम को भी ऐसा एकत्व देकर प्रश्न उठाये गये । जिस प्रकार कुछ प्रश्न सनातन होते है, उसी प्रकार कुछ प्रज्ञापुरूष सनातन प्रतीक होते है । राम ऐसे ही प्रज्ञा -प्रतीक है ।" राम के संशय पर गीता के अर्जुन के संशय की छाप है । वे पहले उसी भाषा का इस्तेमाल करते है- "मैं सत्य चाहता हूँ । युद्ध से नहीं । " वे सीताहरण को व्यक्तिगत घटना मानते हुए जनविनाश का कारण नहीं बनना चाहते, लेकिन अन्तत: लोकहित के मद्दे नजर युद्ध का औचित्य भी स्वीकार कर लेते है । कुल मिलाकर यह चिन्तनात्मक खण्डकाव्य है, विचारों की स्फीति के कारण उसमें संरचनात्मक कसाव भी नहीं है ।

'प्रवाद पर्व' और शबरी दोनो खण्डकाव्यों का आधार रामकथा ही है । 'प्रवार्द पर्व' सीता सम्बन्धी लोकापवाद की कथा के आधार पर पाँच संर्गो में रचित खण्डकाव्य है । यहाँ भी राम के सामने एक ऐतिहासिक प्रश्न है । यही प्रश्न राम के व्यक्तित्व के निजी और राजनीतिक पक्ष के बीच द्वन्द का कारण है । लक्ष्मण और धोबी अन्य पात्र है । साधारण जन का प्रतिनिधि धोबी है और उसका प्रश्न आक्षेप राम के मन को मथ देता है और वे सोचते हैं कि "जब कोई पृथुल्जन या साधारण जन अधपेट खाकर रह जाता है तो उसके चरित्र की यह धैर्य परीक्षा सीता की अग्नि परीक्षा से किस अर्थ से कम है ?"

'शबरी' खण्डकाव्य की रचना मेहता जी ने पाँच सर्गो में की है । शबरी राम, मतंग ऋषि उसके प्रमुख पात्रों में है । शबरी के बारे में नरेश मेहता ने लिखा है कि "शबरी की कथा निम्नवर्ग की एक साधारण आत्मिक एंव आध्यात्मिक संघर्ष की ऐसी कथा है जो रामायण के शीर्षस्थ पात्रों चरित्रों में भी अपनी पहचान बनाये रखती है ।' दरअसल मेहता जी की शबरी के प्रति दृष्टि वैष्णवी ही है । वे उसे महिमा मंडित करते है- 'शबरी अत्यंज है तो क्या । वह शक्ति रूप है शूद्रा । है तेजस्व

वह केवल । शिव-शक्ति रूप है शूद्रा सारी उदारता के बावजूद वे वर्ण व्यवस्था के दायरे से उसके चरित्र को निकाल नहीं पाते है ।

'महाप्रस्थान' महाभारत के एक विशेष प्रसंग स्वर्गारोहण पर आधारित तीन सर्गो का खण्डकाव्य है । युधिष्ठिर मुख्य पात्र है । जिनकी चिन्ता के केन्द्र महाभारत के युद्ध में मानव जाति की नाश से ऊपजी पीडा और पश्चाताप है । युधिष्ठिर के पश्चाताप पर अंधायुग के कृष्ण की छाया बहुत स्पष्ट है । जैसे- "मैने ही वह युद्ध जीता भी । और पराजित भी मैं ही हुआ। दुर्योधन बनकर मैने ही मृत्यु वरण की । और युधिष्ठिर बनकर । आज मैं ही इसी विजय का पश्चाताप करते हुए इस हिम में गल रहा हूँ । "

'कनुप्रिया' धर्मवीर भारती का प्रसिद्ध खण्डकाव्य है । कनु और राधा के प्रेम की मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठा करते हुए भारती जी ने इसे पाँच सर्गो में रचा है । राधा के भीतर की अस्मिता जन्य पीडा का बोध ही इसे आधुनिक रूप देता है । राधा के इस कथन को देखिए - "सुनो कनु, सुनो । क्या मैं एक सेतु थी तुम्हारे लिए ।" हाय मुझी पर पग रखकर । मेरी बाँहो से । इतिहास तुम्हें ले गया । 'भारती के गीतिनाट्य 'अंधायुग के बाद इसी रचना को लोकप्रियता मिली ।

'आत्मजयी' कुंवर नारायण का चर्चित खण्डकाव्य है । मृत्यु पर जोवन की विजय को उन्होंने अपने उपजीव्य 'कठोपनिषद्' से भिन्न अधिक स्वाभाविक मानवीय धरातल पर उठाया है । आत्मजयी की समस्या एक साधारण आदमी की बुनियादी जरूरतों से भिन्न है । इसकी भूमिका में कुंवर नारायण ने लिखा है कि " आत्मजयी में उठाई गई समस्या मुख्यत: एक विचारशील व्यक्ति की समस्या है । केवल ऐसे प्राणी की समस्या नही है जो दैनिक समस्याओं के आगे नहीं सोचता, या नहीं सोच पाता । नचिकेता की चिन्ता भी अमर जीवन की चिंता है । 'अमर जीवन' से तात्पर्य उन अमर जीवन मूल्यों से है जो व्यक्ति जगत का अतिक्रमण करके सार्वकालिक और सार्वजनीन बन जाते । " (आत्मजयी पृष्ठ-5) वे आगे इसका मूल आशय स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'आत्मजयी मूलत: जीवन की सृजनात्मक सम्भावनाओं में आस्था के पुनर्लाभ की कहानी है (वही पृष्ठ -8) इस काव्य का मुख्यपात्र नाचिकेता है जो नये जीवन का वाहन विद्रोही है । वह कहता हैं कि - 'नया जीवन बोध संतुष्ट नहीं होता ऐसे जवाबों से जिनका सम्बन्ध आज से नही अतीत से है । तर्क से नहीं रीति से है ।

नागार्जुन की प्रधान काव्य प्रवृत्ति फुटकर स्वतंत्र कविता लिखने की है । लेकिन कुछ लम्बी कविताएं और एक खण्डकाव्य उनसे जुड़ा है । 'भस्मांकुर नागार्जुन का चर्चित खण्डकाव्य है । कालिदास के साहित्य से उन्हें विशेष लगाव रहा है । पुराण प्रसिद्ध शिव की कथा और कुमार संभव का एक महत्वपूर्ण अंश है - कामदेव दहन की कथा । सृष्टि के अंकुर रूप में काव्य के चिरन्तर रूप की खोज भस्मांकुर का मुख्य प्रयोजन है । काम, रति, शिव, गिरिजा मुख्य पात्र है और इनका चित्रण मनुष्योचित गुण और दुर्बलता के साथ है । शिव और गिरिजा के दाम्पत्य सम्बंध पर रति की टिप्पणी आधुनिक बोध से संचालित है । वह शिव गिरिजा के अनमेल दाम्पत्य सम्बंध के बारे में कहती है । कि "आखिर वह सुकुमारी क्यों बूढे को करने लगी पंसद । क्या अनमेल समागम अनिवार्य सुर-समाज की बुद्धि हो गयी भ्रष्ट ।

डॉ जगदीश गुप्त का खण्डकाव्य ' शम्बूक' आधुनिक हिन्दी खण्डकाव्य की परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है । आठ सर्गो में रचित इस काव्य को जगदीश गुप्त ने लघु काव्य कहा है और सर्ग के स्थान पर अंश रखा है । इसका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होने कहा है कि "खण्डकाव्य शब्द मेरे मन को किसी टूटी हुई वस्तु का बोध कराता है । लघुकाव्य शब्द भी सापेक्षिक है, पर उससे यह बोध उत्पन्न नहीं होता । इसी तरह राजद्वार' आदि को मै 'सर्ग' की जगह अंश' कहना अधिक संगत समझता हूँ । अंश में अंशो के साथ एकता का भाव अधिक दिखाई देता है ।" 'शम्बूक' मे राम मुख्य पात्र है । गुप्त जी ने शम्बूक को उसकी अस्मिता और विद्रोही चेतना के प्रतिनिधि रूप में रचा है । जैसे कि - "मारते हो और कहते हो इसे उद्धार ।चलेगा कब तक तुम्हारा यह घृणित व्यापार ।" जो व्यवस्था वर्ग सीमित स्वार्थ से हो ग्रस्त वह विषम घातक व्यवस्था शीघ्र ही हो । अस्त्र"

2.6 सारांश

लम्बी कविता और खण्डकाव्य के विकास का अवसर विशेष रूप से आधुनिक युग ने प्रदान किया । आधुनिक काल के पहले हिन्दी में यत्र-तत्र खण्डकाव्य अवश्य मिलते है, लेकिन उनका क्रमबद्ध व्यवस्थित विकास आधुनिक युग की देन है । संस्कृत काव्यशास्त्र में खण्डकाव्य के स्वरूप की विस्तार से चर्चा इसलिए नहीं है कि यह विधा उस समय विकसित न थी । आधुनिक युग ने खण्डकाव्य के उस विशिष्ट स्वरूप से हिन्दी पाठकों व आलोचकों को परिचित करवाया जिसकी संवेदना और शिल्प आधुनिक थे । यद्यपि अनके खण्डकाव्य पुरानी कथाओं और यात्रो को आधार बनाकर चले लेकिन उनकी संवेदना और विचार का आधार आधुनिक युगबोध बना । इसी आधुनिक युगबोध ने ऐसे उपेक्षित पात्रों को प्रतिनिधि पात्र बनाकर खण्डकाव्य लिखने की प्रेरणा दी, जिनकी कल्पना आधुनिक युग के पहले की नहीं जा सकती थी । शबरी, शम्बूक व कर्ण केन्द्रित खण्डकाव्य की रचना आधुनिक युग में ही संभव थी । जहाँ तक लम्बी कविताओं का प्रश्न है? उनकी प्रेरणा पाश्चात्य आधुनिक साहित्य है । आधुनिक जीवन की जटिलता ने दिव्यपात्र वाले पुराने महाकाव्यों की राह छोडकर पूँजीवादी व्यवस्था के मध्यवर्गीय संवेदना की अभिव्यक्ति के रूप में लम्बी कविता की रचना के लिए राह खोल दी । आख्यान का विरल आधार प्रारम्भ की लम्बी कविताओं में अवश्य रहा, लेकिन बाद की लम्बी कविताओं मे उसकी भी जरूरत नहीं रह गई । जहाँ तथ्य की दृष्टि से उनमें विविधता है वहाँ शिल्प की दृष्टि से भी इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कविता को समृद्ध करने में खण्डकाव्य और लम्बी कविता दोनों सहयोगी हुए हैं ।

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लम्बी कविता और खण्डकाव्य के स्वरूप पर संक्षेप में विचार कीजिए ।
2. लम्बी कविता की परम्परा और विकास पर एक लेख लिखिए ।
3. खण्डकाव्य की परम्परा और विकास का वर्णन कीजिए ।

2.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1. रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दीसाहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संस्करण सं 2041 ।

2. नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, राजकमण प्रकाशन-नई दिल्ली द्वितीय संस्करण, सन् 1974 ।
3. डॉ. नरेन्द्र मोहन, सं.लम्बी कविताओं का रचनाविधान, दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण -सन् 1977 ।
4. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, सं साहित्य कोश भाग-1 ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी तृतीय संस्करण, सन् 1985 ।
5. डॉ. कविता शर्मा, हिन्दी के स्वातत्रयोत्तर मिथकीय खण्डकाव्य, टा सप्त किरण सोसाइटी, अहमदाबाद,प्रथम संस्करण सन् 1999 ।
6. डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली,राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण सन् 2009 ।
7. दूधनाथ सिंह, 'निराला; आत्महन्ता' आस्था, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद सन. 1995 ।

इकाई - 3

परिवर्तन (सुमित्रानन्दन पंत) की व्याख्या और विवेचन

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 कवि-परिचय

3.2.1 जीवन- परिचय

3.2.2 रचना-परिचय

3.3 काव्य वाचन और सन्दर्भ सहित व्याख्या

3.4 शब्दावली

3.5 सारांश

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.7 सन्दर्भ ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

यह इकाई छायावाद के मुख्य कवि सुमित्रानन्दन पंत से सम्बन्धित है । इस इकाई के अध्ययन से आप -

- सुमित्रानंदन पंत के जीवन से परिचित हो सकेंगे ।
- रचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- 'परिवर्तन' कविता का वाचन व आस्वादन कर सकेंगे और कविता की व्याख्या विश्लेषण कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी काव्य में काव्य, भाषा और शिल्प की दृष्टि भारतेन्दु और द्विवेदी युग के बाद सबसे समृद्ध युग छायावाद है । सुमित्रानन्दन पंत छायावाद के संस्थापक कवियों में से एक है। छायावाद को एक कारगर काव्यान्दोलन बनाने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है । उनकी ख्यातनाम 'पल्लव' काव्यकृति छायावादी कविता का घोषणा पत्र कही जाती है । उनके अप्रतिम कवि व्यक्तित्व और रचनाधर्मिता का परिचय स्नातक स्तर पर हिन्दी शिक्षा के अभिलाषी छात्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है । इसके साथ यह भी जरूरी है कि छात्र उनकी अत्यन्त प्रसिद्ध कविताओं का वाचन करें एवं आस्वाद का आनंद उठाये । इसी के मद्दे नजर पंत की अत्यन्त लोकप्रिय लम्बी कविता 'परिवर्तन' इस इकाई में शामिल की जा रही है और उसके मर्म को भी उजागर करने का प्रयास किया जा रहा है । पंत की प्रस्तुत कविता के बारे में जानने से पहले जरूरी है कि आप उनके जीवन और काव्य से परिचित हो लें ।

सुमित्रानन्दन पंत का जन्म 20 मई सन् 1900 ई० कोसानी जिला अल्मोड़ा के एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था । उनके पिता गंगादत्त पंत कोसानी की एक चाय रियासत के प्रबन्धक थे । पंत के जन्म के पश्चात् ही उनके ऊपर से उनकी माता का साया उठ गया था । आठ भाई-बहनों के बीच

वे सबसे छोटे थे, इसलिए सबके दुलारे भी थे । बचपन में उनका नाम गोसाई दत पंत था, बाद में उन्होंने बदल कर सुमित्रानन्दन पंत कर लिया ।

पंत जी की प्रारम्भिक शिक्षा अल्मोड़ा में हुई थी । मैट्रिक की पढ़ाई के लिए सन् 1918 मे बनारस आ गये और जयनारायण हाई स्कूल में दाखिला लिया । उसके बाद वे अध्ययन के लिए इलाहाबाद चले गये और वहाँ के क्योर सेंट्रल कॉलेज में पढने लगे । इलाहाबाद के अध्ययन के दौरान राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से विशेष रूप से प्रभावित हुए। महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन के कारण उन्होंने स्कूली पढाई को तिलांजलि दे दी । इलाहाबाद में रहते हुए वे एक ओर खडी बोली आन्दोलन के सम्पर्क में आये, वहीं रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं से परिचित हुए । इसी दौरान उन्होंने अंग्रेजी के स्वच्छंदतावादी कवियों की कविताओं का गहन अध्ययन किया और उनसे गहरे प्रभावित भी हुए। इलाहाबाद के इसी एक दशकीय जीवन में उनकी पल्लव, वीणा, गंथि आदि काव्य कृतियाँ प्रकाशित हुई और एक छायावादी कवि के रूप में उनकी पहचान भी बनी । अगले दस वर्ष (सन् 1931-40) उन्होंने प्रतापगढ़-काला कांकर में गुजारे । इस दौरान वे समाजवादी विचारों से प्रभावित हुए । काला कांकर मे रहते हुए उन्होंने गुजंन, ज्योत्सना, युगान्त, युग वाणी, ग्राम्या आदि काव्य कृतियों की रचना की और श्री नरेन्द्र शर्मा के सहयोग से 'रूपाभ' (सन् 1938) मासिक भी निकाला।

पंत जी ने अपने जीवन के अगले 7-8 वर्ष कभी अल्मोड़ा , कभी मद्रास, कभी बम्बई में गुजारे, लेकिन उनके जीवन की यात्रा की धुरी खासतौर पर इलाहाबाद ही बना रहा । सन् 1958 से वे स्थायी रूप से इलाहाबाद में बस गये । इसका एक ठोस कारण था । दरअसल आल इंडिया रेडियो का मुख्यालय इलाहाबाद में था । वहीं उन्होंने पहले हिन्दी चीफ प्रोड्यूसर, बाद में हिन्दी परामर्शदाता की नौकरी कर ली । अपने जीवन का अन्तिम प्रयाण भी उन्होंने इलाहाबाद से किया । सन् 1977 में इलाहाबाद मे ही उन्होंने इस-लोक को अलविदा कह दिया । छायावादी कवियों में सरकारी तंत्र से सबसे अच्छे ताल्लुकात सुमित्रानन्दन पंत और महादेवी वर्मा के थे । रचनाकार के बतौर दोनों को इसका लाभ भी मिला । सन् 1961 में पंत की काव्य कृति 'कला और बूढ़ा चाँद' साहित्य अकादमी, सन् 1965 में 'लोकायतन' (महाकाव्य) सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार और सन् 1969 में चिदम्बरा' को ज्ञान पीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ । उत्तरप्रदेश सरकार ने उन्हें साहित्यिक सेवा के लिए सम्मानित किया और भारत सरकार ने 'पद्म भूषण' उपाधि से उन्हें अलंकृत किया ।

पंत ने भारत के बाहर कई देशों की यात्राएं भी की । सन् 1961 में उन्होंने सोवियत-भारत मैत्री संघ की ओर से, सन् 1966 में नेहरू पुरस्कार प्राप्त रचनाकार के कारण रूस और अन्य यूरोपीय देशों की यात्राएं की।

3.2.1 रचना-परिचय

छायावादी रचनाकारों में रचना-वैविध्य की दृष्टि से सबसे इकहरा रचनात्मक व्यक्तित्व सुमित्रानंन्दन पंत का है । जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा ने गद्य और पद्य दोनों विधाओं में समानाधिकार से लिखा, छायावाद को समृद्ध किया और दोनों क्षेत्रों में ख्याति भी प्राप्त की । पंत शुरू से लेकर आखिर तक कविता के क्षेत्र में हाथ-पाँव मारते रहे और इसी क्षेत्र

में लोकप्रियता भी हासिल की । सर्जनात्मक गद्य से लेखन के नाम पर कुछेक (पाँच) कहानियाँ और एक उपन्यास- 'हार' है लेकिन उन्हें गद्य क्षेत्र में उनका बाल-प्रयास मात्र कहा जा सकता है ।

छायावाद में पंत का प्रवेश वीणा, ग्रंथि और उच्छवास की कविताओं से हुआ, लेकिन एक छायावादी कवि के रूप में उनकी पहचान बनी 'पल्लव' (सन् 1926) की कविताओं से । छायावाद में पल्लव का प्रकाशन दो कारणों से बहुत महत्व रखता है । एक - अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के कारण । इसमें पंत ने ब्रज भाषा और खड़ी बोली के चले आते विवाद का अन्त करते हुए खड़ी बोली की काव्य भाषा के रूप में निर्विवाद प्रतिष्ठा कर डाली । इसके साथ उन्होंने खड़ी बोली की प्रकृति, शब्द और छंद चयन पर गहराई से विचार किया । 'पल्लव' के महत्व का दूसरा कारण इसकी प्रौढ़ कविताएं हैं जिनमें द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक कविता से अलग किस्म की दृष्टि और सौन्दर्य बोध, कल्पनाशीलता मिलती है । पल्लव की भाषा भी द्विवेदी युग की भाषा से काफी सुघड़ है ।

'पल्लव' के बाद पन्त की जिन काव्य कृतियों ने अपनी विशेष पहचान बनाई उनमें गुंजन(1932),ज्योतना (1934), युगान्त (1936), युगवाणी (1939), ग्राम्या (1940), कला और बूढ़ा चाँद (1959) और लोकायतन महाकाव्य (1964) है । पल्लव से गुंजन तक पंत एक प्रौढ़ प्रकृति सौन्दर्य-प्रेमी, कल्पनाशील, जिज्ञासु कवि के रूप में सामने आते हैं । उनकी भाषा, छंद-संगीत उनके भाव सौन्दर्य का पोषक है । गुंजन के बाद वे एक ओर ज्योत्स्ना की राह पकड़ कर स्वर्णधूलि, स्वर्ण किरण, रजत शिखर से चलते हुए अरविन्द दर्शन से हाथ मिलाते हैं । वहीं गाँधीवादी और मार्क्सवाद में वे सामाजिक अभ्युदय और लोक-कल्याण देखते हैं और अरविन्द दर्शन में वे आत्म कल्याण और आत्मोत्कर्ष । गुँजन के बाद पंत की काव्य भाषा बदल गयी, संस्कृत का आग्रह कम हो गया और वह गद्योमुख हो गयी ।

पंत ने अपनी कविताओं के कई संकलन तैयार किये और करवाये भी, जिन में आधुनिक कवि-2, चिदम्बरा और तारापथ को विशेष लोकप्रियता मिली ।

3.3 काव्य वाचन और सन्दर्भ सहित व्याख्या

वाचन - एक

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल?
भूतियों का दिगन्त छविजाल
ज्योति चुंबित जगती का भाल?
राशि-राशि विकसित वसुधा का वह यौवन विस्तार?
स्वर्ण की सुषमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार ।
प्रसूनों के शाश्वत श्रृंगार
(स्वर्ण भृंगों के गंध-विहार)
गूँज उठते थे बारंबार
सृष्टि के प्रथमोद्गार ।
नग्न सुंदरता थी सुकुमार

ऋद्धि औ सिद्धि अपार!
अये, विश्व का स्वर्ण स्वप्न? संसृति का प्रथम प्रभात,
कहा वह सत्य, वेद विख्यात?
दलित, दुख दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरिचित जरा-मरण भू-पात ।
हाय! सब मिथ्या बात । ---
आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरती सुनी - साँस ।
वही मधु ऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती, - जीवन है भार!
आज पास नद के उद्‌गार
काल के बनते चिह्न कराल,
प्रात का सोने का संसार,
जला देती संध्या की जाल
अखिल यौवन के रंग उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल,
कचों के चिकने काले व्याल
केंचुली, काँस, सिवार,
गूँजते हैं सबके दिनचार
सभी फिर हाहाकार!
आज बचपन का कोमल गात
जरा पीला पात!
चार दिन सुखद चाँदनी रात
और फिर अंधकार, अज्ञात!
शिशिर-सा झर नयनों का नीर
झुलस देता गालों के फूल!
प्रणय का चुम्बन छोड़ अधीर
अधर जाति अधरों को भूल!
मृदुल होठों का हिमजल हास
उड़ा जाता निःश्वास समीर,
सरल भौंहो का शरदाकाश
घेरे लेते धन, चिर गंभीर
शून्य साँसों का विधुर वियोग

छुड़ाता अधर मधुर संयोग
मिलन के पल केवल दो-चार,
विरह के कल्प अपार/
अरे वे अपलक चार नयन
आठ आँसू रोते निरूपाय,
उठे-रोओं के आलिंगन
कसक उठते काँटों-से हाय!
किसी को सोने के सुख साज,
मिल गये यदि ऋण भी कुछ आज,
चुका लेता दुख कल ही ब्याज -
काल को नहीं किसी की लाज!
विपुल मणिरत्नों का छविजाल,
इन्द्रधनु कीं-सी छटा विशाल -
विभव की विद्युत् जवाल
चमक, छिप जाती है तत्काल,
मोतियों की जड़ी ओस की डार
हिला जाता चुपचाप बयार!
खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण,
अभी उत्सव औ हास हलास,
अभी अवसाद, अश्रु उच्छ्वास!
अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीला आकाश,
सिसक उठता समुद्र का मन
सिहर उठते उडगन!
अहे निष्ठुर परिवर्तन!
तुम्हारा ही तांडव नर्तन
विश्व का करूण विवर्तन!
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन
निखिल उत्थान, पतन!
अहे वासुकि सहस्र फन!
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर!

शत्-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर!
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पांतर,
अखिल विश्व ही विवर
वक्र कुंडल
दिड़ मंडल!
अहे दुर्जेय विश्वजित्!
नवति शत सुखर, नरनाथ
तुम्हारे इन्द्रासन तल -माथ;
घूमते शत-शत भाग्य अनाथ
सतत रथ चक्रों के साथ;
तुम नृशंस नृप-से जगती पर चढ़ अनियंत्रित
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, पद मर्दित
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिमाएं खंडित,
हर लेते हो विभव, कला-कौशल चिर संचित!
आधि, व्याधि, बहु वृष्टि, वात उत्पात, अमंगल
बहि, बाढ़, भूकम्प-तुम्हारे विपुल सैन्यदल;
अहे निरकुंश पदाघात से जिनके विह्वल
हिल हिल उठता है टल-मल
पद-दलित धरा-तल!
जगत् का अविरत हृत्कंपन
तुम्हारा ही भय सूचन!
निखिल पलकों का मौन पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण!
विपुल वासना विकच विश्व का मानस शतदल
छान रहे तुम, कुटिल काल कृमि-से घुस पल-पन;
तुम्ही स्वेद सिंचित संसृति के स्वर्ण शस्य दल
दलमल देते, वर्षापल बन, वांछित कृषिफल!.
अये, सतत ध्वनि संपदित जगति का दिड्मंडल
नैश -गगन-सा सकल
तुम्हारा ही समाधिस्थल!
जगत की शत कातर चीत्कार
बेधती बधिर, तुम्हारे कान!
अश्रु स्त्रोतों की अगणित धार

सींचती उर पाषाण!
अरे क्षण-क्षण सौ निःश्वास
छा रहे जगती का आकाश ।
चतुर्दिक घहर-घहर आक्रांति
ग्रस्त करती सुख शान्ति!
हाय री दुर्बल भ्रांति! ---
कहा नश्वर जगती में शांति?
सृष्टि ही का तात्पर्य अशांति!
जगत् अविरत जीवन-संग्राम,
स्वप्न है यहाँ विराम!
एक सौ वर्ष, नगर उपवन,
एक सौ वर्ष, विजय वन!
यही तो है असार संसार,
सृजन, सिंचन, संहार!
आज गर्वोन्नत हर्ष अपार,
रत्न दीपावली, मंत्रोच्चार,
उलूकों के कल भग्न विहार;
झिल्लियों की झनकार!
दिवस निशि का यह विश्व विशाल
मेघ मारूत का मायाजाल ।
अरे, देखो इस पार --
दिवस की आभा में साकार
दिगम्बर, सहस रहा संसार ।
हाय, जग के करतार ।
प्रात ही कहलाई मात,
पयोधन बने उरोज उदार,
मधुर उर इच्छा को अज्ञात
प्रथम ही मिला मृदुल आकार,
छिन गया हाय, गोद का बाल,
गड़ी है बिना बाल की नाल!
अभी तो मुकुट बँधा था माथ,
हुए कल ही हल्दी के हाथ,
खुले भी न थे लाज के बोल,
खिले भी चुंबन शून्य कपोल,

हाय! रूक गया यही संसार
बना सिंदूर अंगार!
बात हत लतिका वह सुकुमार
पड़ी है छिन्नाधार!!
काँपता उधर दैन्य निरूपाय,
रज्जू-सा छिद्रों का कृशकाय!
न उर में गह का तनिक दुलार,
उदर ही में दानों का भार!
भूँकता सिड़ी शिशिर का श्वान
चीरता हरे! अचीर शरीर;
न अधरों में स्वर, तन में प्रण
न नयनों ही में नीर!

संदर्भ-

प्रस्तुत कविता सुमित्रानन्दन की प्रसिद्ध काव्यकृति पल्लव' से ली गयी है । यह सुमित्रानंदन पंत की लम्बी कविताओं में एक है ।

प्रसंग -

इस कविता की रचना के पहले पंत भारतीय दुखवादी दर्शन के सम्पर्क में आ गये थे । मध्ययुगीन निराशाबोध से यह कविता संचालित है । पंत इस कविता के माध्यम से बताना चाहते हैं कि इस संसार में सबसे बड़ी ताकत परिवर्तन है और मनुष्य उसके सामने असहाय है । प्रकृति और जीवन के अनेक दृष्टान्तों के सहारे पंत परिवर्तन के स्वरूप को रेखांकित करते हैं ।

व्याख्या -

जब सृष्टि की पहले पहल शुरूआत हुई थी, वही उसका स्वर्णिम काल था । चारों दिशाओं में समृद्धि ही समृद्धि थी, धरती का मस्तक ज्ञान प्रकाश से प्रकाशित था । चारों दिशाओं में धरती की जवानी (हरियाली) फैली दिख रही तो थी । उस समय तो स्वर्ग का सौन्दर्य धरती पर खेला करता था । खिले हुए फूल हमेशा धरती का श्रृंगार करते थे और उनके सुगन्धित वातावरण में सुनहली पट्टी वाले भ्रमर गुंजार करते हुए विहार करते थे ।

वह सृष्टि की पहली सुबह थी । चारों और सुकुमार खुली सुन्दरता अपार ऋद्धि और सिद्धियाँ फैली थी । अरे वही विश्व का सुनहला सपना था । वह सृष्टि का आदिम समय था, लेकिन वही पूर्ण था । अफसोस वह सुनहरा पूर्ण पुरातन समय अब कहाँ है? वेद विख्यात वह सत्य अब कहाँ है? तब तो दुख, दैन्य, दुराशा, निराशा का कहीं अता-पता नहीं था । तब तो बुढ़ापा और मृत्यु से भी आदमी अपरिचित था । वही धरती का सबसे सुनहला और पूर्ण काल था ।

☐ आज तो बचपन का कोमल शरीर देखते ही देखते पीले पत्ते जैसे बुढ़ापे में बदल जाता है । आज जीवन में सिर्फ चार दिनों (कुछ ही दिनों) तक ही सुख की चाँदनी रात होती है, फिर न जाने कितने समय तक दुख का अंधेरा होता है । शिशिर की ठंडी हवा जिस प्रकार फूलों को झुलसा देती है उसी प्रकार आँखों के गरम आँसू गालों की हँसी को झुलसा देते हैं । आज प्रेमी बीच में

प्रणय-चुम्बन छोड़ कर एक दूसरे के होंठो का भूल जाते हैं । जिस प्रकार गरम हवा हिमजल को भाप बनाकर उड़ा ले जाती है उसी प्रकार वियोग की गरम साँसें होठों की मृदुल हँसी को उड़ा ले जाती हैं । शरद के खुले और साफ आकाश को जिस प्रकार सघन बादल घेर लेते हैं उसी प्रकार आज माथे की सरलता को गहरी चिन्ता ढक लेती है । अधर का मधुर संयोग छोड़कर आज बीच में ही नाउम्मीद लम्बी उसाँसों वाला विधुर वियोग आ धमकता है । जीवन में मिलन के पल तो बहुत कम (दो चार) होते हैं, लेकिन विरह के समय की कोई सीमा नहीं है, उसका अन्त नहीं है । अरे. एक दिन जो आँखें एक दूसरे पर पूरा विश्वास करके चार हो गयी थीं, वही बाद में निरूपाय होकर आठ-आठ आँसू रोती है और प्रणयालिंगन से रोमांचित रोयें काँटे चुभने की पीड़ा से भर देते हैं ।

- ☐ संयोगवश यदि किसी को आज कुछ सुख-सुविधा उधार में गिल गयी है तो कल ही ब्याज के रूप में दुख उसे वसूल कर लेता है । समय इतना निष्ठुर है कि उसे किसी की परवाह या लज्जा नहीं है । जिसके पास इन्द्रधनुष के समान तरह-तरह के मणिरत्नों की ढेर सारी धनसम्पदा है, बिजली की चमक की तरह उसकी चमक बहुत जल्दी गायब हो जाती है । जिस प्रकार मोती जैसी ओस वाली डाली को हवा हिलाकर ओस से रिक्त कर देती है, वैसे ही धन सम्पदा को काल लोगों के पास से हर लेता है ।
- ☐ "यदि एक ओर जन्म के साथ कोई आँख खोलता है तो दूसरी ओर कोई मृत्यु के साथ आँख मूँद लेता है । यदि अभी किसी के यहाँ उत्सव, हँसी और उल्लास का दौर चल रहा है तो उसी समय किसी के यहाँ अवसाद, आँसू और लम्बी साँसों का दौर चलता है । जग की यह अस्थिरता देखकर जैसे हवा स्वयं अफसोस जाहिर कर रही हो, जैसे आकाश पेड के पत्तों पर पड़ी ओस के रूप में आँसू बहाकर रो रहा है और समंदर तारे जैसी चमकीली लहरों के रूप में सिसक रहा है ।
- ☐ हे निष्ठुर परिवर्तन! तुम्हारे प्रलयकारी तांडव नृत्य से विश्व में सुखदुख का कराल चक्र चल रहा है । तुम्हारे आँखे खोलने और बंद करने के साथ धरती का विकास और विनाश हो जाता है । हे हजारों फन वाले वासूकि रूपी परिवर्तन! तुम न दिखाई पड़ने वाले लाख पैर वाले हो और उनके चिह्न तुम धरती के क्षत-विक्षत हृदय पर छोड़ जाते हो । तुम अपनी फेन उगलती साँसों, भंयकर फुफकार से धरती के आकाश को चारों तरफ तेजी से घुमा रहे हो, मृत्यु तुम्हारे जहरीले दाँत हैं, एक के बाद एक युगों का परिवर्तन तुम्हारे द्वारा अपना केंचुल उतारना है, यह सारा संसार तुम्हारा रहने का बिल है और देशों दिशाएँ तुम्हारे कुण्डलीमार कर बैठने की सूचक है ।
- ☐ हे दुर्जेय विश्व विजयी! तुम्हारे सिंहासन के सामने सैकड़ों देवताओं के शिरोमणि, राजा-महाराजा अपना मस्तक झुकाते हैं, तुम्हारे रथ के पहियों के साथ सैकड़ों-सैकड़ों अनाथों के भाग्य का फैसला होता है । तुम क्रूर राजा के समान धरती की छाती पर निरकुंश होकर संसार को उत्पीड़ित और पैरों से कुचलते हो, नगरों को उजाड़ देते हो, महलों को गिरा देते हो और उसकी प्रतिमाएं तोड़ देते हो । इस प्रकार न जाने कितने सालों से संचित समृद्धि और कला-कौशल को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हो । भौतिक-शारीरिक-मानसिक रोग, अतिवृष्टि, आँधी, अमंगल, आग, बाढ़, भूकम्प आदि

भारी संख्या में तुम्हारा सेना दल है । हे निरंकुश! तुम्हारी सेना के चलने से धरती की सतह अपने रौंदे जाने से विकल होकर अंदर तक हिल जाती है ।

- जगत का निरन्तर काँपता हुआ हृदय तुम्हारे आतंक और भय का सूचक है । संसार का चुपचाप पतन तुम्हारे आने की सूचना है । अनेक आशाओं-आकांक्षाओं से खिले विश्व के मानस रूपी कमल की पंखुड़ियों को तुम विकराल काल रूपी कीड़े की तरह उसमें घुसकर छिन्न-भिन्न कर देते हो, तुम्हीं मेहनत और पसीने से सींची हुई वैभव सम्पन्न संस्कृति रूपी सुनहरी फसल को, अपेक्षित पैदावार को अपने वर्षाती ओलों से तहस-नहस कर देते हो । धरती की दशों दिशाएं तुम्हारे हुंकार से सदा गूँजती रहती है । सारा संसार आधी रात के काले आकाश की तरह तुम्हारी समाधि लगाने की जगह है ।

महाकाल का करूणा-रहित भौंरो का मटकाना ही तुम्हारी हास-परिहास है, विश्व का अब तक आँसू भरा इतिहास ही तुम्हारा इतिहास है । तुम्हारा निष्ठुर भावों वाला एक कटाक्ष मात्र सारे विश्व में प्रलय कर देता है, सम्पूर्ण प्रकृति की सृष्टि में युद्ध छेड़ देने में समर्थ है; तुम्हारे इस आतंकी युद्ध अभियान- से बादल को चूमने वाली बड़े महलों की पताकाएं, पर्वतों के शिखर धरती पर गिर पड़ते हैं और मेघाम्बर के रूप में बड़े-बड़े साम्राज्यों का वैभव नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है । अरे तुम्हारा एक रोमांच धरती की दशों दिशाओं को हिला देता है और उसके डर से पक्षी की तरह तारे (उल्का) धरती पर गिर पड़ते हैं, और मंत्र मुग्ध साँप की तरह सागर फन उगलता हुआ सैकड़ों फेनोवाली लहरों से तुम्हारे ही बीन की ध्वनि के संकेतो पर नाचने लगता है और सूर्य दशों दिशाओं के पिंजड़े में बद्ध हाथी के समान लगता है । तुम्हारी फुफकार से आहत हो कर आकाश भीषण गर्जन करता है ।

संसार के लोगों की सैकड़ों की संख्या में करूणार्त्त चीखें तुम्हारे बहरे कान को बेधा करती है, उनके आँसू के झरने अनगिनत धाराओं में तुम्हारे पत्थर जैसे कठोर हृदय को सींचते रहते हैं, सैकड़ों की संख्या में उनकी गरम उसाँसे बादलों के रूप क्षण-प्रति-क्षण धरती के आकाश को ढक लेती है, उनका रोना-चीखना चारों ओर घहरा-घहराकर सुख शांति को निगल लेता है । फिर भी तुम इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

इस नश्वर संसार में शान्ति कहाँ है? हाय रे ! शान्ति की परिकल्पना तो दुर्बल मन भ्रम मात्र है । सृष्टि का तात्पर्य शान्ति नहीं, बल्कि अशान्ति मात्र है । संसार में हमेशा जीवन-संघर्ष चलता रहता है, यहाँ स्थिरता या शान्ति स्वप्न मात्र है । एक सौ वर्ष तक नगर, बाग, विजयोन्माद का बन कायम रहता है । फिर तो वे भी उजाड़ हो जाते हैं । सर्जन, पोषण और नाश ही असार (नश्वर) संसार की रीति है । आज जो गर्व से तने हुए ऊँचे ऊँचे अनेक महल खड़े हैं, जिनमें रत्न जड़े दीप जलते हैं, मंत्रोच्चार गूँजते रहते हैं वही कल उजड़कर उल्लूओं के विहार स्थल बन जाते हैं और वहाँ सिर्फ झिल्लियों की झनकार सुनायी पड़ती है । दिन और रात रूपधारी यह विराट विश्व मेघ और हवा के मायाजाल (जादुई खिलवाड़) जैसा लगता है ।

अरे इस पार (क्षण भंगुर मृत्युओं की ओर) देखो! दिन की रोशनी में नंगा हो कर यह संसार सहम गया हे । हाय! संसार को रचनेवाले ईश्वर!

आज सुबह जिस स्त्री को माता कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिसके स्तन फैल कर पयोधर बन गये थे और उनमें दूध उतर आया था, जिसके हृदय की कोमल आकांक्षा को अनजाने ही पहली बार बच्चे के रूप में आकार मिला था; दुर्भाग्य रूपी काल ने उसके गोद से बच्चे को छीन लिया है, वह मर गया है । लेकिन नाल अभी भी उसकी देहरी पर गड़ी है । अभी कल की घटना है, जिसके सिर पर शादी का मौर बंधा था और हाथ हल्दी से पीले हुए थे अर्थात् जिसका कल ब्याह हुआ था, जो लज्जा छोड़कर अपने पति से खुलकर बोल भी नहीं पायी थी, जिसके गाल पति के चुम्बन से खिल नहीं पाये थे, वह विधवा हो गयी । यही पर आकर उसकी दुनिया उजड़ गयी, समाप्त हो गयी । उसके मस्तक का सिंदूर ही उसके जीवन के लिए अंगार बन गया । वह सुकुमार लड़की आँधी से मसली लता की तरह आधारहीन हो कर धरती पर पड़ी विलख रही है । जिस प्रकार आँधी पेड़ से लता को अलग करके आधार हीन बना देती है उसी प्रकार काल ने उस लड़की को अपने पति से हमेशा के लिए अलग करके सम्बलहीन बना दिया है । और उस ओर एक दूसरा ही दृश्य है । सम्बलहीन, दीनता की मूर्ति, रस्सी सा सिकुड़ा मरियल अनाथ बच्चा पड़ा है, जिसके हृदय को घर के लोगों का थोड़ा सा दुलारा भी नसीब न हुआ, जिसके पेट के लिए दाने भी भारस्वरूप बन गये, जिसके पेट में दाने भी न पड़े थे । शिशिर रूप कुत्ता भोंकते हुए उसके निर्वस्त्र शरीर ठंडी से चीर रहा है, न तो उसके होंठो पर कोई आवाज है, न शरीर में प्राण हैं और न ही उसकी आँखों में आँसू की कोई बूँद । यानि मृत प्राय है ।

विशेष

1. पंत ने 'परिवर्तन' कविता के इस भाग को अपने मध्यकालीन बोध और संस्कार से रचा है। इसके पीछे उनकी दृष्टि यह है कि यह संसार नश्वर, अस्थिर है । मनुष्य काल के सामने बेबस है और उसका जीवन दुख और अशान्ति का पर्याय है । मनुष्य के जीवन में सुख तो क्षणिक है, दुख की मात्रा बहुत ज्यादा है । जीवन के प्रति नियतिवादी, निराशावादी सोच इस कविता की कुंजी है ।
2. पंत जीवन के प्रति अपनी दुखवादी सोच को कविता का रूप देने के लिए प्रकृति और मनुष्य जीवन के क्षेत्र से अनेक उपकरण जुटाते हैं । उदाहरण के लिए - वे कभी प्रकृति के क्षेत्र से वसन्त, शिशिर, वर्षा, नदी, आँधी, सुबह-शाम का सन्दर्भ ले लेते हैं, तो कभी मानव जीवन से जवानी-बुढ़ापा, आदी आदि का । इन प्राकृतिक मानवीय उपकरणों के सहारे वे साधारण सी बात को कविता की शक्ल मे ढाल देते हैं।
3. 'परिवर्तन' में पंत की काव्य भाषा द्विवेदी युग के कवियों की तरह सीधी-सादी और लम्बी सामासिक पदावली न होकर छायावादी है । पंत का पद-गठन लक्षणामूलक और व्यंजनापरक है और इसलिए उनमें अर्थ सघनता अधिक है । जैसे - सरल भौंहो का शरदा काश/ घेर लेते घर, चिर गंभीर, पयोधन बने उरोज उदार', 'हुए कल ही हल्दी के हाथ' आदि ।

वाचन - दो :

सकल रोओं से हाथ पसार
लुटता इधर लोभ गृह द्वार;

उधर वामन डग स्वेच्छाचार
नापता जगती का विस्तार!
टिड्वियों-सा छा अत्याचार
चाट जाता संसार ।
बजा लोहे के दंत कठोर
नाचती हिंसा जिह्वा लोल;
भृकुटी के कुंडल वक्र मरोर
फुहँकता अंध रोष फन खोल;
लालची गीधों से दिन-रात
नोचते रोग-शोक नित गात,
अस्थि-पंजर का दैत्य दुकाल,
निगल जाता निज बाल!
बहा नर शोषित मूसलधार,
ढंड-मूडों की कर बौछार,
प्रलय-घन-सा घिर भीमाकार
गरजता है दिंगत संहार ।
छेड़ कर शस्त्रों की झंकार
महाभारत गाता संसार ।
कोटि मनुजों के, निहत अकाल
नयन मणियों से जटिल कराल
अरे, दिग्गज सिंहासन जाल
अखिल मृत देशों के कंकाल;
मोतियों के तारक लड़ हार
आँसूओं के श्रृंगार!
रुधिर के हैं जगती के प्रात,
चितानल के ये सायंकाल;
शून्य नि:श्वासों के आकाश,
आँसूओं के ये सिन्धु विशाल;
यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरू
अरे, जग है जग का कंकाल!!
वृथा रे, ये अरण्य चीत्कार
शान्ति सुख है उस पार!
आह भीषण उद्गार! -
नित्य का यह अनित्य नर्तन

विवर्तन जग, जग व्यावर्तन
अचिर में चिर का अन्वेषण
विश्व का तत्तवपूर्ण दर्शन!
अतल से एक अकूल-उमंग,
सृष्टि की उठती तरह तरंग,
उमड़ शत-शत बुदबुद संसार
बूड़ जाते निस्सार ।
बना सैकत के तट अतिवात!
गिरा देती अज्ञात ।
एक छवि से असंख्य उड्डगण,
एक ही सब में स्पंदन,
एक छवि के विभात में लीन
एक विधि के रे! नित्य अधीन!
एक ही लोल लहर के छोर
उभय सुख-दुख, निशि-शोर
इन्हीं में पूर्ण त्रिगुण संसार
सृजन ही है संहार!
मूँदती नयन मृत्यु की रात
खोलती नव जीवन की प्रात,
शिशिर की सर्व प्रलयकर वात
बीज बोती अज्ञात!
म्लान कुसुमों की मृदु मुस्कान
फलों में फलती फिर अग्लान,
महत् है, अरे, आत्म बलिदान,
जगत् केवल आदान-प्रदान!
एक ही तो असीम उल्लास
विश्व मे पाता विविधाभास;
तरल जलनिधि में हरित विलास,
शान्त अंबर में नील विकास;
वही उर-उर में प्रेमोच्छ्वास
काव्य में रस,कुसुमों में वास,
अचल तारक पलकों में ह्रास
लोल लहरों में लास!
विविध द्रव्यों में विविध प्रकार
एक ही मर्म मधुर झंकार।

वही प्रजा का सत्य स्वरूप
हृदय में बनता प्रणय अपार;
लोचनों में लावण्य अनूप;
लोक सेवा में शिव अविकार
स्वरों में ध्वनित मधुर, सुकुमार
सत्य ही प्रेमोद्‌गार
दिव्य सौन्दर्य, स्नेह साकार
भावनामय संसार!
स्वीय कर्मो के अनुसार
एक-गुण फलता विविध प्रकार
कहीं राखी बनता सुकुमार
कहीं बेड़ी का भार!
कामनाओं के विविध प्रहार
छेड़ जगती के उर के तार,
स्फूर्ति करते संचार;
चूम सुख-दुख के पुलिन अपार
छलकती ज्ञानामृत की धार!
पिघल होठों का हिलता हास
दृगों को देता जीन-दारन
वेदना ही में तपकर प्राण
दमक, दिखलाते स्वर्ण हुलास!
तरसते हैं हम आठो याम,
इसी में सुख अति सरस, प्रकाम
झेलते निशि-दिन का संग्राम;
इसी से जय अभिराम;
अलभ है इष्ट, अत: अनमोल;
साधना ही जीवन का मोल!
बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार;
दीन दुर्बल है रे संसार
इसी दे दया, क्षमा औ-प्यार!
आज का दुख कल का आह्लाद,
और कल का सुख, आज विषाद,
समस्या स्वप्न गूढ़ संसार,

पूर्ति जिसकी उस पार!
जगत जीवन का अर्थ विकास,
मृत्यु गति-क्रम का हास!
हमारे काम न अपने काम,
नहीं हम, जो हम ज्ञात;
अरे निज छाया में उपनाम
छिपे हैं हम अपरूप;
गँवाने आये हैं अज्ञात
गँवा कर पाते हैं ।
जगत की सुंदरता का चाँद
सजा लांछन को भी अवदात
सुहाता बदल, बदल, दिनरात
नवलता ही जग का आह्लाद!
स्वर्ण शैशव स्वप्नों का जाल,
मंजरित यौवन, सरस रसाल ।
प्रौढ़ता छायावाद सुविशाल,
स्थविरता नीरव सायंकाल;
वही विस्मय का शिशु नादान
रूप पर मँडरा, बन गुंजार,
प्रणय से बिंध, बँध, चुन-चुन सार
मधुर जीवन का मधु कर पान;
साध अपना मधुमय संसार,
डुबा देता निज तन, मन, प्राण!
एक बचपन ही में अनजान
जागते, सोते, हम दिन-रात;
वृद्ध बालक फिर एक प्रभात
देखता नव्य स्वप्न अज्ञात;
मूँद प्राचीन मरण
खोल नूतन जीवन!
विश्वमय हे परिवर्तन!
अतल से उमड़ अकूल, अपार
मेघ-से विपुलाकार
दिशावधि में पल विविध प्रकार
अतल में मिलते तुम अविकार!

अहे अनिवर्चनीय! रूप धर भव्य, भयंकर,
इन्द्रजाल-सा तुम अनन्त में रचते सुन्दर;
गरज-गरज, हँस-हँस चढ़ गिर, छा-ढा-भू अम्बर,
करते जगती को अजस्त्र जीवन में उर्वर
अखिल विश्व की शाखाओं का इन्द्रचाप वट
अहे तुम्हारी भीम भृकुटि पर
अटका निर्भर ।
अक औ बहु के बीच अजान
घूमते तुम नित्य चक्र समान,
जगत के डर में छोड़ महान
गहन चिह्नों में ज्ञान!
परिवर्तित कर अगणित नूतन दृश्य निरंतर
अभिनय करते विश्व-मंच पर तुम मायाकार!
जहाँ हास के अधर, अश्रु के नयन करूण तर
पाठ सीखते संकटों में प्रकट, अगोचर;
शिक्षास्थल यह विश्व-मंच, तुम नायक नटवर,
प्रकृति नर्तकी सूधर
अखिल में व्याप्त सूत्रधर!
हमारे निज सुख, दुख, निःश्वास
तुम्हें केवल परिहास;
तुम्हारी ही विधि पर विश्वास
हमारा चिर आश्वास!
अये अनंत हत्कंप! तुम्हारा अविरत स्पंदन
सृष्टि शिराओं में संचारित करता जीवन;
खोल जगत् के शत-शत नक्षत्रों-से लोचन
भेदन करते अंधकार तुम जग का क्षण-क्षण
सत्य तुम्हारी राजयष्टि, सम्मुखनत त्रिभुवन,
भू अकिंचन
अटल शान्ति नित करते पालन!
तुम्हारा ही अशेष व्यापार
हमारा भ्रम, मिथ्या अहंकार
तुम्हीं में निराकार साकार
मृत्युजीवन राब एकाकार!
अहे महांबुधि! लहरों-से शत लोक, चराचर,
क्रीड़ा करते सतत तुम्हारे स्फीत वक्ष पर;

तुम तरंगों-से शत युग, शत-शत कल्पतर
उगल, महोदर में विलीन करते तुम सत्वर;
शत सहस्र रवि-शशि, असंख्य ग्रह, उपग्रह उड्डगन
जलते बूझते है । स्फुलिंग से तुममें तत्क्षण;
अचिर विश्व में अखिल, दिशावधि कर्म वचन, मन
तुम्हीं चिरन्तन
अहे विवर्तनहीन विवर्तन!

('सन्दर्भ' और 'प्रसंग' के लिए वाचन-एक देखिए।)

व्याख्या -

इधर शरीर के खड़े हुए सारे रोओं से हाथ फैलाकर 'लोभ' घर-बार लूट लेता है, उधर वामन के छोटे-छोटे डग भरती हुई 'स्वेच्छाचारिता' सारी धरती को नाप लेता है और टिड्डियो के दल के समान 'अत्याचार' पूरे संसार को साफ कर जाता है ।

- एक ओर 'हिंसा' लोहे जैसे अपने कठोर दाँत किटकिटा कर जिह्वा घुमाते हुए चारों ओर नाच रही है और दूसरी ओर 'अंधाक्रोध अपनी गोल भृकुटि को टेढ़ा करके साँप के समान फन खोल कर फुफकारता है तथा लालची गीधों के समान 'रोग-शोक' दिन-रात निरन्तर शरीर को नोच रहा है और 'दुकाल का दैत्य' तो बच्चों के अस्थि-पंजर को निगल जाता है ।

  एक ओर 'संहार' लोगों के कटे सिर और धड़ की बौछार करते हुए उनके खून की मूसलधार वर्षा करता है, प्रलयंकारी विकराल बादल के समान चारों दिशाओं को घेर कर भीषण गर्जना करता है । इसी संहार रूपी बादल ने तीक्ष्ण बूँदों रूपी शास्त्रों की झंकार से चारों ओर महाभारत का युद्ध छेड़ रख है और सारा संसार उसके इसी संहारकारक महाभारती रूप के दुख भरे गीत गाता है । करोड़ों लोगों को मार डालने वाला 'अकाल' उनकी आँखों को मणियों की तरह धारण करके बहुत क्रूर बन गया है । इस अकाल रूपी योद्धा के सिंहासन की चमक-दमक सारे संसार में मरे हुए लोगों की हड्डियों पर सजा है । लोगों की आँसुओं की लड़ी ही अकाल रूपी राजा के श्रृंगार के लिए मोतियों की माला बन गयी।

- इस संसार की सुबह लोगों के खून से और शाम उनके चिता की आग से लाल हो गयी है, उनकी आशा रहित उम्मीदों से आकाश ढक गया है और उनके खारे आँसुओं से ही यह विशाल सागर बन गया है । इस संसार में सुख तो राई के समान मात्रा में बहुत कम है और दुख सुमेरू पहाड़ की तरह बहुत बड़ा है । अरे यह संसार अपनी हड्डियों पर खड़ा है । इसी वन रूपी निर्जन संसार में रोना निरर्थक है । सुख और शान्ति इस संसार में नहीं; बल्कि दूसरे लोक में है ।

- हाय री भीषण मनोकल्पना! यहाँ हर दिन मिथ्या का नाच होता है । यह संसार मिथ्याकल्पना है और इसका उलटा भी । अस्थिर तत्व के भीतर स्थिर तत्व का अन्वेषण ही संसार का तात्विक दर्शन है । सृष्टि के तल से निराधार आकांक्षा की लहर उठती है और वहीं जब उमड़कर ऊपर आती है तो सैकड़ों बुलबुलों का संसार आबाद कर देती है और बुलबुल वाले संसार में सारहीन चीजें डूब जाती है वही न जाने क्यों दूसरे पल उसे गिरा भी देता है । संसार ऐसा ही है, जो पल-पल बनता और बिगड़ता रहता है।

- [ ] असंख्य तारों में एक ही परम ज्योति चमकती है, सबके भीतर एक ही धड़कन है, सब एक ही परम सौन्दर्य की ज्योति में समा जाते हैं । संसार का मूल सत्य तो एक ही परमात्मा के अधीन है । सुख और दुख, रात और सुबह परमात्मा की एक ही सुंदर लहर के बनने और मिटने के दो सिरे हैं । यह सत्व, रज, तमोगुण स्वरूपा, संसार इसी के भीतर अपना सारा किया व्यापार करता है । असल में सर्जन के साथ ही उसका अन्त भी होता है । एक ओर मृत्यु रूपी रात आँखे बंद कर देती है और दूसरी ओर नवजीवन रूपी सवेरा आँखे उधाड़ देता है । शिशिर की रात की मारक हवा अनजाने ही धरती के गर्भ में बीज बो देती है । आगे वसन्त ऋतु में वही बीज पौधे से जवान हो कर फूलों के रूप में अपनी कोमल हँसी बिखेरता है, फिर वही फूल सूख कर निर्मल फलों में बदल जाते हैं । इस प्रकार बीज का फूलों के लिए और फूलों का फलों के लिए अपने रूप को निछावर कर देना महत कार्य है । यह जगत और कुछ नहीं है, केवल लेन-देन का व्यापार है ।
- [ ] अनन्त परमात्मा का एक ही आनंद इस संसार में अनेक रूपों में अपनी प्रतीति करवाता है । वही सागर में लहरों के खिलवाड़ के रूप में दिख पड़ता है और शान्त आकाश के भीतर फैले हुए नीले रंग के रूप में । वही आनंद लोगों के हृदय में प्रेमोद्‌गार, काव्य में रस के रूप में और फूलों के भीतर सुगन्ध, स्थिर तारों की टिमटिमाहट और सुन्दर लहरों के नृत्य रूप में प्रकट होता है । इस संसार के अनेक प्रकार के पदार्थो में भिन्न-भिन्न रूपों में एक ही सत्य हृदय की मधुर ध्वनि गूँज रही है ।
- [ ] वही एक परमात्मा सबकी बुद्धि में सत्य के रूप में विद्‌यमान है, वही सबके हृदय में असीम प्रेम का रूप धारण कर लेता है और आँखों के भीतर अनूठे सौन्दर्य के रूप में और लोक कल्याण में विशुद्ध शिव के रूप में प्रकट होता है । एक ही कोमल सत्य सभी प्राणियों के सवरों में मधुर ध्वनि के रूप में ध्वनित और प्रेमोद्‌कार के रूप में प्रकट होता है । दिव्य सौन्दर्य, स्नेह का मूर्तिमान रूप, अनन्त रूपाभावों की दुनिया वही है ।
- [ ] अपने-अपने कर्मो के अनुसार एक ही गुण (डोरा) अनेक रूपों में प्रकट होता है । कहीं वह भाई के कोमल हाथों की राखी बन जाता है तो कहीं अपराधी के हाथों की भारी हथकड़ी । तरह-तरह की इच्छाओं की चोट से संसार के हृदय के तार बज उठते हैं और उन्हें क्रियाक्षम बना देते हैं । सुख-दुख के असीम किनारों को चूमती हुई एक ही जलरूपा ज्ञानामृत की धारा उमड़ रही है।
- [ ] वही एक सत्य कभी द्रवीभूत होठों की हँसी बन जाता है, तो कभी आँखों की रोशनी बनकर उन्हें जीवनदान देता है; कभी वह प्राणों के रूप में वेदना की आग में तपकर दमक उठता है तो कभी उनकी उम्मीद भरी खुशी को सामने लाता है । हम आठों प्रहर उसी सत्य को पाने के लिए तरसा करते हैं । सत्य की यह अमिट लालसा ही सबसे बड़ा सुख है, अतिशय आनंदोंलब्धि है । सत्य की इसी प्रबल लालसा को लेकर लोग हर दिन जीवन-संघर्ष में उतरते हैं और सुंदर विजय भी प्राप्त करते हैं । इस पूर्ण सत्य रूपी इष्ट को पाना महा कठिन है । अत: इस अनमोल सत्य को पाने के लिए साधना के रूप में जीवन की कीमत चुकानी पड़ती है अर्थात् प्राण निछावर करना पड़ता है ।

- [ ] सुख और दुख परस्पर सम्बद्ध है । बिना दुख के सुख का महत्त्व आँका नहीं जा सकता । इसलिए दुख के अभाव में सुख निरर्थक है । सुख और दुख के क्षणों में जो आँखें आँसू से सूनी होती हैं वे जीवन को भारस्वरूप बना देती हैं । अरे इस संसार में दया, क्षमा और प्रेम की महिमा है । सबसे समर्थ होने पर दया, क्षमा और प्रेम की भला कीमत क्या होगी? कुछ भी नहीं ।
- [ ] आज जो दुख का क्षण है वही कल आनंद में बदल जायेगा और बीते हुए कल का जो सुख है, वहीं आज विषाद में परिवर्तित हो जायेगा । इस संसार की समस्या की समाधान स्वप्न के समान रहस्य पूर्ण है । संसार की समस्या का हल इस सुख-दुख रूपी संसार में नहीं, बल्कि इससे परे दूसरे लोक में है । इस संसारी जीवन का अर्थ है निरन्तर गतिशीलता, परिवर्तन और मृत्यु जीवन के गति क्रम के इस यानी रूकने या ठहरने का नाम है ।
- [ ] हम जो काम करते हैं, असल में वे हमारे काम नहीं है । हम अपने कार्य के कर्ता नहीं, बल्कि निमित या माध्यम मात्र हैं । हमसे काम करवाने वाला तो कोई और हे । हम जो बाहर से शरीर रूप में दिखाई पड़ते है, असल में वह हम नहीं है । यह बाहरी शरीर रूप तो हमारी छाया मात्र है, असल में हम अपने नाम में दूसरे हैं । इस बाहरी रूप के भीतर हम अरूप (निर्गुण) हैं । हम इस संसार में अपना अज्ञान गँवाने के लिए आये हैं । असल में हम अपने अज्ञान को खोकर ही अपना वास्तविक 'आत्म' रूप प्राप्त करते हैं ।
- [ ] संसार सुंदरता रूपी लांछन से युक्त होकर उदात्त लगता है । इसी प्रकार बारी -बारी से दिन और रात का क्रम निरन्तर बदलना अच्छा लगता है । चीजों के निरन्तर बदलते रहने में उनका नयापन मौजूद है और यही बदलाव संसार को एकरस होने से बचाता है, आनंद प्राप्त करता है ।
- [ ] यह जीवन आम के उस पेड़ की तरह है जो अपनी किशोरावस्था में मनोरम स्वप्नों के जाल बुनता है और वहीं आगे मंजरी धारण करके भरे-पूरे जवान वृक्ष में बदल जाता है । धीरे-धीरे वही आम का वृक्ष विशाल और छायादार होकर प्रौढ़ावस्था को प्राप्त कर लेता है और फिर आता है स्थविर की तरह विराग भरा बुढ़ापा और सबसे अन्त में आता है जीवन का सूना सांयकाल यानी मृत्यु। फिर वही प्राण एक नादान बच्चे के रूप में इस संसार में जन्म लेता है; विस्मय से उसे निहारता है । आगे वही जवान होकर भँवरे की तरह सुंदर फूल के रूप पर मंडराता है, उसके प्रेम का गीत गुनगुनाता है, प्रेम से विंधता है और उसमें बँध भी जाता है । वह फूल के मधुर जीवन के मकरंद का पान करके उसके जीवन के सार-सत्व को चुन लेता है । वह फूल के रूप और मकरंद में अपनी चाहत का मधुर संसार आबाद कर देता है और तन, मन, प्राण यानी सर्वस्व उसी फूल पर निछावर कर देता है ।
- [ ] बाल्यावस्था में अपने आस-पास से अनजान होकर हम दिन-रात सोते-जागते रहते हैं । वृद्ध और बालक दोनों जीवन का सवेरा चाहते हैं । दरअसल वृद्ध ही अगले जीवन की चाह में बालक के रूप में जन्म लेता है और जीवन के अनजाने नये सपनों को देखता है । उसके पुराने (बूढ़े) शरीर की मृत्यु के बाद बालक के रूप में उसे नये शरीर और जीवन की प्राप्ति होती है ।
- [ ] हे विश्वरूप परिवर्तन! तुम अतुल से उमड़कर मेघ के समान विराट और असीम रूप धारण कर लेते हो । एक ही पल में तुम देश और काल में अनेक रूप धारण कर लेते हो, लेकिन दूसरे ही पल अतल में समाकार निराकार हो जाते हो । हे परिवर्तन, तुम्हारा स्वरूप अनिर्वचनीय है।

कभी तुम भव्य रूप धारण कर लेते हो, तो कभी भयंकर रूप । तुम बादल के रूप में आकाश के भीतर जादू के समान कभी अनेक सुन्दर रूप धारण करते हो । तुम कभी गर्जन करते हुए, कभी हँसते हुए आकाश में बहुत ऊपर चढ़ जाते हो तो कभी धरती की ओर ढल पड़ते हो, कभी पूरे आकाश पर छा जाते हो, तो कभी धरती पर घर आदि को गिरा देते हो । तुम अपने जादूगर रूप से संसार के अनन्त जीवन को उर्वर बनाते हो । सम्पूर्ण विश्व की शाखा-प्रशाखा तुम्हारे ही भयंकर भौंहों के धनुष पर टिकी हुई है ।

- ☐ एक और अनेक के बीच तुम न जाने क्यों हर दिन पहिया बनकर घूमते हो और इस संसार के हृदय में अपनी गहन यात्रा के चिह्नों को स्मृति के रूप में छोड़ जाते हो । तुम बड़े मायावी अभिनेता हो । इस विश्वरूपी रंग मंच पर हमेशा नये-नये रूप धारण करके अभिनय करते हो । यह विश्व-रंगमंच एक शिक्षा-स्थल है और तुम ही उस रंगमंच के नायक और नटराजन हो । तुम्हारे तरह-तरह के अदृश्य और दृश्य संकेतों के जरिए देखनेवाले होठों पर हँसी का और करूणार्द्र आँखों में आँसू का पाठ सीखते हैं । सुन्दर प्रकृति तो तुम्हारे रंगमंच की नर्तकी मात्र है और इरा सम्पूर्ण संसार का सूत्र संचालन करने वाले तुम हो ।
- ☐ हम मनुष्यों के व्यक्तिगत सुख-दुख और आहें तो तुम्हारे लिए केवल हँसी की वस्तु है । हमारा आश्वस्तिभाव तुम्हारे ही नियमों के विश्वास पर टिका हुआ है । हे अनन्त हृदयों को आन्दोलित करने वाले । तुम्हारा ही निरन्तर स्पंदन ही सृष्टि की शिराओं जीवन को संचारित करता है । तुम्हीं तारों के समान सैकड़ो आँखे खोलकर संसार के अधंकार को क्षण-प्रतिक्षण नष्ट करते हो। सत्य तुम्हारा राजदंड है और उसके सामने तीनों लोक सिर झुकाते हैं । राजा और रंक दोनों हमेशा शान्ति से उसी नियम का पालन करते हैं । तुम्ही संसार के सारे क्रियाव्यापारों के कर्त्ता-धर्त्ता हो, हमारा कर्त्तव्य केवल भ्रम और झूठा अहंकार मात्र है । तुम्हारे भीतर निर्गुण-सगुण, मृत्यु और जीवन सब एक रूप में समाये हुए है हे विराट समुद्र वाले परिवर्तन तुम्हारी चौड़ी छाती पर लहरों के समान सैकड़ो लोक, जड़ और चेतन निरन्तर खिलवाड़ करते हैं । तुम ऊँची तरंगो के समान सैकड़ो युग और युगान्तर को कभी अपने विराट पेट से प्रकट करते हो और कभी जल्दी से उन्हें निगल लेते हो । सैंकड़ो-हजारों सूर्य-चन्द्रमा, असंख्य तारे, ग्रह, उपग्रह अग्नि के कण के समान क्षण-क्षण तुम्हारे भीतर जलते और बुझते रहते हैं । इस नश्वर विश्व में एक मात्र सम्पूर्ण, देश-काल, मन-कर्म-वचन, चिरन्तन तुम्ही हो । हे चिरन्तन! तुम परिवर्तनहीन हो और तुम्ही परिवर्तन कारक भी हो ।

विशेष -

1. पंत की यह कविता छायावाद के कल्पनाशील रूप के साथ उससे भिन्न चिन्तात्मक है ।
2. इस कविता में एक ओर मध्ययुगीन नियतिवाद और निराशावाद है दूसरी ओर नश्वर संसार में शाश्वत तत्व के रूप में परिवर्तन की खोज है ।
3. मध्ययुगीन ईश्वर-लीला को पंत ने यहाँ ठोस भौतिक रूप में परिवर्तन में रूपान्तरित कर दिया है ।

3.4 शब्दावली

1. कुछ शब्दों से पंत को बहुत मोह है और वे 'परिवर्तन' कविता में बार-बार आते हैं । जैसे - अखिल, दिगंत, स्वर्ण, स्वप्न, यौवन, अज्ञात, शून्य, शत, निःश्वास, संसृति आदि ।
2. 'परिवर्तन' कविता अनेक रूपकों - समुद्र, बादल, वसंत-शिशिर, आकाश, साँप आदि से लदी है।
3. परिवर्तन में पंत की भाषा लाक्षणिक और व्यंयजना परक हो गयी है । अनेक नये उपनामों की सर्जना है । जैसे -बजा लोहे के दन्त कठोर; नाचती हिंसा जिह्वा लोल; भृकुटि के कुंडल वक्र मरोर; फुहुकता अंध रोषफल खोल; सरल रोओं से हाथ पसार लूटता लोभ गह-द्वार ।
4. परिवर्तन के सन्दर्भ में पन्त ने पुराने दार्शनिक पारिभाषिक शब्दों को परिवर्तन का विशेषण बनाकर नये अर्थ का संधान किया है । जैसे - विश्वमय, अनिर्वचनीय, अविकार, मायावर, नटवर, सूत्रधर, चिरन्तन, विवर्तन आदि ।

3.5 सारांश

सुमित्रा नंदन पंत छायावाद के आधार स्तम्भ कवि माने जाते है । पल्लव से गुंजन तक पंत प्रकृति सौन्दर्य प्रेमी व कल्पनाशील व जिज्ञासु कवि के रूप में सामने आते हैं । उनकी भाषा भावों की अनुगामिनी है । पंत संसार को नश्वर व अस्थिर तथा मनुष्य जीवन को क्षणिक मानते है । उनके अनुसार सुख के क्षण कम व दुखद क्षण ज्यादा आते है । जीवन के प्रति नियर्तिवादी सोच परिवर्तन कविता में दृष्टव्य है और इसमें कवि ने मनुष्य और प्रकृति जीवन के क्षेत्र में अनेक उपकरण जुटाए है । इन प्राकृतिक उपकरणों के सहारे वह साधारण भाव को कविता में ढाल देते है । परिवर्तन की काव्य की भाषा की वैशिष्ट्य छायावादी काव्य के अनुरूप है ।

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. दस पंक्तियों में सुमित्रानंदन पंत का जीवन परिचय दीजिए ।
2. दस पंक्तियों में सुमित्रानंदन पंत की रचनाओं का परिचय कराइए ।
3. निम्नलिखित कविताओं की व्याख्या कीजिए -
   (क) किसी को रोने के सुखसाज ------- हिला जाता चुपचाप बयार ।
   (ख) अहे निष्ठुर परिवर्तन -------- वक्र कुंडल दिड्मंडल ।
   (ग) अहे दुर्जेय विश्वजित् ---------- पददलित धरा-तल ।
   (घ) एक छवि से असंख्य उड्गन ------- सृजन ही सहर ।
   (ड) वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप ---------- भावनामय संसार ।

3.6 संन्दर्भ ग्रंथ

1. सुमित्रानंदन पंत; पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।
2. सुमित्रानंदन पंत; रश्मि बन्ध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 21 वां संस्करण, 1979 ।
3. सुमित्रानंदन पंत; तारा पथ, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 21 वां संस्करण, 1979 ।

4. डॉ. हरिवशराय बच्चन; सं. सुमित्रानंदन पंत, राजपाल एण्ड सच्च, दिल्ली, संसकरण, 2001 ।

इकाई - 4

परिवर्तन कविता का अनुभूति एवं अभिव्यंजनात्मक पक्ष

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 सुमित्रानन्दन की काव्य यात्रा

4.3 परिवर्तन: अनुभूतिपक्ष

- 4.3.1 वर्तमान के प्रति गहरा असंतोष
- 4.3.2 जगत - जीवन की क्षण भंगुरता का कारण : परिवर्तन
- 4.3.3 शाश्वत - तत्व की खोज का दर्शन
- 4.3.4 दार्शनिक सामजस्यवाद
- 4.3.5 परिवर्तन की शाश्वत लीला में विश्वास

4.4 परिवर्तन: अभिव्यंजना पक्ष

- 4.4.1 काव्यभाषा
- 4.4.2 बिम्ब और अलंकार विधान
- 4.4.3 छंद विधान
- 4.4.4 काव्य रूप और रचना विधान

4.5 शब्दावली

4.6 सारांश

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के पहले आपने सुमित्रानन्दन पंत के जीवन, काव्य और परिवर्तन प्राप्त कर लिया है । इस इकाई को पढने के बाद आप -

- पंत की काव्य-यात्रा से परिचित हो सकेंगे ।
- परिवर्तन की अनुभूति पक्ष को समझ सकेंगे ।
- परिवर्तन के अभिव्यंजना पक्ष को जान सकेंगे ।

4.1 प्रस्तावना

छायावाद के संस्थापक कवियों में सुमित्रानन्दन पंत का नाम शामिल है । भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के दूसरे दशक में उन्होंने हिन्दी कविता के क्षेत्र में प्रवेश किया और आजीवन कविता लिखी। कविता की जीवन की उनकी अपनी सही जमीन रही है । इसलिए प्रसाद, निराला, महादेवी आदि के

अन्य छायावादी कवियों के समान उनका रचनात्मक व्यक्तित्व वैविध्यपूर्ण नहीं है । हाँ, कविता के क्षेत्र में उनका व्यक्तित्व अधिक गतिशील और वैविध्यपूर्ण अवश्य रहा है ।

द्विवेदी युग के बाद पंत ने हिन्दी कविता में - विषय, भाषा, काव्यरूप - सभी दृष्टियों से युगान्तर उपस्थित करते हुए छायावद के लिए नई और ठोस जमीन तैयार की और उसे खूब समृद्ध भी बनाया । उन्होंने अधिक संस्था में काव्य रचनाएँ की और छायावादी कवियों के बीच अपनी विशेष पहचान बनायी और उस समय के हिन्दी पाठकों के बीच सर्वाधिक लोकप्रियता भी प्राप्त की । इसके साथ ही उन्होंने काव्यकृतियों और काव्यसकंलनों की छोटी - बड़ी महत्वपूर्ण भूमिकाएँ लिखकर छायावाद और अपनी रचना प्रवृति को समझने में हिन्दी आलोचकों और पाठकों की खूब मदद की । हम आगे 'परिवर्तन' जैसी लम्बी कविता के माध्यम से पंत के रचना कर्म के एक विशिष्ट रूप का परिचय करवाने जा रहे है । उसके पहले जरूरी यह है कि हम उनकी काव्ययात्रा की सामान्य जानकारी प्राप्त कर लें ।

4.2 सुमित्रानन्दन पंत की काव्य - यात्रा

पंत की काव्य-यात्रा के सामान्यत: तीन चरण माने जाते हैं । उनकी काव्य-यात्रा का पहला चरण सन् 1918 से 1932 तक, दूसरा चरण सन् 1933 से 1940 तक और तीसरा चरण सबसे यानी सन् 1940 के बाद से उनके मृत्युपर्यन्त तक आलोचक मानते हैं । रचना-क्रम की दृष्टि से उन्हें क्रमश: 'वीणा ग्रन्थि - पल्लव -गंजन काल', 'युगान्त-युगवाणी-ग्राम्याकाल' और 'स्वर्णधूलि-लोकायतन काल' कहा जाता है । इन तीन काव्य चरणों में उनकी दृष्टि, अनुभूति, अभिव्यंजना में बुनियाद परिवर्तन हुए। काव्य की परिवर्तन दृष्टि से इन्हें हम छायावदी, प्रगतिवादी, आदर्शवादी चरण की कविताएँ कह सकते है । दूसरे शब्दो में ये सौन्दर्यचेतना, भू-चेतना और दिव्य चेतना के चरण की कविताएँ कही जाती है ।

पंत जी ने सन् 1918 के के आस पास अपनी काव्य-यात्रा शुरू की और सन् 1932 तक कमोवेश वे एक ही रास्ते पर अपने काव्य का विकास करते रहे । उनकी प्रारंभ की कविताओं में जहाँ प्रकृति के प्रति बालसुलभ कोतुहल, रहस्यभाव भावुकता, सरलता, सौन्दर्य प्रीति और मनोहारी कल्पनाशीलता मिलती है, वही भाषा के स्तर लाक्षणिकता, चित्रात्मकता और नये उपमानों की योजना मिलती है । प्रकृति के प्रति अगाध मोह और निरीक्षण को ही पन्त अपने काव्य सृजन की प्रारंभिक प्रेरणा मानते है । उन्होंने स्वयं स्वीकारा है कि 'कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कर्मांचल प्रदेश को है । "(आधुनिक कवि, पर्यालोचन, पृष्ठ-1) वे प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम और मोह के कारण ही वे ऐसा साक्ष्य देते है कि-

छोड़ द्रमों की मृदु छाया । तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे जाल में । कैसे उलझा दूँ लोचन,
भूल अभी से इस जंग को ।

प्रकृति के मोह की कविताएँ 'वीणा' से लेकर 'पल्लव' तक निरंतन मिलती है । पंत ने इस दौर की कविताओं पर विचारते हुए कहा कि 'वीणा और पल्लव', विशेषत: मेरे प्राकृतिक साहचार्य काल की रचनाएँ है । तब प्रकृति की महत्ता पर मुझे विश्वास था और उसके व्यापारों में मुझे पूर्णता का

आभास मिलता था । यह मेरी सौन्दर्य लिप्सा की पूर्ति करती थी, जिसके सिवा उस समय मुझे कोई वस्तु प्रिय नही थी । " (वही पृष्ठ 3) प्रकृति साहचर्य-प्रेम-मोह-निरीक्षण से एक और उन्होंने विचारों की प्रेरणा ली, निजी भावों के प्रकटीकरण में मदद मिली, स्वप्न, सौन्दर्य, कल्पनाशीलता बढ़ी, नहीं नुकसान यह हुआ कि पंत जनभीरू बन गये । प्रकृति किशोर मनोवृति के चलते वे इस दौर की प्रकृति कविताओं के मद्देनजर सुकुमार कवि कहे गये । पं. रामचन्द्र शुक्ल ने इसी दौर की प्रकृति कविताओं को देखकर कहा था कि छायावाद के भीतर माने जाने वाले सब कवियों में प्रकृति सीधा प्रेम संबंध पंत का ही दिखाई पड़ता है । प्रकृति के अत्यंत स्थानीय खण्ड के बीच उनके हृदय ने रूप पकड़ा है । (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ट-474) उन्होंने यह भी कहा कि प्रकृति के प्रति उनकी रहस्य-भावना प्राय: स्वाभाविक ही रही है ।

'वीणा' और 'पल्लव के बीच की कही 'ग्रन्थ' है इसमें वे अपनी प्रकृति प्रेम का विस्तार सामाजिक जीवन में करते है । प्रकृति हो या सामाजिक जीवन, दोनों को मूल प्रकृति और समाज से सम्बद्ध रूढ़ियों के प्रति विद्रोह और मुक्ति की आकांक्षा है । पंत समेत सभी छायावाद कवि राष्ट्र समाज के साथ अपने व्यक्तित्व, प्रेम, वाणी आदि सभी युक्ति चाहते थें । वे द्विवेदी युग के कवियों से इस संदर्भ में अपनी अलग पहचान रखते है । इन्होंने व्यक्ति मत अनुभूति को विशेष महत्व दिया और कहने का ढंग भी आत्मपरक (मैं वाली शैली) अपनाया 'ग्रंथि' में पंत एक युवक के असफल प्रेम की कथा को आधार बनाकर एक खण्ड काव्य की रचना की । सामंती रूढ़ियों सामाजिक निषेधों के लिए एम तोड़ता स्वाभाविक प्रेम, मन की विवाद - ग्रन्थि ही "ग्रन्थि" का मूल कथ्य है । आगे 'पल्लव' में बता दिया कि यह प्रेम की दुनिया किसी ओर की नहीं, मेरी ही थी । प्रेम की पावन अनुभूति का स्मरण पल्लव में साकार हुई ।

तुम्हारे छूने में था प्राण संग में पावन गंगा-स्नान
तुम्हारी वाणी तमें, कल्याणि/ त्रिवेणी की लहरों का मान
करूण भौहों ये था आकाश/ ह्रास में शैशव का संसार
तुम्हारी आँखों में कर वास,/ प्रेम ने पाया था आकार ।

प्रेम की व्यक्तिगत असफलता से फिर वे प्रकृति की दुनिया में कुछ दिन के लिये गये । 'परिवर्तन' की रचना में उनके प्रेम का दु-स्वप्न भी शामिल हो गया ।

पंत की पहली प्रोढ़ रचना 'पल्लव' है, इसे छायावाद के प्रति आलोचक एक स्तर से स्वीकारते है । इसके बारे में पं. रामचन्द्र शुल्क का कहना है कि प्रतिभा के साहस और पुरानी काव्यपद्धति के विरूद्ध प्रतिक्रिया बहुत चढ़ा-बढ़ा प्रदर्शन है । कल्पना शक्ति और भाषा दोनों दृष्टि से पंत की पूर्ववर्ती कृतियों से 'पल्लव प्रोढ़ कृति है । बंगला का प्रभाव तो उनकी 'वीणा' की कविताओं पर है, लेकिन पल्लव में बंगाल का प्रभाव के साथ पंत अंग्रेजी के स्वछंद गवाही कवियों का विशेष प्रभाव ग्रहण किया । उनकी पदावली से पंत की भाषा प्रभावित है । उन्होंने स्वच्छंदवादी कवियों के अनेक वाक्यांशों का भावानुवाद कर डाला । बावजूद इसके यह पंत की प्रातिभ प्रौढ़ मौलिक रचना है । उसमें उच्छवास आँसू बादल, मौन नियंत्रण, परिवर्तन आदि ऐसी अनेक कविताएँ है जो हिन्दी पाठकों के बीच बहुत लोकप्रिय हुई । पंत की 'वीणा' और 'पल्लव' की प्रकृति कविताओं का विश्लेषण करते हुआ कहा है कि 'वीणा' काल में मैंने प्रकृति की छोटी-मोटी वस्तुओं को अपनी कल्पना की तालिका से रंगकर काव्य

सामग्री इकट्ठी की है । प्रकृति सौन्दर्य और प्रकृति प्रेम की अभिव्यंजना 'पल्लव' में अधिक प्रांजल तथा परिपक्व रूप में हुई। (रश्मि बंध पृष्ठ -10,11) पल्लव की भूमिका छायावाद के नवीन प्रस्थान को समझने के लिए बड़ी कारगर है ।

'पल्लव' के बाद गुंजन का प्रकाशन हुआ, जिसके बारे में पंत का कहना है कि पल्लव और गुंजनकाल के बीच में ही किशोर भावना का सौन्दर्य स्वप्न टूट गया । 'पल्लव' की परिवर्तन कविता इस दृष्टि से, मेरे मानसिक परिवर्तन द्योतक है । (आधुनिक कवि-2, पृष्ठ-4) पल्लव से गुंजन की विशिष्टता रेखांकित करते हुए वे आगे लिखते है कि मैं पल्लव को गुंजन में अपने को सुंदरम् से शिव की भूमि पर पदार्पण करते हुए पाता हूँ । गुंजन में मेरी बहुमुखी प्रकृति सुख - दुख में समत्व कर अन्तर्मुखी बनने का प्रयत्न करती है । (वही, पृष्ठ -5) दरअसल 'गुंजन' तक आते - आते पंत में चिन्तन तत्व पहले बढ़ गया था और उसकी कल्पना भी पहले सूक्ष्म हो चली थी । यद्यपि उसमें रहस्यभाव और प्रकृति प्रेम पल्लव जैसा ही है । 'गुंजन' का काव्यशिल्प 'पल्लव' से बढ़ा- चढ़ा है, इस बात को स्वयं पंत से लेकर छायावाद के आलोचक पं. नंद दुलारे वाजपेयी एकमत से स्वीकारते है ।

पंत का कहना है कि गुंजन कि भाषा संगीत में एक सुधरता, मधुरता और लक्षणता है, जिसका 'पल्लव' में आभाव है । 'पल्लव' के स्वरों में बहुलता है, जबकि 'गुंजन' के संगीत में एकता । पंत जी के पहले ही शुक्ल जी गुंजन के बारे में यह स्थापना दे आये थे कि गुंजन में हम कवि का जीवन क्षेत्र के भीतर अधिक प्रवेश ही नहीं, उसकी काव्यशैली को अधिक संयत और व्यवस्थित पाते है । पं. नंद दुलारे वाजपेयी ने शुक्ल जी ने गुंजन संबंधी मान्यताओं को अधिक दृढ़ता और विस्तार के साथ प्रस्तुत करते हुए कहा कि गुंजन के गीतों में विचार पक्ष प्रधान और काव्यपक्ष गौण हो गया है । गुंजन में यद्यपि दीर्घ प्रगीतों की संख्या बढ़ गई है, लेकिन वे अपने शिल्प में अटूट हैं । उसके छोटे गीतों में भी विचार और अनुभूति की अधिक संघनता है । पल्लव के प्रगीतों की तुलना में गुंजन के प्रगीत अधिक पृष्ठ हैं । इस प्रकार पल्लव की भाषा स्वाभाविक विपुलता की प्रतिनीधि हैं, जबकि गुंजन की भाषा 'स्वयं की सूचना' देती है । एक तारा, नौकाविहार, भावी पत्नी के प्रति आदि लोकप्रियता प्रगीत गुंजन की नीधि है ।

गुंजन से ज्योत्सना की ओर अपनी काव्य-यात्रा को पंत ने आत्मोकर्ष, आत्मकल्याण से सामाजिक अभ्युदय, विश्वमंगल की भावना की अभिव्यक्ति का मार्ग कहा है । इसी के समानान्तर उनके काव्य का दूसरा चरण सामने आया, जिसे हमें युगान्त युगवाणी ग्राम्या के काल के नाम से जानते हैं । अन्य चरणों की तुलना में इसकी समयावधि सबसे कम है । पल्लव गुंजन से पंत के युगांत प्रयाण की विशिष्टता रेखांकित करते हुए शुक्ल जी ने यह आर्थिक टिप्पणी की कि पल्लव से पंत का कवित्व अपने व्यक्तित्व के घेरे में बंधा हुआ था, गुंजन में वह कभी-कभार उस घेरे से बाहर निकलकर जगत से अपने लिए सौन्दर्य और आनंद का चयन करता है और युगान्त में वह लोक के बीच दृष्टि फैलाकर आसन जमाता है, सौन्दर्य और आनंद का पूर्ण प्रसार उसी के भीतर देखता है । युगान्त में पंत को हम रूप - रंग, चमक -दमक, सुख - सौरभ वाले सौन्दर्य से आगे बढ़कर जीवन जगत के सौन्दर्य मिश्रित कल्पना में प्रर्वत्त पाते है । (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ - 419, 80) पंत ने भी रश्मि बंध' की भूमिका में कहा है कि युगान्त में मेरा विश्वास बाहर की दिशा

की ओर सक्रिय हो उठा है । और विकास कार्य हृदय क्रान्तिकारी हो जाता है । और यह क्रान्ति बाह्य और आन्तरिक दोनों स्तरों पर घठित होती है । उनके इस मानसिक परिवर्तन की सूचना युगान्त की 'द्रुतझरों" और "गा कोकिल" जैसी कविताएँ भी देती है । जैसे -

द्रुतझरो जगत् के जीर्ण पच । हे सुस्तध्वस्त, हेशुष्कशीर्ण
हिम-ताप, पीत मधुवात मीत । तुम वीतराग, जड़ पुराचीन ।

अपनी दृष्टि, सौन्दर्य के प्रति घौर विद्रोह और त्याग के साथ नीवन दृष्टि से प्रबल आग्रह युगान्त की विशेषता है । पं. नंद दुलारे वाजपेयी का युगान्त के बारे में कहना है कि इसमें प्राचीनता का तिरस्कार और नवीनता का विज्ञापन ज्यादा और उनका परिचय कम है । युगान्त में नवीनता के प्रति एक आकांक्षा दृष्टिगत होती है, किन्तु नवीनता के दर्शन नहीं होते । यानि युगान्त नवीनता का उद्‌बोधक मात्र है, उसका प्रतिपादक नहीं । असल में यह रचना मेरूदंड रहित है । (कवि सुमित्रनंद पंत, पृष्ठ-62,63) युगवाणी में पंत ने आधुनिक काल में व्यवस्था परिवर्तन के लिए चलने वाले प्रमुख आंदोलनों को समेटने की कोशिश की है ।

गाँधीवाद और मार्क्सवाद के बीच सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश उन्होंने अवश्य की, लेकिन यह सामंजस्य ऊपरी स्तर का ही है । ग्राम्या उनकी युगान्त और युगबाणी दोनों से उत्कृष्ट रचना है, कवित्व अधिक स्वभाविक है । इसमें उन्होंने अपनी मध्यवर्गीय चेतना ग्रामीण जनता को जोड़ने की कोशिश की है । इन तीनों रचनाओं से पंत ने सामान्यत: अपनी छायावाद शैली छोड़ दी, हाँ यत्र - तत्र उसका प्रभाव अवश्य है । कल्पना यथार्थ से जुड़ी, भाषा सीधी और अनंलकृत बनकर गद्‌य के निकट पहुँच गयी ।

पंत की काव्ययात्रा की तीसरा चरण अरविंद दर्शन के गहरे प्रभाव से आक्रांत है । स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि के आदर्शवाद को उन्होंने स्वत: शिखर, उत्तरा, लोकायतन में अरविंद के दिव्यचेतना वाले दर्शन से जोड़ दिया । प्रारंभ में वे अरविंद दर्शन को पचा नहीं पाये, उसे पद्‌य बद्ध करते रहे, लेकिन उत्तरा, वीणा में वे उसे काव्य में कुछ हद तक ढालने में सफल हुए । "कला और बूढ़ा चाँद' में वे काव्य की स्वाभाविक भूमि पर ज्यादा दिखाई पड़ते है । प्राचीनकाल की सहजता और सौष्ठव उत्तरा रजत शिखर, वीणा में लौटा, पर लौटा भर ही । इस चरण में उनकी भाषा प्रतीकों के प्रयोग की ओर विशेष रूप झुक गयी और मुक्त छंद का आग्रह भी बढ़ गया ।

4.3 परिवर्तन : अनुभूतिपक्ष

'वीणा' ग्रंथ में पंत की पहचान सामान्यत: सामन्ती रूढ़ियों से आहत एक प्रेमवियोगी, प्रकृति के प्रति मोहासक्त, कल्पनाशील किशोर मानस के कवि रूप में होती है, लेकिन 'पल्लव' के प्रकाशन के साथ वे एक प्रौढ़ कवि के रूप में हमारे सामने आये । जितनी प्रियता लोकप्रियता पंत को 'पल्लव' की छोटी कविताओं से मिली उनसे कही ज्यादा पाठकों का ध्यान उसकी लम्बी कविता 'परिवर्तन' ने खीचा । परिवर्तन ने पंत की कविताओं के बारे में प्रचलित धारणा से हटकर पाठकों को सोचने के लिए अवकाश दिया । यह पल्लव की सबसे लम्बी कविता है ।

तीसरी बात परिवर्तन अपनी रचनात्मक प्रकृति में 'वीणा' और 'ग्रन्थि' की कविताओं से गुणात्मक रूप से अलग है । एक पंत अभी तक प्रकृति के सुकुमार कवि माने जाते थे, लेकिन परिवर्तन

ने उनके सुकुमार कवि व्यक्तित्व में कुछ नया जोड़ दिया । दरअसल, परिवर्तन में पंत ने प्रकृति के सुकुमार नहीं, बल्कि उग्र और भीषण रूप का साक्षात्कार किया है । इस संबंध में पं. नंद दुलारे वाजपेयी का कहना है कि "इस कविता में प्रयुक्त कल्पना छवियाँ पंत की अन्य रचनाओं की अपेक्षा भिन्न शैली की थी ।

न केवल सौन्दर्य छवियाँ न थी, वरन् रौद्र और भयानक भावों की सृष्टि करने वाली गंभीर छवियाँ भी थी" (कवि सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ-38) । दो-यह कविता ठोस चिन्तन और दर्शन की भूमि पर प्रतिष्ठित है । कवि पंत का स्वयं इसके बारे में कहीना है कि "पल्लव की प्रतिनिधि रचना परिवर्तन में विगत वास्तविकता के प्रति असंतोष तथा परिवर्तन के प्रति आग्रह की भावना विद्यमान है । साथ ही जीवन की अनित्य वास्तविकता के भीतर दो नित्य सत्य को खोजने का प्रयत्न भी है, जिसके आधार पर नवीन वास्तविकता का निर्माण हो सके । (रश्मिबंध, पृष्ठ-12) परिवर्तन कविता के अनुभूति पक्ष में निम्नलिखित मुद्दों पर विचार किया जा सकता है ।

4.3.1 वर्तमान के प्रति गहरा असंतोष

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के दौर में कविता लिखने वाले वाक्यों में कमाबेश राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति मिलती है । वे एक खास प्रकार की ऐतिहासिक धारणा को प्रभावित थे । वह ऐतिहासिक धारणा यह थी कि हमारे देश का वर्तमान बहुत बुरा है, लेकिन हमारे देश का अतीत बहुत समृद्ध और स्वर्णिय था । भारतेन्दु, मैथलीशरण गुप्त से लेकर सभी छायावादी कवियों में कम या ज्यादा यह प्रवृति मिलती है । दरअसल ये सभी कवि भारत की गुलामी के दौर के कवि थे और देश की वर्तमान स्थिति से बहुत दुखी थे और वे अपना वर्तमान गमगलत करने के लिए देश के पुराने वैभव को याद करते थे। देश की दुर्दशा के बोध के क्षण में देश के समद्ध अतीत का याद आ जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। पंत परिवर्तन कविता के आरंभ में भारत के स्वर्णिम अतीत के दौर के गुजर जाने के प्रति अपना गहरा अफसोस जाहिर करते हैं । यह परिवर्तन का ही खेल है कि वह कभी भारत को समृद्धि के द्वार तक ले गया था और वर्तमान में वह एक झूठी कहानी भर रह गया है । पंत का यह अतीतानुराग देश की अनुपेक्षित दुदर्शा को ही देखकर उपजा है ।

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन । वह सुवर्ण का काल
भूतियों का दिगन्त छवि जाल । ज्योंति चुम्बित जगती का भाल
राशि-राशि विकसित व सुधा का वह यौवन विस्तार
स्वर्ग की सुषमा । धरा पर करती थी अभिसार
प्रसूनों के शाश्वत श्रृंगार । (स्वर्ण मृगों के गंध विहार)
गूँजते ये बार-बार । सृष्टि के प्रथमोद्गार
नग्न सुन्दरता थी सुकुमार ऋद्धि औ सिद्धि अपार
अये, विश्व का स्वर्ण-स्नान । संसृति का प्रथम प्रभात
कहाँ वह सत्य वेद विख्यासत है । दुरित दुख दैन्य न थे जब ज्ञात
अपरिचित जरा-मरण, भू-पात । हाय! सब थ्या बात ।

जहाँ भारत के अतीत में सब कुछ अच्छा था, प्रकृति समद्ध थी, मनुष्य हर प्रकार से दुखी था, वही वर्तमान में परिवर्तन ने देश की समृद्धि और सुख की पुरानी कहानी को उलट दिया है । प्रकृति हो, मनुष्य वर्तमान दौर में उनका यौवन और सुख बहुत सिकुड़ गया है और उनके दुख का आकार बहुत बढ़ गया है । प्रकृति और मनुष्य दोनों के जीवन में स्थिरता नहीं है और उनमें सुख की तुलना में दुख का व्याप अधिक है । पंत कई छन्दों में कभी प्रकृति, तो कभी मनुष्य जीवन के विविध सन्दर्भो द्वारा उनके सुख - दुख की क्षणभंगुरता को उजागर करते है । प्रकृति की वर्तमान स्थिति यह है -

आज तो सौरभ का मधुमास । शिशिर में भरती सूनी साँस ।
वही मधुऋतु की गुंजित डाल । झुकी थी जो योवन के भार,
अकिंचनता मे निज तत्काल । सिहर उठती-जीवन है भार ।
आज पावसनद के उद्गार । काल के बनते चिन्ह कराल,
प्रात: को सोने का संसार । जला देती संध्या की जाल ।

यदि 'परिवर्तन' ने प्रकृति की यह दुर्दशा कर डाली है तो मनुष्य के बचपन, जवानी, बुढ़ापा, संयोग - वियोग, वैभव-विपन्नता, जन्म-मृत्यु, हुलास-अवसाद को भी अपने प्रभाव में ले लिया है । और मनुष्य की इस दुर्दशा मंच महाभूत जैसे जड़ तत्वों पर गहरा प्रभाव पड़ा है । कविता के इस प्रथम चरण का मूल स्तर प्रकृति और मनुष्य जीवन की क्षणभंगुरता, अस्थिरता को लेकर निराशावादी या दुखवादी सोच है और कविता के इस अंश की सबसे दुखती लय है - "गुँजते हैं सब के दिनचर । सभी हाहाकार ।" यह प्रकृति की वास्तविकता है और मनुष्य जीवन की भी । बचपन पर बुढ़ापा हास पर निःश्वास, संयोग पर वियोग, सुख पर दुख, भारी है । पंत की कविता के इस अंश की दुखती लय लोकानुभवों के सुर में सुर मिलाकर गुँजती है । जैसे कि -

"चार दिन सुखद चाँदनी रात
और फिर अंधकार, अज्ञात । '
"मिलन कपल केवल दो - चार
विरह के कल्प अपार । '
"किसी का सोने के सुख साज
मिल गये यदि ऋण भी कुछ आज
चुका लेता दुख कज की ब्याज -
काल को नहीं किसी की लाज । "

इस जगत, प्रकृति और जीवन की वास्तविकता केवल एक है-अचिरता, अस्थिरता और प्रकृति, मनुष्य क्या उन्हें बनाने वाले पंचमहाभूत भी जानते है ।

अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास
ढाल पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश

सिसक उठता समुद्र का मन
सिहर उठते उडुगन ।

सवाल उठता है कि 'परिवर्तन' की रचना में पंत के निराशावाद का कारण क्या है? पं. रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि उसकी प्रेरणा शायद उनके व्यक्तिगत जीवन की किसी विषम स्थिति में की हो । (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-474) पंत ने अपने कविता संकलन की भूमिकाओं में कई प्रकार से इसका स्तर देने की कोशिश की है । रश्मिबंध' की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि परिवर्तन पल्लव काल के मेरे हदयमंथन तथा बौद्धिक संघर्ष का विशाल दर्पण - सा है जिसमें पल्लव युग का मेरा मानसिक विकास तथा जीवन की संग्रहणीय अनुभूतियों के प्रति मेरा दृष्टिकोण प्रतिबिम्बत है । (रश्मिबंध, पृष्ठ - 11) दरअसल यह मेरे किशोर भावना के सौन्दर्य स्वप्न टूट जाने का द्योतक है ।

इसलिए पल्लव की अन्य कविताओं के 'पर्यालोचन' में यह कहते हुए किया कि दर्शन और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे रागतत्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह की दिशा बदल दी। मेरी नीजि इच्छाओं के संसार में कुछ समय तक नैराश्य और उदासीनता छा गयी । मनुष्य के जीवन के अनुभवों का इतिहास बड़ा ही करूण प्रमाणित हुआ। जन्म के मधुर रूप में मृत्यु दिखाई देने लगी, बसंत के कुसुमित आवरण के भीतर परस्पर का अस्थिपंजर । मेरा जीवनदृष्टि का मोह एक प्रकार से टूटने लगा और सहज जीवन व्यतीत करने की भावना को धक्का लगा था ।

इस क्षण भंगुरता के बुदबुदों से व्याकुल संचार में परिवर्तन ही एकमात्र चिरन्तन जान पड़ने लगा । मेरे हृदय की समस्त आकांक्षाएँ और सुख-स्वप्न अपने बाहर और भीतर किसी महान चिरन्तन वास्तविकता का अंग बन जाने के लिए लहरों की तरह, अज्ञात प्रयास की आकुलता में ऊब-डूब करने लगे । (आधुनिक कवि, पृष्ठ -4,5)

पंत की कविता के निराशावादी तेवर के पीछे उनके जीवन का व्यक्तिगत कारण था और भारतीय आबोहवा में साँस लेने से एक पक्षीय राष्ट्रीय कारण थी । जीवन का व्यक्तिगत कारण तो 'परिवर्तन' की रचना के पहले से मौजूद था । वे समाज की रूढ़ियों के सामने प्रेम में असफल हो गये । प्रकृत की ओर परी ताक न लगाकर आगे, पर बात बनी नहीं । वहाँ हदय से हृदय का संवाद संभव नहीं था । एकतरफा आवेश कहाँ तक चलता ।

महात्मा गाँधी के अहयोग आन्दोलन के दबाव मे आकर पढ़ाई छोड़ दी, आगे पेट का वाल था । घर में कुछ गड़बड़ी हो गयी । इसी दौरान वे भयंकर बीमार हुए, जीवन का, अस्तित्व का, विकराल संकट सामने था । वे मध्यवर्गीय युवक थे, महात्मा गाँधी या युवा क्रांतिकारियों के राष्ट्रीय आन्दोलन से उनका सीधा जुड़ाव-नही था । वे भावनात्मक और क्रियात्मक स्पर पर उससे एकदम कटे थे । इसी कारण भारतीय जनता का संघर्षशील पहलू न तो कविता में कही दिखाई देता है, न उन्हें आश्वस्ति देता है ।

स्वाधीनता आन्दोलन का अंग्रेजी शासन के शोषण और भारतीय जनता सामाजिक आर्थिक विडम्बनाएँ आदि यही एकमात्र पक्ष उनकी कविता में झलकते हैं । पर सच्चाई का यह एक पहलू है । वे व्यक्तिगत और सामाजिक कारणों को इतना मर्माहत हुए कि प्राकृतिक नियतिवाद की शरण में जा बैठे । वे अपनी इसी मन: स्थिति से निजात पाने के लिए दर्शन की ओर गये, लेकिन जिस

भीषण समस्या से उनका जीवन हार मान बैठा था, देश की जनता का स्वाभाविक आर्थिक जीवन तार-तार था, भला उसका समाधान किताबी दर्शन क्या देता? फलत: वे परिवर्तन के अनित्य-नित्य के चक्कर में कविता की इति मान लेते है ।

4.3.2 जगत - जीवन की क्षणभंगुरता का कारण: परिवर्तन

भारतीय परम्परा जगत और जीवन की उत्पति विकास नाश को दैवीय मानती आयी है । ब्रह्म, विष्णु, महेश का काम मानती है । पश्चिम की आधुनिक वैज्ञानिक सोच इस संदर्भ में भौतिकवादी है । डार्विन का विकासवाद इसी रूप में सामने आया । मध्ययुगीन नश्वरतावादी सोच को गहरे प्रभावित होने के बावजूद पंत ने जगत और जीवन के केन्द्र को देवीय तत्वों उसके मूल में विकासवाद को भी नहीं रखा । उन्होंने अपनी कविता में ईश्वर का स्थानापन्न परिवर्तन को बना दिया, लेकिन परिवर्तन के निर्माण में उन्होंने जहाँ के पौराणिक रूढ़ियों से काम लिया, वहीं सामन्ती रूढियों से भी । ताण्डव नृत्य' का संबंध शिव की प्रलयकारी कथा से है, 'वासुकि' सहस्त्रपुन का संबंध समुन्द्र मंथन से है, विनतानन महाकाल के समर का भी पौराणिक संदर्भ है । सुखद और इन्द्रासण के पौराणिक संदर्भ है । पंत ने इनसे समृद्ध पौराणिक कथाएँ छोड़ दी, लेकिन कथारूढ़ि को 'परिवर्तन' से जोड़ दिया । इन रूढ़ियों की मदद से उनकी कल्पना ने परिवर्तन विकराल विराट रूप खड़ा किया । मसलन-

अरे निष्ठुर परिवर्तन ।
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन, विश्व का करूण विवर्तन
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन, निखिल उत्थान - पतन ।
अहे वासुकि सहस्रफन ।
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिहन निरंतन
छोड़ रे जग के विक्षत वक्ष स्थल पर
शत् - शत् फेनोच्छवसित स्फीत फुत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं धनाकर जगती का अम्बर ।

इसी प्रकार 'काल का अकरूण भृकुटि विलास वाताहत हो गगन आर्त करता गुरू गर्जन' वाला अंश का निर्माण भी पौराणिक रूढ़ियों के बल पर हुआ है ।

'परिवर्तन' का रूप खड़ा करने में पौराणिक रूढ़ियों के अलावा मध्ययुगीन सामन्ती रूढ़ियों और आधुनिक साम्राज्यवादी शक्तियों, जिसमें अंग्रेजी साम्राज्यवाद जिसमें सबसे विशाल और दुर्जेय विश्व विजय था, जिसमें सूरज नहीं डूबता था । और भारत जिनके इन्द्रासण के सामने भारत के राजा सिर झुकाते थे । भारतेन्दु के अंग्रेजी सत्ता के जिस दिल्ली दरबार का वर्णन किया है, और उसकी कल्पनाछवि दुर्जेय विश्वविजय परिवर्तन के 'इन्द्रासन' में समा गयी है । पंत ने अपनी कल्पनाशीलता के बूते उसके सैन्यदल में आधि-व्याधि, वात- उत्पात, वद्दिन-बाड़, भूकम्प आदि को जोड़कर उसे विराट और खुँखार बना दिया है । और परिवर्तन का दुर्जेय विश्वविजय निरंकुश रूप भी देखने लायक है ।

अहे दुर्जेय विश्वजित् ।
नवति शत-सुरवर नरनाथ । तुम्हारे इन्द्रासन तल माथ

घूमते शत-शत भाग्य अनाथ । घूमते रथचक्रों के साथ ।
तुम नृशंस-नृप से जगती पर चढ़ अनियंत्रित
करते हो संसृति को उत्पीड़ित पदमर्दित
नग्न नगर कर भग्न भवन प्रतिमाएँ खण्डित
हर लेते हो विभव कला - कौशल चिरसंचित
आधि-व्याधि, बहु वृष्टि वात-उत्पात अमंगल
वहिन बाढ भूकम्प तुम्हारे विपुल सैन्यदल
अरे निरंकुश । पदाघात से जिनके विहवल
हिल-हिल रहता है टल-मल-पद-दलित धरातल ।

परिवर्तन के भीषण रूप की पकरकल्पना, जिसे पंत ने बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखा है, उन्हें क्षणभुगुरता, दुख और मृत्यु के दर्शन की ओर ठेल देती है । उनकी दृष्टि में परिवर्तन निर्माण नही, बल्कि निर्मित का सिर्फ नाश करता है । जबकि वस्तविकता यह है कि निरंतर नाश के बावजूद संसार बचा है, मनुष्यजाति भी बची है, उसकी संख्या भी बढ़ी है और निर्माण की ताकत भी बढ़ी है । पर पंत की दशा उल्टी है । उसके पीछे उनके मन में एक और मध्ययुगीन दार्शनिक सरकारों की प्रबलता है और दूसरी ओर उनके जमाने में गुलाम भारत की क्रूर और वीभत्स सामाजिक - आर्थिक सच्चाईयाँ भी है । दोनों के रंग 'परिवर्तन' के तीसरे चरण में मिल गये है । मध्ययुगीन संस्कारों में यदि कबीर का रंग मिल गया है, तो युगीन यथार्थ में उनके समय के भारतीय जनता की सामाजिक - आर्थिक दुर्दशा का भी । मध्ययुगीन सरकारों के वशीभूत पंत ने परिवर्तन का अंश रचा है । बोध मध्यकालीन है पर शब्दावली पंत की है ।

हाय री दुर्बल भ्राति!
कहाँ नश्वर जगती में शान्ति? सृष्टि ही का तात्पर्य अशान्ति!
जगत अवरित जीवन - संग्राम, स्वप्न है यहाँ विराम!
एक सौ वर्ष, नजर उपवन, एक सौ वर्ष, विजय वन!
यही तो है असार संसार; सृजन सिंचन, संहार ।
आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार, रत्न दीपावली, मंत्रोच्चार,
उलूको के कल भग्न विहार, झिल्लियों की झनकार ।
दिवस निशि का यह विश्व विशाल, मेघमारूत से का माया जाल ।

पंत की इन पंक्तियों को कबीर की इन साखियों से मिलाकर देखिए -

झूठे सुख को कहै, मानत है मन मोद
खलक चबैना काल का, कुछ मुख मैं कुछ गोद
कबीर यहु जग कुछ नही, षिन पारा षिन मीत ।
काल्हि जु बैठा माडियां, आज मसा नरा दीठ ।
सातों सबद जु बाजते, धरि-धरि होते राग ।
ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काम ।

कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह ।
जिहि धरि जिता बधावणा तिहिघर तिता अंदोह ।

संसार के प्रति कबीर और पंत दोनों की सोच दुखवादी है, लेकिन भेद यह है कि कबीर के दुखवाद के पीछे मध्ययुगीन सामन्ती संघर्षो की वास्तविकता और दार्शनिक रूढ़ियाँ है । पंत ने भी लोभ स्वेच्छाचार, अत्याचार, हिंसा, अंधरोष आदि दार्शनिक रूढ़ियों का उपयोग किया है, लेकिन उनके इसमें नयी बात है भारतीय जनता की आर्थिक-सामाजिक विडम्बना का चित्रण ।

अंग्रेजी राज द्वारा बार-बार दैत्य दुकाल को पैदा करने और भारत की जनता की हड्डियाँ, खून और आँसूओं पर राज करने की सच्चाई पंत ने इस कविता में उजागर की है ।

अस्थि पंजर का दैत्य दुकाल । निगल जाता निजबाल ।
बहा नर-शोषिण मूसलधार । रूड़-मुंडों की कर बौछार
प्रलय वन - सा घिर भीमाकार । गजरता है दिगन्त संहार
छेड़ खर शस्त्रों की झंकार । महाभारत गाता संसार
कोटि मनुजो के निहत अकाल । नयन मणियों से जटिल कराल
अरे दिग्गज सिंहासन जाल । अखिल मृत देशों के कंकाल
मोतियों के तारक लड़हार । आँसुओं के श्रृंगार ।

इसके साथ भारतीय समाज की अपनी भीतरी सामाजिक विडम्बनाऐं थी पंत ने इस कविता में समेट ली है । इसमें उपचार के अभाव में मरते हुए बच्चे हैं, बालविधवाएँ है और अनाथ - गरीब बच्चे है । तीनों दृश्य एक साथ हैं,

हाय जग के करतार ।

'बलमृत्यु' : प्रात की कहलरई मात पयोधर बने उरोज उकार
मधुर उर इच्छा को अज्ञात । प्रथम हि मिला मृदुल आकार
छिन गया हाय गोद का बाल । गड़ी है बिना बाल की नाल ।

बालविधवा : अभी तो मुकुट बँधा था, माथ हुए कल की हल्दी के हाथ,
खुले भी न थे लाज के बोल । खिले भी चुम्बन शून्य कपोल,
हाय! रूक गया यही संसार । बना सिंदूर अंगार ।
बात हतलतिका वह सुकुमार । पड़ी है छिन्नाधर

अनाथ बच्चे : काँपता उधर दैन्य निरूपय । रज्जु -सा छिद्रों का कृशकाय
न उर में गह का तनिक दुलार । उदर ही दानों का भार ।
भूँकता सिड़ी शिशिर का श्वान । चीरता हरे! अचीर शरीर,
न अधरों स्वर, तन में प्राण । न नयनों ही में नीर ।

भारतीय जनता की बाहरी - भीतरी दुखों में मध्ययुगीन संस्कारों और दार्शनिक रूढ़ियों का रंग मिलाकर पंत स्यापा करते है । उन्हें मनुष्य क्या, प्रकृति के पंतभूत औश्र उनके व्यापार भी सून में डूबे लगते है । स्थितियों से संघर्ष के बदले वे शान्ति सुख के लिए 'उस पार' दार्शनिक तत्ववाद की शरण में चल पड़े । ये पंक्तियाँ भी देखिए -

रूधिर के हैं जगती के प्रात । चितानल के ये सायंकाल

शून्य निःश्वासों के आकाश । आँसुओं के ये सिंधु विशाल
यहाँ सुख सरसों, शोकसुमेरू । अरे जग है जग का कंकाल
वृक्षा रै, ये अरण्य चीत्कार । शान्ति सुख है उस पार ।

4.3.3 शाश्वत् तत्व की खोज का दर्शन

परिवर्तन का प्रस्थान, आरंभ के तीन चरणों में दुखवाद और अनित्यवाद है । यह उसका एक पक्ष बाह्मपक्ष है । अनित्यवाद के भीतर शाश्वत् तत्वपूर्ण की खोज परिवर्तन का दूसरा पक्ष और कविता का चौथा चरण है । यह नित्य और आन्तरिक पक्ष है ।

अचिर में चिर का अन्वेषण । विश्व का तत्वपूर्ण दर्शन पंत के इस तत्व दर्शन पर वेदान्त के विवर्तवाद, गीता के कर्मवाद और आत्मवाद का गहरा असर है । यह अंश काव्यात्मक होते हुए भी विचार प्रधान है । नित्यवाद के स्वरूप दर्शन में उन्होंने वेदान्त के पुराने दृष्टान्तों को नयी शब्दावली पहनायी है और कुछ नये दृष्टान्त भी प्रस्तुत किये हैं । संसार सागर और प्रकाश के रूपक तो पुराने ही है, किन्तु उनकी शब्द योजना नयी है । मसलन-

अतल से एक अकूल उमंग । सृष्टि की उठती तरल-तरंग
उमड़ शत्-शत् बुद-बुद संसार । बुड़ जोते निस्सार
एक छवि से असंख्य उडुगन । एक ही सबमें स्पंदम
एक ही छवि के विभात में लीन । एक विधि केरे । नित्य अधीन

लेकिन अद्वैतवाद का यह रूपनिधान पंत की अपनी सृष्टि है, जिसमें संसार, प्रकृति, मनुष्य का बाहर-भीतर, जो कुछ अच्छा है सब एकाकर हो गया है ।

एक ही तो असीम उल्लास । विश्व में पाता विविधाभास
तरल जलनिधि में हरित विलास । शान्त अम्बर में नील विकास
वही उर-दर में पेमोच्छवास । काव्य में रस, कुसुमों में वास,
अचल तारक पलकों में हास । लला लहरों में लास ।
वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप । हृदय में बनता प्रणय अपार ।
लोचनों में लावण्य अनूप । लोकसेवा में शिव अविकार ।
स्वरों में ध्वनित मधुर, सुकुमार । सत्य ही प्रेमाद्गार ।
दिव्य सौन्दर्य, स्नेह साकार । भावनामय संसार ।

अद्वैनतत्च के बाद पंत ने गीता के कर्मवाद की ओर कविता को घुमा दिया है । स्वीय कर्मो ही के अनुसार एक गुण फलता विविध प्रकार से लेकर 'अलभ है इष्ट, अत: अनमोल । साधना ही जीवन का मोल ।' तक वे गीता के दर्शन का अनुकरण करते है । शान्ति जोशी ने 'सुमित्रानन्दन पंत और जीवन सहित्य' में परिवर्तन के रचना के दौर में पंत मनःस्थिति के बारे में सही कहा है कि "सन् 22 से 26 तक पंत का जीवन प्रमुखत: अन्तर-मंथन और चिन्तन-मनन और विचार-संघर्ष का जीवन रहा है । किसी प्रकार के समाधान के लक्षण दृष्टिगत नहीं होते थे ।" (पृष्ठ- 166)

4.3.4 दार्शनिक सामंजस्यवाद

पंत परिवर्तन के अगले चरण में सांसाकिर द्वंद्वात्मकता और उनके बीच सामंजस्य स्थापित करने की राह पकड़ लेते हैं । चिन्तन की प्रधानता यहाँ भी है, पर सामंजस्य के बावजूद वे सही समाधान नहीं कर पाते हैं । कविता के इस भाग में वे कहते हैं कि सुख-दुख, हास - वेदना, संग्राम - विजय, विकास-पतन, दिन-रात, जीवन-मृत्यु सब सापेक्ष हैं । सुख के बिना दुख, और दुख के बिना सुख का महत्व नही है । उनका एक दूसरे में बदलना या परिवर्तित होते रहना संसार और जीवन की वास्तविकता है । एक का आभाव ही दूसरे का महत्व का कारण है ।

बिना दुख के बीच सुख निस्सार । बिना आँसू के जीवन भार
दीन दुर्बल है रे संसार । इसी से दया, क्षमा औ प्यार
आज का दुख कल का आह्मद । और कल का सुख, आज विवाद
समस्या स्वप्न गढ़ संसार । पूर्ति जिसकी उस पार
जगत जीवन का अर्थ विकास । मृत्यु गति क्रम का हास
जगत की सुदंरता का चाँद । सजा लांछन को भी अवदात
सुहात बदल-बदल दिन रात । नलवता ही जगत का आह्लाद

कालिदास का खासा असर, यानि 'चक्रवत परिवर्तन्तते सुखानिच इस अंश पर है । पंत ने चन्द्रमा वाला दृष्टान्त भी उन्ही से लेकर अपनी शब्दावली में ढाल लिया है । निष्कर्ष यह है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है और मनुष्य की जीवन और मौत परिवर्तन के चक्र में एक दूसरे के पीछे चलते है । इनमें निमित मात्र है । गीता का गहरा प्रभाव पंत के मनुष्य - जीवन संबंधी दर्शन पर है । 'निमित मात्र भव सव्यसाची' और वासासांश जिर्णनि यथाविहाय का असर यहाँ सीधे उतर आया है । यह अंश देखिए -

हमारे काम न अपने काम । नहीं हम, जो हम ज्ञात
अरे निज छाया में उपनाम । छिपे हैं हम अपरूप
गँवाने आये हैं अज्ञात । गँवाकर पाते स्वीय स्वरूप
एक बचपन ही में अनजान । जागते सोते हम दिन-रात
वृद्ध बालक, फिर एक प्रभात । देखता नव्य स्नान अज्ञात
मूँद प्राचनी मरण । खोल नूतन-जीवन

4.5 परिवर्तन की शश्वता लीला (माया) में विश्वास

पंत के पास इसका कोई स्तर नहीं है कि दुख के पीछे सुख, सुख के पीछे दुख, जीवन के पीछे मृत्यु और मृत्यु के पीछे जीवन क्यों लगे है? कविता के अंतिम चरण में वे इसका मूल कारण परिवर्तन की माया या लीला बताकर कविता को समेट लेते हैं । कविता परिवर्तन की शाश्वत स्वीकृति के साथ खत्म होती है । परिवर्तन के इस लीलाचार के सामने प्रकृति, मनुष्य सब लाचार है, कठपुतली है । इसलिए नियतिवाद के बाहर यह कविता नहीं निकलती । इस खंड का एक ही अंश अद्भूत करना पर्याप्त होगा । वेदान्त के 'माहेश्वर मायाविन ' परिवर्तन को पंत ने परिवर्तन का जामा पहना दिया है -

परिवर्तित कर अगणित नूतन दृश्य निरंतर
अभिनय करते विश्व-मंच पर त म मायाकर
जहाँ हास के अधर, अश्रु के नयन करूण तर
पाठ सीखते संकेतों में प्रकट अगोचर
शिक्षास्थल यह विश्व - रंगमंच तुम नायक नटवर
प्रकृति नर्तकी सुधर अखिल में व्याप्त सूत्रधर ।
तुम्हारा ही अशेष व्यापार । महारा भ्रम मिथ्यांहकार
तुम्ही में निराकार - साकार । जीवन-मृत्यु सब एकाकार
अचिर विश्व में अखिल, दिशावधि, कर्म वचन मन
तुम्ही चिरन्तन, अहे विर्वतनहीन विवर्तन ।

छायावाद के संस्थापक और पंत काव्य के परम् प्रशसंक आलोचक पं. नंद दुलारक वाजपेयी ने इस कविता की बड़ी तारीफ की है । उन्होंने लिखा है कि "परिवर्तन में पहुँच कर पंत की कल्पना सचेत होकर अपनी शक्ति का परिचय देती है । उच्छ्वास, आँसू ग्रंथि आदि के वैयक्तिक अनुभवों के उपरान्त 'परिवर्तन' में कवि की निर्लेप कल्पना प्रस्फुटित हो उठी है और यहाँ जीवन के संबंध में निराशामूलक किन्तु तटस्थ विचार प्रकट करती है । यदि यह थन ठी है कि कविता-शरीर की रीढ़ दर्शन है (Outlook of Life) तो परिवर्तन कविता को यह रीढ़ मिल गयी है । परिवर्तन को हम दार्शनिक काक कह सकते हैं और पंत की सुदर रचनाओं में रख सकते है । परिवर्तन में कवि निराशावाद ही प्रमुख रीति झलकता है । फिर भी स्थिति को देखने का और वास्तविकता को पहचानने की शक्ति का उसमें आह्वान है । निराशामूलक होती हुई भी इस रचना में एक औदात्य और दर्शन की तटस्था है । अवश्यंभावी 'परिवर्तन' के चक्र में पड़ा हुआ क्षुद्र मनुष्य अपने सुख-दुख पर क्या आस्था करे । परिवर्तन में मानवीय सुख-दुख का यही निराकरण जीवन का यही आश्वसन प्राप्त होता है । 'साधना ही जीवन का सार' परिवर्तन की विधयक पंक्ति कही जा सकती है । ' (कवि सुमित्रानंदन पंत पृष्ठ - 51)

पं. नंद दुलारे वाजपेयी की तरह पंत की 'परिवर्तन' कविता के दर्शन को महिमा पंडित करने वाले आलाचकों की संख्या काफी है । दरअसल 'परिवर्तन' के विचार पक्ष में नवीनता बहुत कम है। नवीनता उसकी योजना और प्रस्तुति में है ।

सबसे अच्छी बात इस कविता के बारे में यह है कि आलाचकों के महिमामंडन का मोह त्यागकर स्वयं पंत ने इसके दर्शन पक्ष की निर्गम सीक्षा की । उन्होंने कहा कि अब मैं सोचता हूँ कि प्राकृतिक दर्शन, जो एक निष्क्रियता की हद तक सहिष्णुता प्रदान करता है और एक प्रकार से प्रकृति को सर्वशक्तिमयी मानकर उसके प्रति आत्मसमर्पण सिखलाता है, वह सामाजिक जीवन के लिए स्वास्थ्यकर नहीं है ।

एक सौ वर्ष नगर उपवन । एक सौ वर्ष विजय वन । यही तो असार संसार । सृजन सिंचन संहार । आदि भावनाएँ मनुष्य को, अपने केन्द्र से चयुत करने के बाद, किसी सक्रिय सामूहित प्रयोग के लिए अग्रसर नहीं करता, लेकिन उसे जीवन की क्षणभंगुरता का उपदेश भर देकर रह जाती है । इस प्रकार की अभावात्मक (निगेटिवज्म) के मूल हमारी संस्कृति में मध्ययुग से भी गहरे धुले हुए

हैं । जिसके कारण जातीय दृष्टि से हम अपने स्वाभाविक आत्मारक्षण के संस्कारों (सेल्फ प्रिजर्वेटिव इंस्टिक्ट्य) को खो बेठे हैं और अपने प्रति किये गये अत्याचारों को थोथी दार्शनिकता का रूप देकर चुपचाप सहन करना सीख गये है ।साथ ही हमारा विश्वास मनुष्य की संगठित शक्ति से हटकर आकाश-कुसुमवत् दैवशक्ति पर अटक गया है, जिसके फलस्वरूप हम देश पर विपत्ति के युगों मे सीढ़ी-दर-सीढ़ी नीचे गिरते गये है । (आधुनिक कवि पृष्ठ - 4) उन्होंने आगे भी कहा कि तब मै प्राकृतिक दर्शन (नैच्युरेलियटिक फिलॉसोफी) से अधिक प्रभावित था और मानवजाति के ऐतिहासिक संघर्ष से अपरिचित था । (वही पृष्ठ - 8) परिवर्तन कविता के विचार पक्ष की सीमा यही हे कि यह कविता मनुष्य के पुरूषार्थ, संघर्ष के शक्ति बदले उसकी शाश्वत नियति का समर्थन करती है ।

पंत ने अपनी कविता की सीमा की सही पहचान की एक तो मध्यवर्गीय जीवन, दूसरे स्वधीनता आंदोलन के संघर्ष से सीधी सम्प्रक्ति के अभाव ने इस कविता के विचार पक्ष को कमजोर कर दिया है।

4.4 परिवर्तन : अभिव्यंजनापक्ष

दिवेद्वी युग के मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की शुष्क संस्कृत पदावली, संस्कृत वर्णिक वृत्तों वाली गद्यवत भाषा की राह सभी छायावादी कवियों ने छोड दी । पंत ने एक ओर भाषिक स्तर पर ब्रजभाषा की कोमल प्रकृति और दूसरी ओर द्विवेद्वी युगीन रखी, इकहरी अर्थ वाली संस्कृत निष्ठ भाषा से संघर्ष किया । द्विवेद्वी युग की काव्यभाषा से सजृनात्मक काव्यभाषा के निर्माण में पंत की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है । वे शब्द चयन, शब्द- संयोजक, शब्द निर्माण, शब्द संगीत आदि के सिलसिले में काव्यभाषा के सबसे बड़े शिल्पी हैं।

4.4.1 काव्यभाषा

पंत 'शब्द चयन' के प्रति अत्यंन सजग कवि है । वे शब्दों अर्थगत सूक्ष्म अन्तर को ध्यान मे रखकर प्रसंगानुकूल शब्द चयन करते है । शब्द - चयन में उन्हें किसी भाषा से परहेज नहीं है। संस्कृत व्याकरण, -संधि आदि नियमों में छील लेते हुए जहाँ वे 'परिवर्तन' कविता में संस्कृत शब्द क्या, पूरी पदावली उतार लेते है, वही अंग्रेजी के स्वच्छंदतावादी कवियों के प्रभाव के चलते उनके अंग्रेजी शब्दों को न्दि अनुवाद के बतौर अपना लेते है । यदि उनकी परिवर्तन कविता कही संस्कृत पदावली वाले रंग-ढंग में - कचुक कल्पान्तर /वक्रकुण्डढ़ल/ दिग्मंडल आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार ।

रत्न दीपावली मंत्रोच्चार, आलोकित अबुधि फेनोन्नत करशत फन - प्रकट होती है तो कहीं अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी का जामा पहनाकर । जैसे सुवर्ण का काल (गोल्डन एज), स्वर्ण स्वप्न (गोल्डन ड्रीम), स्वर्गीय ज्योति (हैवेनली लाईट), स्वर्गीय सुषमा (हैवनली ब्यूटी) आदि । उन्हें बोलचाल के शब्दों से परहेज नहीं है । उर्दू के औ (और) को अपना लेते हैं । वे 'नवीन शब्दों का निर्माण' भी करते है और ध्वनि के आरोह-अवरोह के अनुसार उन्हें बढ़ा और घटा लेते हैं । झनकार (झंकार), अनजान (अज्ञान) इसी प्रकार के शब्दों प्रयोग है ।

शब्द 'संयोजन' का उन्होंने विशेष ध्यान रखा है । प्रसंगानुकूल 'शब्दावली का 'संयोजन' वे बडी सूझ-बूझ से करते हैं । वासुकि के भंयकर फुत्कार के लिए वैसी ही शब्दावली का आयोजन करते

हैं -'शत्-शत् फेनोच्छवसित स्फीत फूत्कार भंयकर' । एक ओर वे 'लाक्षणिक और व्यंजनागर्भी 'शब्द' प्रयोगों से भाषा को संश्लिष्ट और अर्थ सम्पन्न बनाते है, तो दूसरी ओर कहावती और मुहावरों' के उपयोग से उसे सजीव और आकर्षक भी ।

परिवर्तन में जहाँ 'हुए कल ही हल्दी के हाथ', 'सरल यौं हो का शारदा काश' जैसे लाक्षणिक प्रयोग हे वही 'चार दिन सुखद चाँदनी रात और फिर अंधकार अज्ञात' 'मिलन के पल केवल दो चार, विरह के कल्प अपार', 'आए आँसू रोते निरूपाय' लोकोक्तियों और मुहावरों में -रची-बसी पदावली है । वे 'शब्द - संगीत' के प्रेमी हैं । इसके लिए स्वर - व्यंजन शब्द मैत्री, पुरानवृति, तुक सहारा लेते हैं । हिल-हिल उठता है टल मल । यह दलित धरातल को देखा जा सकता है । यह सब वे भाव समृद्धि के लिए करते हैं । सभी छायावादी कवियों को कुछ शब्दों से विशेष मोह है और वे बार-बार घूम फिर फिर कर आते हैं । परिवर्तन में भी उन्हें पहचाना जा सकता है । जैसे कि-शत्-शत् निःश्वास, अचिर, लो, स्फीत, अज्ञात, स्मित, उच्छ्वास, मधुमय आदि ।

4.4.2 बिम्ब और अलंकार विधान

छायावादी कविता के अभिव्यंजना पच की एक महत्वपूर्ण विशेषता है - बिम्बविधान और अंलकार योजना । पंत भाषा की समृद्धि के लिए दोनों से मदद लेते है । परिवर्तन में जहाँ अनेक छोटे बिम्बों की योजना है, वही परिवर्तन का रूप खड़ा करने के लिए कई विराट संलिष्ट बिम्ब रचे गये हैं । सबसे अधिक प्रधानता चाक्षुष और ध्वनि बिम्बों की है । उन्होंने बिम्ब निर्माण में प्रकृति और मनुष्य क्षेत्रों से मदद ली है । दो उदाहरण पर्याप्त होंगे । प्रलयकारी सागर का विराट चाक्षुष बिम्ब 'परिवर्तन' के लिए पंत ने खड़ा किया है देखिए -

अहे महांबुधि । लहरों - से शत लोक, चराचर,
क्रीड़ करते सतत तुम्हारे स्फीत वक्ष पर
तुंग तरंगों-से शत युग, शत्-शत् कल्पान्तर
उगल महोदर में विलीन करते तुम सत्वर
शत् सहस्र रवि-शशि, असंख्य ग्रह, उपग्रह, उडगन
जलते बुझते हैं, स्फुलिंग से तुम में कक्षण
मनुष्य के सामाजिक - आर्थिक विडम्बना के दो बिम्ब देखें -
अभी तो मुकुट बँधा था माथ, हुए कल की हल्दी के हाथ,
खुले भी न थे लाज के बोल, खिले भी चुंबन शून्य कपोल,
हाय! रूक गया यही संसार, बना सिंदूर अंगार,
बात हंत लतिका वह सुकुमार, पड़ी है छिन्नाधार ।
कोटि मनुजों के निहत अकाल । नयन मणियों से जटिल कराल,
अरे, दिग्गज सिंहासन जाल । अखिल मृत देशों के कंकाल,
मोतियों के तारक लड़ हार ।आँसुओं के श्रृंगार

पंत परिवर्तन परम्परागत अलंकारों - उत्पेक्षा, रूपक उपमा का प्रयोग करते है और नये ढंग के उपमानों को भी लाते हैं । रूप, गुण, धर्म का आधार बनाकर यानि 'प्रभाव साम्य' के मद्देनजर

सादृश्यमूलक अलंकारों का विधान छायावाद की बीमारी विशेषता है । पंत परिवर्तन के अभिव्यंजनापक्ष को दोनों दृष्टियों से समद्ध करते है । वे विम्ब निमार्ण में इनका उपयोग करते है और स्वतंत्र रूप से भी । बात हल लतिका वह सुकुकार । पड़ी है छिन्नाधार के रूपक से पंत ने नि:संबल विधवा के हृदय को मूर्त कर दिया हे । 'उधर वामन डग स्वेच्छाचार', टिड्डयों-सा छा अत्याचार' 'लालची गीधो से दिन - रात', 'प्रलयधन-सा घिर भीमाकार, 'यहाँ सुचा सरसों, शोक सुमेरू' आदि इसी प्रकार के नवीन अलंकार आयोजन है ।

4.4.3 छंद विधान

परिवर्तन का छंद खड़ी बोली की प्रकृति के अनुरूप मात्रिक है । उसमें रोला त्राटक वीर आदि कई मांत्रिक छंदों का उपयोग है । लेकिन छायावादी कवियों की विशेषता यह है कि वे पारम्परिक मात्रिक घंटों को भावानुरोध से चुनते हैं और उसी से छंद को अनुशासित भी करते हैं । वे अर्थलय को ध्यान रखकर छंद की गति, यति और चरण का साकार छोटा और बड़ा कर देते हैं । इस कला में पंत और निराला पारंगत है । भावों के उतार - चढ़ाव के मद्देनजर वे छंद के चरण कैसे बढ़ाते-घटाते है । इसका उदाहरण देखे -

अरे वासुकि सहस्त्रफन
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरंतर

छोड़ रहे जग के विक्षत वक्ष स्थल पर से शुरू हुआ छंद अंत में अपने को कुछ शब्दों-अखिल विश्व ही विवर/ वक्रकुण्डूल/ दिग्मंडल में समेट लेता है । श्री दूधनाथ सिंह का कहना ठीक है कि सम्पूर्ण हिन्दी काव्यरूढ़ि और छंद रूढ़ि का या उसकी काव्यशास्त्रीय अंधदृष्टि का खुले रूप में विरोध करते हुए भी पंत जी ने छंद के औचित्य का अंतरंग और अभिप्रेत अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रतिपादन किया है । (तारापथ सम्पूर्णता का कवि, पृष्ठ - 30) पंत ने अपनी प्रारंभिक कविताओं में मांत्रिक छंदों का सीधा प्रयोग किया है । अर्थलय (भाव) की आवश्यकतानुसार वहाँ यदा-कदा ही परिवर्तन हैं।

छंद परिवर्तन की दृष्टि से विशेष तौर पर परिवर्तन को याद किया जाता है । डॉ. मोहन अवस्थी परिवर्तन के शब्द विधान पर स्वच्छंदतावादी अंग्रेजी कवियों का प्रभाव मानते है । इसके साथ वे पंत के छंदों की लय, परिवर्तन के छंदों की लय पर भी 'इंग्लिशट्यून' का प्रभाव मानते है । उनका कहना है कि परिवर्तन में न केवल छंद की मात्राएँ समान हैं, प्रत्युत लय का निपात भी अंग्रेजी ढंग का है । वे परिवर्तन को 'स्वच्छंद छंद' में लिखी कविता मानते हैं । (काव्य-शिल्प, पृष्ठ-07)

4.4.4 काव्यरूप और रचना विधान

छायावादी कवियों ने दो प्रकार की लम्बी कविताएँ लिखी हैं । एक आख्यान परक कविताओं में जयशंकर प्रसाद की प्रलय की छाया, महाराणा प्रताप, पेशोलो की प्रतिध्वनि और निराला की यमुना के प्रति, राम की शक्तिपूजा, शिवाजी का पत्र आदि के नाम लिये जा सकते हैं । इन कविताओं की रचना का आधार कोई न कोई आख्यान अवश्य है, भले ही उसका कथासूत्र क्षीण हो । आख्यान मुक्त लम्बी कविताओं में रचनाकार और रचनाविधान दोनों दृष्टियों से पंत के 'परिवर्तन' कविता का नाम सबसे पहले लिया जा सकता है । डॉ. हरदयाल का कहना बिल्कुल सही है इस कविता में कथाधार

बिल्कुल नहीं है । इसलिए इसका कथ्य न दिक् के साथ बँधा है, न काल के साथ । यही कारण है कि कविता मुक्तक खंडों का एक संकलन जैसी प्रतीत होती है - एक दन्द को अलग करके पढ़ते समय किसी प्रकार के अधूरेपन का अनुभव सामानयत: नहीं होता । ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि इसे एक लम्बी कविता क्यों माना जाए हमारे पास इस प्रश्न का स्तर यह है कि इस कविता में निराशा की एक केन्द्रीय मनोदशा है, जो इस कविता को बाँधे हुए है, इस कविता के खंडों में एकता स्थापित करती है । (लम्बी कविताओं का रचनाविधान, पृष्ठ - 29)

जहाँ तक परिवर्तन के रचना - विधान का प्रश्न है, उससे भावावेग, कल्पना, विचार, भाषा, अलंकार सबने मिलकर परिवर्तन हो आकार दिया है । इस कविता के केन्द्रीय भाव को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने के लिए भावावेग, कल्पना और विचार तीनों ने महत्वपूर्ण भमिका निभाई है । भावावेग, कल्पना और विचार कविता में जैसा संतुलन और सामंजस्य है, वह बहुत कम कविताओं में मिलता है । पंत की कविताओं में तो वह दुर्लभ है । (वही, पृष्ठ - 30) इस कविता में जो संरचनात्मक संतुलन और सुगठन है उसमें कल्पनाशीलता का योगदान सर्वाधिक है । बिम्ब निर्माण से लेकर अलंकार, छंद चयन तक के पीछे वह सक्रिय है ।

4.5 शब्दावली

स्वर्ण का काल	–	ऐश्वर्य का युग
वक्षस्थल	–	छाती
अधि	–	व्याधिमानसिक
संमृति	–	सृष्टि
स्फीत	–	फैला हुआ
और शारीरिक पीडाएं	–	चिन्ताएं
मधुमास	–	वसन्त
गरल	–	विष
विकच	–	सिला हुआ
ऋद्धि ओ सिद्धि	–	समृद्धि और सफलता
कंचक	–	केंचुल
शतदल	–	कमल
कचौं	–	बालों
कल्पांतर	–	युगों का बदलना
नैश	–	रात का
जरा	–	बुढ़ापा
विवर	–	बिल
स्वर्णशस्य दल	–	सुनहरी फसल
बयार	–	हवा

दिग्मंडल	–	दसो दिशाएँ
अभ्र	–	बादल
वासुकि	–	वह विशेष नाग, जो समुद्र मंथन के दौरान मंदराचत को घुमाने के लिए रस्सी बनाया सौंधमहल
उडुगन	–	तारे
आलोडित	–	उफान
भुजगर्म	–	सर्प
विनतानत	–	सूर्य
हर्म्य	–	महल
भग्नविहार	–	खंडहर
झिल्लियोंरात	–	में निर्जन स्थान में बोलने वाला एक विशेष कीड़ा
दिगम्बर	–	नंगा
वातहत	–	तूफान की मारी
छिन्नाधार	–	मालामालसे रहित
कृशकायक़	–	दबला
अचीर	–	निर्वस्त्र शोषित
रूधिर	–	खून
दिग्गज	–	वीर
सैंकत	–	बालू
स्वीय	–	आपना
पुलिन	–	किनारा
प्रकाम	–	बहुत
अभिराम	–	सुंदर
स्थिनिरता	–	बुढ़ापा
महांबुधि	–	विशाल सागर
चिरंतन	–	शाश्वत
विवर्तन	–	आभास
विवर्तनहीन	–	आभास रहित, विकार रहित
अनिर्वचनीय	–	जिसका वर्णन न किया जा सके ।

4.6 सारांश

द्विवेदी युग के बाद छायावाद को ठोस साहित्यिक आधार प्रदान करने वाले कवियों में पंत का नाम सबसे पहले लिया जाता है । उनके कवि-कर्म का प्रसार प्रगीत, खंडकाव्य, लम्बी कविता,

खंडकाव्य, प्रबंध काव्य तक है । परिवर्तन पल्लव की सबसे लम्बी कविता है । उसकी स्वभावगत विशेषता यह है कि वह प्रसाद और निराला की आख्यानपरक लम्बी कविताओं से भिन्न है । वह आख्यान मुक्त कविता है । संसार और जीवन में दुख की प्रधानता उसका मूलभाव है उसका कारण पंत की नजर में परिवर्तन का लीला व्यापार है । परिवर्तन का लीलाव्यापार का आधार स्थिर, नित्यतच्चवाद है । इस कविता की चिन्तनभूमि की सीमा परिवर्तन की चिरन्तनता के सामने मानवीय नियतिवाद की स्वीकृति की स्वीकृति है । इस प्रकार की मनोरचना के निमार्ण में जहाँ पंत के मध्ययुगीन दार्शनिक संस्कार शामिल है, वही उनके जमाने के गुलाम भारत की सामाजिक - आर्थिक अमानवीय परिस्थितियाँ। स्वाधीनता आन्दोलन से करा पंत का मध्यवर्गीय संस्कार और नीजी जीवन की दुर्घटनाएँ भी इसमें शामिल है । प्रभाव और सीमा के बावजूद रचनाविधान की दृष्टि से यह पंत की मौलिक रचना है और उसमें उनके भाव ,विचार, कल्पनाशक्ति, भाषा बिम्ब अंलकार, छंद योजना आदि सभी संश्लिष्ट रूप में मददगार साबित होते हैं । रचनाविधान की दृष्टि से 'परिवर्तन' पंत की रचनाओं में ही नहीं, बल्कि छायावादी कविता के भीतर अपनी पहचान बनाती है और पाठकों के बीच लोकप्रियता भी हासिल करती है ।

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पंत के काव्य-यात्रा का परिचय दीजिए ।
2. 'परिवर्तन' कविता के भावपक्ष की विशेषताऐं बताइए ।
3. 'परिवर्तन' कविता के अभिव्यजंना पक्ष की चर्चा कीजिए ।

4.8 संदर्भ ग्रंथ

1. पं. नन्द दुलारे वाजपेयी; कवि सुमित्रानन्दन पंत, प्रकाशन संस्थान-नई दिल्ली, संस्करण-सन् 1997 ।
2. पं. रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा-काशी संस्करण-सम्बत् 2041 ।
3. सुमित्रानंदन पत्र आधुनिक कवि-2, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग संस्करण-चौदह, सन् 1990।
   - रश्मि बंध, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली 21 वां संस्करण, सन् 1990 ।
   - तारापथ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, सन् 1995 ।
4. डॉ. मोहन अवस्थी; आधुनिक हिन्दी काव्य-शिल्प, साहित्य रत्नालय, कानपुर संस्करण, सन् 1996 ।
5. डॉ. नरेन्द्र मोहन; सं. लम्बी कविताओं का रचना विधान, द मेंक मिलन कम्पनी ऑफ इण्डिय, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 1977 ।

इकाई - 5

'सरोज स्मृति' (सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला') की व्याख्या व विवेचन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना,

5.2. कवि परिचय

5.2.1 जीवन-परिचय

5.2.2 सृजन-परिचय

5.3 सरोज स्मृति : सामान्य परिचय

5.4 काव्य वाचन

5.5 ससन्दर्भ व्याख्या

5.5.1 उनविश पर जो प्रथम चरण.....शरण -तरण ।

5.5.2 धन्धे, मैं पिता निरर्थक.....मुख चित ।

5.5.3 तब भी मैं.....पूजा उन पर ।

5.5.4 धीरे धीरे बढ़ा चरण.....दिक् प्रसार ।

5.5.5 वे जो यमुना के से कछार.....मुझकों नहीं चाह ।

5.5.6 तुम करों ब्याह.....कलश का जल ।

5.5.7 माँ की कुल शिक्षा मैंने दी.....महाभरण ।

5.5.8 मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल.....,.....मैं तेरा तर्पण ।

5.6 शब्दावली

5.7 सारांश

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.9 संदर्भ ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'' छायावाद के संस्थापक एवं आधार स्तंभ तो हैं ही, साथ ही वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी 'महाप्राण' भी हैं । भारतीय वेदान्त दर्शन, स्वामी रामकृष्ण की सांस्कृतिक विचारधारा का आप पर गहरा असर था । इस तरह वेदान्त दर्शन इनके काव्य का मूल स्वर है । प्रस्तुत इकाई के माध्यम से महाकवि निराला के विशिष्ट जीवन के साथ साथ उनके कृतित्व से भी परिचित हो सकेंगे । हिन्दी साहित्य में अपने ढंग का अनूठा एवं विशिष्ट शोक गीत लिखकर किस तरह से अपने जीवन की अजस्र करूण धार, कसक, पीड़ा एवं टीस को 'सरोज स्मृति' द्वारा अभिव्यक्ति कर दिया गया है, आप यह हृदय से समझ सकेंगे । इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप

- निराला के खास व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे ।
- निराला के साहित्य संसार को जान पाएँगे ।
- निराला कृत सरोज स्मृति' से रूबरू हो सकेंगे, ।
- हिन्दी साहित्य की प्रथम शोक गीत 'सरोज स्मृति' की गहन संवेदनाओं के साथ अपना तादात्मय स्थापित कर सकेंगे, ।
- 'सरोज स्मृति' के विशिष्ट अंशों की व्याख्या कर सकेंगे ।

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम प्रसिद्ध छायावादी महाकवि महाप्राण निराला की सुविख्यात रचना 'सरोज स्मृति' की चर्चा करेंगे । 'सरोज स्मृति' हिन्दी काव्येतिहास में अपनी इस तरह की विशिष्ट दीर्घ कविता है । यह एक शोक गीत है जिसमें निराले व्यक्तित्व एवं कृतित्व के धनी सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की एकमात्र पुत्री के युवावस्था में हुए असामयिक निधन पर एक पिता कवि की कारूणिक, मार्मिक एवं हृदय रूदन से प्रस्फुटित भाव संवेगों का अत्यन्त मर्मस्पर्शी अंकन हुआ है । वस्तुत: यह एक पुत्री के अकाल कालकवलित होने का रूदन गीत नहीं है अपितु एक कवि, पिता व आम आदमी के बतौर जो कठोर अनुभव एवं भीषण संघर्ष भरी दर्द-ए-दास्ता अनुभव की, उसका जीवन्त 'लाइव टेलिकास्ट' भी है । यह सर्वविदित है कि निराला जी को अपने जीवन में त्रिमुखी संघर्ष झेलना पड़ा था । यह संघर्ष एक ओर साहित्य जगत में अलोचकों समीक्षकों से थी तो दूसरी ओर प्रकाशको से। यह संघर्ष उस समय और भी प्रखर हो उठा जब उन्हें सामाजिक जीवन में भी अनेक विरोधों का सामना करना पड़ा । इनके अतिरिक्त भी जो उनकी संघर्ष चेतना रही उसका प्रभावी, मग़र्मिक एवं जरा अंकन 'सरोज स्मृति' में हुआ है, जिसका विवेचन हम प्रस्तुत इकाई में करेंगे । यह सब निराला जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के संक्षिप्त परिचय के साथ एवं उसके बाद भी विविध बिन्दुओं में जानकारी द्वारा संभव हो सकेगा ।

5.2 कवि-परिचय ।

किसी भी कलाकार व सर्जक की रचना की पड़ताल करने से पूर्व उसके रचयिता की पृष्ठभूमि जान लेना निहायत जरूरी होता है । क्योंकि इसमें कोई सन्देह नहीं कि रचनाकार के जिस व्यक्तित्व का निर्माण होता है उस पर उसके जीवन व सरकारों का निश्चित प्रभाव पड़ता है, वहीं यह भी तय बात है कि रचनाकार और सर्जक की सर्जना पर उसके जीवनानुभवों का प्रभाव भी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष पड़ता है । अत: स्पष्ट है कि रचना पर समझ बनाने से पूर्व उसके रचियता पर समझ बनायें ।

5.2.1 जीवन परिचय

निराला के नाम से साहित्य समाज में जाने जाने वाले सूर्यकुमार का जन्म बंगाल के महिषादल में बसन्त पंचमी 29 फरवरी 1899 ई. को सिपाहियों के जमादार रामसहाय पंडित के घर हुआ । यह उल्लेख है कि निराला का मूल गाँवघर गढ़कोला था जो बैसवाड़े क्षेत्र में पड़ता है । 'दुख ही जीवन की कथा रही' कहने वाले निराला का बचपन भी दुख के साये में बीता, जब उसकी माँ उन्हे ढाई बरस का छोड़कर हमेशा के लिए चल बसी । परिणामत: निराला को पिता के साथ महिषादल में रहना पड़ा।

रविवार को जन्मने के कारण आपका नाम सूर्यकुमार रखा गया था । बचपन से ही इनके मन पर जुझारू किसानी संस्कृति का गहन प्रभाव पड़ा । ग्यारह वर्ष की उम्र में इनका विवाह मनोहरा देवी के साथ कर दिया गया ।

एण्ट्रेस मे फेल होने पर पिता के घर से अलग कर देने पर अब मायके में रह रही पत्नी को लाकर उनके संग रहने लगे । मनोहरा ने पहले पुत्र रामकृष्ण व फिर पुत्री सरोज को जन्म दिया। सरोज के जन्मवर्ष में ही पिता का साथ नहीं रहा । अत: जिन्दगी का कठोर दौर यही से चला । जल्द ही पत्नी भी त्रिलोकवासी हो गई । अब निराला पुत्र-पुत्री को डलमऊ छोड़ स्वयं गढकोला आये। यहाँ से वह दौर भी शुरू होता है जब उनका कवि व्यक्तित्व विविध अनुभवों से गुजरता हुआ निर्मित हुआ महिषादल में परमहंस रामकृष्ण के शिष्य प्रेमानन्द से संपर्क हुआ तो दूसरी ओर स्वाधीनता संग्राम के प्रति लगाव । गांधीजी के असहयोग आंदोलन से भी परिचित हुए । गढ़ाकोला आने पर महवीर प्रसाद द्विवेदी से संपर्क बढ़ा । जीविका की समस्या एवं निराले व फक्कड़पनी व्यक्तित्व के कारण वे एक स्थान पर न टिककर कभी बनारस तो कभी कलकत्ता आते जाते । 1921 के आसपास वे समन्वय' के सम्पादन से जुड़े । बंगाली रंगकर्मी गिरीशचन्द्रघोष व रवीन्द्र नाथ टैगोर के साहित्य से भी वे इससे पूर्व ही परिचित हो रहे थे ।

जीवन भर राग और विराग के द्वन्द्व में रहे निराला के जीवन के अन्तिम वर्ष बड़ी ही विकट परिस्थितियों में गुजरे । एक ओर शारीरिक कष्ट तो दूसरी लम्बी मानसिक विक्षिप्तता के चलते हुए 1961 में अपनी देह त्यागी । यह अजीब विडम्बना है कि आज निराला की रचनाओं को जो सम्मान मिल रहा है, जो सराहना मिली है वह निराला के जीते जी न मिले सकी ।

5.2.2 सृजन -परिचय

निराला जी की आरंभिक रचना का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है पर 1961 में रचित 'जुही की कली' नामक श्रृंगारिक कविता उनकी आरंभिक रचना मानी जा सकती है । यह ध्यातव्य है कि उस समय 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक महावीर प्रसाद द्विवेद्वी ने इस कविता को छापने से इन्कार कर दिया था । आगे चलकर यही कविता मुक्त छन्द की प्रवर्त्तक सिद्ध हुई और निराला मुक्त छन्द के प्रस्तोता एवं प्रवर्त्तक कहलाए ।

निराला कृत काव्य संग्रह इस प्रकार है -

अनामिक (प्रथम) 1923, 'परिमल' 1929, 'गीतिका' 1936, 'अनामिका' द्वितीय 1939, 'तुलसीदास' 1942 'अणिमा' 1943, 'कुकरमुक्ता' 1942, 'बेला' 1946, 'नये पत्ते' 1946, 'अर्चना' 1950, 'अराधना' 1953, 'गीतगुज' 1954, 'सन्ध्याकाकली' 1969

कहानी संग्रह-

'लिली' 1934, 'सखी' 1935, 'सुकुल की बीवी' 1941, 'चतुरी चमार' 1945

उपन्यास

'अप्सरा' 1931, 'अलका' 1933, 'प्रभावती' 1936, 'निरूपमा' 1936, 'कुल्लीभाट' 1939, 'बिल्लेसुर बकरिहा' 1942, 'चोटी की पकड़' 1946, 'काले कारनामे' 1950, 'चमेली व इन्दुलेखा' (अपूर्ण)

अलोचनात्मक चिन्तन/ निबंध

रवीन्द्र कविता कानन 1954, प्रबन्ध पद्म 1934, प्रबंध प्रतिमा 1940, चाबुक 1942, चयन 1957, संग्रह 1963

अन्य रचनाओं में बाल साहित्य व रामायण- महाभारत संबंधी अर्न्तकथाएँ आदि शामिल हैं ।

निराला मूलत: कवि है । यद्यपि वे बहु वस्तुस्वर्शिनी मेधा के रचनाकार हैं तदपि छायावादी वैभव सम्पन्न व तदुरान यथार्थबोध की रचनाओं में उनका समग्र काव्य है साहित्य आलोकित है ।

उनकी ख्याति को अभिवर्धित करने वाली रचनाओं में जुही की कली, जागो फिर एक बार, बादल राग, तोड़ती पत्थर विधवा व प्रबन्धात्मक औदात्य की दीर्घ कविताओ में राम की शक्ति पूजा, सरोज स्मृति, तुलसीदास आदि प्रमुख हैं ।

निराला काव्य मे एक ओर प्रेम, श्रृंगार, प्रकृति सौन्दर्य के रंग हैं तो दूसरी ओर विद्रोही चेतना । एक ओर स्वजीवन का कठोर संघर्ष है और सामाजिक विरक्ति तो दूजी ओर वैयक्तिक संसिक्ती व करूण की धारा । अत: विराग उनके काव्य में साकार हुए ।

5.3 सरोज स्मृति : सामान्य परिचय

1935 में रचित 'सरोज स्मृति' निराला के काव्य संग्रह 'अनामिका' में संकलित है । यह निराला की ही नही अपितु हिन्दी काव्य इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति है जिसे कवि ने अपनी पुत्री सरोज की बीमारी के कारण हुई असामयिक मृत्यु के उपरान्त उसकी स्मृति में करूण धारा से श्रदांजलि देते रचा है । यह रचना हिन्दी साहित्य की शोक गीतात्मक अनुपम व विशिष्ट रचना है । इसमें एक ओर पुत्री के प्रति प्रेम की सहज झलक मिलती है वही दूसरी ओर कवि के व्यक्तिगत जीवन का बहु मुखी कठोर संघर्ष भी । इस कविता की अंतरवस्तु एवं मूल संवेदना को केन्द्रीय भाव के रूप में इन पंक्तियों से समझा जा सकता है ।

"दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही"

इसके अतिरिक्त माँ के अभाव करी पूर्ति का प्रयास करता पिता निराला अपने कठोर दुख, विषाद, व्यर्थता, बोध, हताशा, अवसाद, ग्लानि, किकर्तव्यविमूढता व अकिंचनता को गहनतम भाव संवेगों से इन शब्दों में अभिव्यक्ति करता है ।

धन्धे, मैं पिता निरर्थक था ।
कुछ भी तेरे हित न कर सका ।

कविता में विविध घटनाओं का ब्यौरा सघन भावों के संतुलित उतार-चढ़ाव के साथ गहन आतंरिक अन्वय व संगठन के साथ हुआ है ।

5.4 काव्य वाचन

सरोज - स्मृति
उनविश पर जो प्रथम चरण
तेरा वह जीवन - सिंधु - तरण:
तनये, ली कर दृक्पात तरूण
जनक से जन्म की विदा अरूण!

गीते, मेरी, तज रूप-नाम
वर लिया अमर शाश्वत विराम
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय
चढ़ मृत्यु-तरणि पर तूर्ण-चरण
कह - 'पित: पूर्ण आलोक वरण
करती हूँ मैं, यह नहीं मरण,
सरोज' का ज्योति: शरण तरण
धन्य, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका!
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित - काय
लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ - समर ।
शुचिते, पहनाकर चीनांशुक
रख सका न मुझे अत: दधिमुख ।
क्षीण का न छीना कभी अन्त,
मैं लख न सका वे दृग विपन्न,
अपने आँसुओं अत: बिम्बित
देखे हैं अपने ही मुख- चित ।
तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि - जीवन में व्यर्थ भी व्यस्त
लिखता अबाध गति मुक्त छन्द,
वापस कर देते पढ़ सत्वर पर सम्पादकगण निरान्द
दे एक -पंक्ति- दो में उत्तर
लोटी रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश
बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर
व्यतीत करता था गुन-गुन कर
सम्पादक के गुण; यथाभ्यास
पास की नोचता हुआ घास
अज्ञात फेंकता इधर-उधर
भाव की चढ़ी पूजा उन पर
धीरे -धीरे फिर बढ़ा चरण,
बाल्य की केलियों का प्रांगण

कर पार, कुंज- तारूण्य सुघर,
आई लावण्य - भार थर-थर
काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर;
नैश स्वप्न ज्यों तू मन्द - मन्द
फूटी ऊषा जागरण छन्द,
काँपी भर निज आलोक - भार
काँपा वन, काँपा दिक्-प्रसार ।
वे जो यमुना के-से कछार
पग फटे बिवाई के, उधार
खाये के कम मुख ज्यों, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर-गन्ध
उन चरणों को मैं यथा अन्ध
कल घ्राण-प्राण स रहित व्यक्ति
हो पूंजू ऐसी नहीं शक्ति ।
ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह
करने की मुझकों नहीं चाह । "
तुम करों ब्याह, तोड़ता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम,
लग्न के; पढ़ूँगा स्वयं मंत्र
यदि पंडितजी होंगे स्वतंत्र ।
जो कुछ मेरे, वह कन्या का,
निश्चिय समझो, कुल धन्या का । "
आये पंडितजी, प्रजावर्ग,
आमंत्रित साहित्यक, ससर्ग
देखा विवाह आमूल नवल,
तुझ पर शुभ पड़ा कलश का जल ।
देखती तू मुझे हँसी मन्द
होंठों में बिजली फँसी, स्पन्द
उर मे भर झूली छवि सुन्दर
प्रिय की अशब्द श्रृंगार - मुखर
तू खुली एक उच्छवास-संग,
विश्वास-स्तब्ध बँध अंग अंग

नत नयनों से आलोक उतर
काँपा अधरों पर थर-थर-थर ।
देखा मैंने, वह मूर्ति -धीति
मेरे वसन्त की प्रथम गीति-
श्रृंगार, रहा जो निराकार,
रस कविता में उच्छ्वसित-धार
गाया स्वर्गीया-प्रिया-संग-
भरता प्राणों में राग रंग,
रति-रूप प्राप्त कर रहा वही,
आकाश बदल कर बना मही
माँ की कुल शिक्षा मैंने दी,
पुष्प -सेज तेरी स्वयं रची,
सोचा मन में, "वह शकुन्तला,
पर पाठ अन्य यह, अन्य कला । '
कुछ दिन रह गृह तू फिर समोद
बैठी नानी की स्नेह-गोद ।
मामा-मामी का रहा प्यार,
भर जलद धरा को ज्यों अपार;
वे ही सुख दुख में रहे न्यस्त,
तेरे हित सदा समस्त, वयस्त;
वह लता वहीं की, जहाँ कली
तू खिली, स्नेह से हिली, पली,
अन्त भी उसी गोद में शरण
ली, मूँदे दृग वर महामरण!
मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल,
युग वर्ष बाद जब हुई विकल,
दुःख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही!
हो इसी कर्म पर वज्रपाज
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सकल
हों भ्रष्ट शीत के-से शतदल!
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण!

5.5 ससन्दर्भ व्याख्या

सरोज स्मृति का लम्बी कविता का आपने वाचन किया । अब प्रमुख अंशों की ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत है -

5.5.1 'उनविश पर जो प्रथम चरण..... शरण-तरण ।

तेरा जीवन वह जीवन-सिन्दु-तरूण
तनये, ली कर दृक्पात तरूण
जनक से जन्म की विदा अरूण!
गीते, मेरी, तज रूप नाम
वर लिया अमर शाश्वत विराम,
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय
चढ़ मृत्यु तरणि पर तूर्ण चरण
कह- "पित: पूर्ण आलोक वरण
करती हूँ मैं, यह नहीं मरण
'सरोज' का ज्योति: शरण- तरण

संदर्भ व प्रसंग -

उपर्युक्त काव्यातरण आधुनिक काल के महान् कवि महाप्राण निराला की लम्बी कविता 'सरोज स्मृति' के प्रथम अनुच्छेद से अवतरित है । यह रचना हिन्दी साहित्य की जगत् की नहीं अपितु विश्व काव्येतिहास की प्रसिद्ध रचना है । हिन्दी साहित्य की तो इसलिए कि शोक गीत है और हिन्दी में इन तरह की शोक गीतात्मक रचना प्रकरण में नहीं आई । विश्व साहित्य की विशिष्ट रचना इसलिए कि अब तक प्रेमिका, पत्नी या प्रेम संबंधी की मृत्यु पर तो काव्य या शोक गीत लिखे गये है, लेकिन पुत्री वियोग में शोक में रचित यह अपने तरह की एक मात्र अलग एवं खास रचना है । 18 वर्ष की उम्र में ही निराला जी एक मात्र पुत्री सरोज जब बीमारी के कारण मृत्यु को वरण करती है तो उसका अभाव निराला जी को व्यथित कर देता है । उस प्रसंग में उक्त पंक्तियों में कवि ने अपने भाव संवेगों को वैचारिक संश्लेषण के साथ प्रस्तुत किया है -

व्याख्या -

निराला कहते है कि अठारह वर्ष पूरे होने पर और उन्नीसवें में प्रवेश करते ही तुमने संसार सागर से अपने को तार लिया । हे पुत्री! तुमने अपने पिता से जन्म से विदाई लेकर तरूणाई में ही जीवन-संधु को तारकर दृष्टिपात कर लिया । कविवर सरोज को पवित्र गीता के रूप में संबंधित करते हुए कहता है कि हे मेरी गीते! तुमने अपने नाम और रूप को त्यागकर हमेशा के लिए अमरता भरा विराम ले लिया । गीता की तरह पवित्र तुमने अपने जीवन के अठारह अध्यायों को गीता की पवित्रता की तरह पूरा कर लिया ।

कविवर एक पिता के हृदय के करूण स्पंदन के साथ कहते हैं कि अपने पिता से पहले सरोज ने मृत्यु का वरण इसलिए किया कि जब वे बुढ़ापे में अत्यन्त कृश एवं बलहीन हो जाएँगे, तो वह उन्हें सहारा देकर इस अंधकार भरे भवसागर को पार करा सकेगी ।

निराला एक पिता का स्पन्दित एवं भाव संवेगों से आप्लावित मगर संतुलित हृदय बुद्धि से कहते है कि वास्तव में यह सरोज की मृत्यु नहीं है । अपितु उस परम ज्योति की शरण में सरोज कमल ज्योति का तरण है, महाशक्ति के प्रकाश में मिलन है ।

विशेष -

1. अपनी पुत्री की मृत्यु की ठोस यथार्थ घटना को कविवर निराला ने दार्शनिक उदातता से जोड़ा है । सरोज की अठारह वर्ष पूरे कर मृत्यु की शरण में जाने को पवित्र गीता के अठारह अध्यायों के पूर्ण करने में देखा है ।
2. इस अंश की व्याख्या मे डॉ. नन्द किशोर नवल लिखते है कि निराला ने इस घटना को अलौकिक रूप प्रदान किया है और कहा है कि सरोज मरी नहीं है, उसने तो पूर्ण आलोक (ब्रहम प्रकाश) का वरण किया है । यह तो ज्योति से खिलने वाले सरोज अर्थात् कमल का ज्योति मे लीन हो जाना है।
3. शैली अत्यन्त मार्मिक, प्रभावोत्पादक एवं सश्लिष्टात्मक है । निराला की विशिष्ट भाव भूमि है, उनकी अपनी अलग रचना शैली है, जो वहाँ भी दिखाई देती है । सामासिक शब्दावली, छायावादी शैली का शब्द विघान ध्वन्यात्मकता, विशिष्ट शब्द चयन आदि इस अंश की शैल्पिक विशेषताएँ है ।

5.5.2 धन्ये, मैं पिता .....मुख चित ।

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका ।
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय
लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा । मैं स्वार्थ समर ।
शुचिते, पहनाकर चीनाशुंक
रख सका न तुझे अत: दधिमुख ।
क्षीण का न छीना कभी अन्न
मैं लख सका वे दृग विपन्न
अपने आँसुओं अत: बिम्बित
देखे हैं अपने ही मुख - चित

संदर्भ एवं प्रसंग

प्रस्तुत काव्यांश सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला द्वारा 1935 में रचित लम्बी शोक गीतात्मक कविता 'सरोज स्मृति' के दूसरे अनुच्छेद से अवतरित है । यहाँ पिता के रूप में निराला अपनी अवशता,

आत्मग्लानि, निराशा, असमर्थता पर दुखी होते हुए बेटी से कहते हैं कि मैं तेरे लिए कुछ भी अच्छा नहीं कर सका ।

व्याख्या

निराला को अपने मन की गहराइयों से यह महसूस होता है कि वे अपनी पुत्री के प्रति पिता के रूप में अच्छी देखभाल न कर सकें । वे शुरू की पंक्तियों में कहते है कि मेरा तुम्हारे लिए पिता होना बेकार ही था, निरर्थक था, क्योंकि मैं तेरे लिए कुछ भी बेहतर न कर सका । वे कहते हैं कि मैं सदैव ही जीवन में धन कमाने के उपाय करता रहा, असमर्थ रहा । हमेशा ही मैं अपने आप में सिमटा रहा । अर्थात भाव यह है कि मेरे पास सीमित संसाधन रहे । अर्थ के लिए, धन प्राप्ति के लिए सदा ही गंभीर प्रयास किए पर मैं अपने को हमेशा ही, निरर्थक परिश्रम करता पाता था । धन की प्राप्ति के सारे प्रयासों में मैं नाकाम रहा । अपने हितार्थ कुछ कर पाने में सदैव ही असमर्थ रहा और एक तरह से अपने हित (स्वार्थ) के लिए लड़े युद्ध में पराजित हुआ ।

निराला पुत्री सरोज को संबोधित करते हुए कहते है कि है पवित्रे! मैने तुम्हे कभी भी अच्छे और रेशमी वस्त्र नहीं पहनाए । तुम्हे दूध दही भी भली प्रकार से न खिला सका । भाव यह है कि चाहते हुए भी; असमर्थता, आर्थिक विपन्नता के चलते हुए न अच्छा पहना सका और न ही अच्छा खिला सका ।

आगे की पंक्तियों में निराला अर्थोपाय न कर पाने का स्पष्ट और यथार्थ कारण बताते हैं। वे कहते है कि मैं किसी आभवग्रस्त या गरीब का अन्न छीनकर किस तरह से पैसे या धन एकत्रित कर सकता था? अर्थात नहीं ही । मैं कभी गरीब और असहाय को विपन्न और अभावग्रस्त, गरीब और आँसू भरी जिन्दगी जी रहा था, तो मुझे उन लोगों की जिन्दगी भी वैसे ही लगी । जैसा मैं स्वयं विपन्न, अकिंचन व अभावग्रस्त रहा मैंने औरों को भी वैसा ही पाया; फिर मैं कैसे अर्थ संचित कर सकता था?

विशेष -

1. प्रस्तुतांश में कविवर निराला अपनी पुत्री के निधन पर उसके जीते जी उसके लिए कुछ न कर पाने पर करूण विगलित हृदय से विलाप करते हैं । सामन्तवादी व परम्परित भारतीय परिवेश में यह अत्यन्त उल्लेखनीय बात है कि एक पिता अपनी पुत्री के लिए कुछ न कर पाने पर आत्मव्यथित होता है और ग्लानि भाव से भर-उठता है । वे स्पष्ट कहते है कि विपन्नता के कारण मैं तुझे अच्छा खिला पिला न सका और नहीं तुम्हारे योग्य होते हुए भी श्रेष्ठ (रेशमी) वस्त्र नहीं पहना सका ।
2. कवितांश के अंतिम चरण में निराला की सहृदयी जनवादी, यथार्थ बोध व करूणा संवलित संवेदना स्पष्टत: इस तरह व्यक्त हुई है कि मैं आखिर कैसे अर्थोपार्जन करता? क्योंकि निर्ममता से गरीबो का हक छीनकर, उनके मुँह का कैसे छीनकर ही धनार्जन किया जा सकता था, और वे ऐसा कदापि न कर सकते थे । खास तौर पर इसलिए कि वे स्वयं भी गरीब थे, और उनके दर्द को समझते थे ।

3. भाषा शैली प्रसगानुकूल एवं भावोत्तेजक है । प्राय: सरल व प्रसाद गुणयुक्त शब्दावली प्रयुक्त हुई है । तत्सम शब्दावली का प्रभावी अंकन हुआ है । शैली भावानुकूल, चित्रात्मक एवं 'लाइव टेलिकास्ट' की बिम्बधर्मी है ।

5.5.3 **ब भी मैं ..... पूजा उन पर ।**

तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि जीवन में व्यर्थ भी व्यस्त
लिखता अबाध गति मुक्त छन्द,
पर सम्पादकगण निरानन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर
दे एक - पंक्ति - दो मे उतर ।
लौटी रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश
बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर
व्यतीत करता था गुन गुन कर
सम्पादक के गुण; यथाभ्यास
पास की नोचता हुआ घास
अज्ञात फेंकता इधर-उधर
भाव की चढ़ी पूजा उन पर

ससन्दर्भ व्याख्या-

प्रस्तुत काव्य की पंक्तियाँ प्रसिद्ध छायावादी कवि निरालाकृत 'सरोज स्मृति' से अवतरित है। सरोज स्मृति में यद्यपि कवि ने मुख्यत: अपनी पुत्री कवि सरोज के असमय निधन पर करूणाकलित हृदय से श्रदांजलि अर्पित करते हुए अपने पूर्व कर्मो से तर्पण किया है । लेकिन साथ ही इस कृति में निराला का त्रय स्तर पर हुआ संघर्ष भी व्यक्त हुआ है । यह संघर्ष स्वयं अपने से, साहित्यिक समाज से और अपने जातीय संघर्ष से था । प्रस्तुतांश में निराला ने साहित्यिक संघर्ष का यथार्थ मगर मार्मिक अंकन किया है ।

व्याख्या -

व्यंग्य शैली में निराला अपनी मृत पुत्री को संबोधित करते हुए साहित्य वर्ग के साथ हुए कड़वे अनुभव को बयां कर रहे हैं । वे लिखते हैं कि यद्यपि मैं कवि जीवन में व्यर्थ में व्यस्त रहा, तदापि मैं बिना रूके, लगातार मुक्त छंद मे रचनाएँ करता रहा । भाव यह है कि मुक्त छन्द की रचनाओं में रचना को निराला तो स्वान्तः सुख मिलता था लेकिन साहित्यिक समाज के लिए वह बेकार परिश्रम था, क्योंकि उनके लिए वह महत्वहीन एवं उपेक्षित था ।

निराला मुक्त छन्द की कविताएँ रच-रचकर छपने के लिए विभिन्न सम्पादकों को प्रेषित करते थे, लेकिन जैसे सम्पादकों को तो उसकी रचनाओं में बिल्कुल भी रस व आनन्द प्राप्त नहीं होता था, इसलिए वे तो उनकी रचनाओं को शीघ्रता से एक-दो पंक्ति में यह उत्तर देकर कि रचना छपने योग्य नहीं है, या स्थानाभाव में नहीं छप सकती; आदि लिखकर लौटा देते थे ।

निराला आगे की पक्तियों में कहते है कि वे वापस हुई रचनाओं को लेकर उदासी के भाव से आकाश व चारों दिशाओ में ताकते थे, देखते थे । अर्थात् एक प्रकार से निराशा भाव से उन लौटी हुई रचनाओं को लेकर लम्बे समय तक बैठे रहते । वे बैठे - बैठे सम्पादक के गुणों के बारे में सोचते। व्यंग्य एवं मूल भाव यह है कि उन्हें सम्पादकों के मूर्खतापूर्ण निर्णय पर आश्चर्य होता कि वे आखिर किस कारण से रचनाओं को लौटा रहे हैं । शायद उन्हें गुण दोष की परख ही नहीं है ।

इस प्रकार से लौटी रचनाओं को लेकर चिन्तित मुद्रा में बैठे रहने का उन्हे जैसा अभ्यास सा हो गया था । वे जब अकेले में ऐसे में बैठते तो आस पास की घास को नोंच नोंचकर इधर उधर फेंकते । मानों यह घास सम्पादकों के भावों पर अर्जित हो रही हो ।

विशेष -

1. यह ध्यातव्य है कि निराला को अपनी मुक्त छन्दीय रचनाओं के प्रकाशन के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा । अधिकाशत: सम्पादकगण उनकी मुक्त छन्द में रची रचनाओं को लौटा देते थे । ऐसी मन स्थिति में वे सम्पादकों के बारे में सोचते । एक प्रकार से व्यंग्य है कि उन्हें उनकी योग्यता व गुणो पर सन्देह होता, वे आश्चर्य करते ।
2. कवि द्वारा रचनाओं के लौटाने पर घास नोंचकर इतस्तत: फेंकना पूर्णत: मनोवैज्ञानिक क्रिया पर आधारित है ।
3. भाषा शैली भाव, विचार एवं प्रसगानुकूल है । प्रवाहात्मकता का गुण है ।
4. कवि जीवन के अनुभव बड़े ही बेबाकी से प्रस्तुत हुए है ।

5.5.4 धीरे धीरे बढ़ा चरण..... दिक् प्रसार ।

धीरे धीरे फिर बढ़ा चरण
बाल्य की केलियों का प्रांगण
कर पार, कुंज - तारूण्य सुघर
आई, लावण्य भार थर थर
काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर
नैश स्वप्न ज्यों तू मन्द मन्द
फूटी ऊषा जागरण -छन्द
काँपी भर निज आलोक - भार
काँपा वन, काँपा दिक्- प्रसार ।

ससन्दर्भ व्याख्या

उपर्युक्त काव्यावतरण निराला कृत 'सरोज स्मृति' नामक दीर्घ कविता से उद्धृत है । इस अंश में कविवर निराला बाल्यावस्था की सरोज को स्मृत करने के क्रम में अब यहाँ उसकी तरूणाई/ किशोरावस्था के शारीरिक सौष्ठव/ सौन्दर्य का मर्यादित व संतुलित अंकन कर रहे है । आलोचको ने इस भाग को निराला के लिए अग्नि परीक्षा माना है, क्योंकि पुत्री के सौन्दर्य का जो अंकन है । और इसमें निराला को निःसन्देह सफलता मिली है ।

व्याख्या

निराला कहते है कि सरोज बाल्यावस्था में नानी के घर क्रीडाएँ करती हुई धीर धीरे बड़ी हुई और तरूणावस्था में पहुँची। अब उसे शरीर पर थर थर लावण्य (सौन्दर्य) अवतरित हुआ तो उसकी कोमल काया उसके भार से जैसे काँप उठी । यह ठीक वैसा था जैसे किसी नई वीणा पर मस्ती भरा मालकोश राग बजाया गया हो जो, उसके तारों को कँपाता है ।

सरोज इस अवस्था में आकर बड़े होना ठीक उसी प्रकार था जैसा रात्रि के स्वप्न के बाद प्रात: की ऊषा का आगमन होता है, जागरण होता है । यहाँ कवि पुन: इस बात को कहते है कि जिस तरह सरोज लावण्य से थर थर काँपी, ठीक उसी तरह ऊषा भी प्रात: काल के जागरण व आलोक के भार से काँप उठती है । सरोज के साथ लावण्य भार से आकाश, पृथ्वी, वृक्ष कलिकाएँ और किसलय पुंज सभी उसके परिचय से खिल उठे ।

विशेष -

1. उक्तांश की व्याख्या में नन्दकिशोर नवल कहते है कि यह सौन्दर्य जितना सूक्ष्म है उतना ही जटिल भी । बाल्यावस्था सपाट मैदान थी, जिससे क्रीड़ा की जाती है, तो तरूणावस्था हरा-भरा बाग, वृक्ष पर वासंती सुषमा की तरह सरोज पर तरूणावस्था का लावण्य अवतरित हुआ। नवल जी ने इस वर्णन को बिहारी के सोभा ही के भार से अधिक सूक्ष्म बताया है और कहा है कि बिहारी का वर्णन रीतिकाल अतिरेक से पूर्ण है तो निराला का छायावादी शैली का व अत्यन्त स्वाभाविक ।
2. उक्तावतरण से यह सुविदित होता है कि निराला जी को संगीतशास्त्र का सूक्ष्म व गहरा ज्ञान था इसीलिए मालकोश राग नई वीणा पर बजाने से कँपन होने की प्रक्रिया को किशोरवय के लावण्य से जोड़ा है । यदि हम निराला की जीवनी के बारे में जानें तो तथ्य प्रमाणित भी हो जाता है।
3. यहाँ 'लावण्य भार' - 'आलोक भार' और दिक् प्रसार का कँपन बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सरोज के सौन्दर्य को व्यापकता एवं प्रमाणिकता देते हैं ।
4. भाषा-शैली पूर्णत: छायावादी लाक्षणिकता, शब्द विधान व भाव सौन्दर्य से परिपूर्ण है ।

5.5.5 वे जो यमुना के से कछार ..... मुझकों नहीं चाह ।

'वे जो जमुना के से कछार
पद फटे विवाई के; आधार
खाये के मुख ज्यों, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर गंध
उन चरणों को मैं यथा अंध
कल घ्राण - प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजँ, ऐसी नहीं शक्ति
ऐसे शिव से गिरिजा - विवाह
करने नही मुझकों की चाह ।"

प्रसंग एवं संन्दर्भ

प्रस्तुत काव्य की पंक्तियाँ छायावाद के प्रमुख कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की लम्बी कविता 'सरोज स्मृति' से अवतरित है । प्रस्तुत रचना में निराला ने अपनी पुत्री सरोज के अल्पवय में बीमारी से निधन होने पर उसको याद करते हुए, उसके बचपन से लेकर 18 वर्ष तक की अवस्था तक शादी सम्पन्न होने के आदि के संस्मरणों को बहुत ही प्रभावी, सजीव व मार्मिक ढंग से संस्मरण रूप में प्रस्तुत किया है । इस अंश में सरोज के विवाह संबंधी प्रसंग का उल्लेख करते हुए कवि कहते है कि वे कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे, अत: बेटी के लिए भी उसी जाति में वर ढूँढना था, लेकिन, वे कनौजिए ब्रह्मणों को अपनी लड़की देना नहीं चाहते थे, क्योंकि वे निरालानुसार ब्राह्मण कुल के विनाशक एवं जिस पल पत्तल में खाएँ, उसी में छेद करने वाले थे ।

दूसरी ओर यह भी ध्यातव्य है कि निराला में अन्तर्जातीय विवाह करने का साहस नहीं था। फिर एक बात यह है कि भारतीय विवाह परम्परानुसार विवाह समय काव्य का पिता वर का पद पूजन करता है; यह निराला जैसे 'निराले' महामानव के लिए संभव न था । इसी पद पूजन के संदर्भ में निराला कल्पना में एक कान्य कुब्ज कुल कुलांगार का एक जोड़ी पाँव आ जाता है, उसी का चित्र इस अंश में खीचा गया है -

व्याख्या -

कवि काव्य कुब्ज ब्राह्मण के पाँव की कल्पना करते हैं चित्र खींचते हुए कहते है कि उनके पाँव बिवाई सें फटे है, ठीक वैसे ही जैसे गर्मी में यमुना नदी के कछार फटते हैं । इतना ही नहीं उनके पैर ऐसे हैं जैसे कर्ज खाए हुए बेबस दीनताग्रस्त व्यक्तियों के मुंह होते है । वे पैर ऐसे है जैसे अभी अभी तेल पिये हुए चमरौधे (चमड़े के हस्तनिर्मित जूते) से बाहर निकले हैं इतना ही नहीं वे सिमटे हुए भी और तेज दुर्गंध से प्राण घोटने वाले हैं ।

निराला अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के अनुकूल यहाँ कहते हैं कि जिस व्यक्ति की घ्राण और समस्त संवेदनाएँ समाप्त हो गई है, जो अंधा है, वही ऐसे पाँवों को पूज सकता है । उनमें वैसा करने का माद्दा (शक्ति) नहीं है । वे ऐसे शिव से अपनी सरोज का गिरिजा विवाह नहीं करना चाहते ।

विशेष -

1. यहाँ स्पष्ट है कि निराला स्वयं कान्यकुब्ज होते हुए भी अन्य कान्यकुब्ज ब्राह्मणों को पसन्द नहीं करते है; उनके प्रति जो उनके सच्चे मनोभाव हैं, उन्हें ईमानदारी व बेवाकी से प्रस्तुत किया गया है । कान्यकुब्जों का जीवन स्तर भी पता लगता है ।
2. यहाँ चाक्षुष, घ्राण एवं स्पर्श तीनों बिम्बो का कल्पना शीलता व चित्रात्मकता से सुष्ठु एवं प्रभावी अंकन हुआ है ।
3. अन्तिम दो पंक्तियों में 'शिव' 'गिरिजा' के प्रतीक लेकर जो गहन व्यंजना पारम्परिक मिथक लेकर हुई है वह अत्यन्त प्रभूविष्णु है । 'शिव' शब्द का प्रयोग व्यजंन रूप में हुआ है । इस अंश पर नन्दकिशोर नवल लिखते है कि इन दोनों पंक्तियों के सौन्दर्य का विश्लेषण इनकी सादगी के कारण प्राय: असंभव है, बस इनमे व्यक्त अथाह स्नेह और अथाह पीड़ा की ओर संकेत मात्र किया जा सकता है ।

5.5.6 तुम करों ब्याह,..... कलश का जल ।

"तुम करों ब्याह, तोड़ता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम
लग्न के; पढ़ूंगा स्वयं के मंत्र
यदि पंडितजी होंगे स्वतंत्र ।
जो कुछ मेरे, वह कन्या का,
निश्चिय समझो, कुल धन्या का । '
आये पंडितजी, प्रजावर्ग
आमंत्रित साहित्यिक, ससर्ग
देखा विवाह आमूल नवल
तुझ पर शुभ पड़ा कलश का जल ।"

ससन्दर्भ व्याख्या

उपर्युक्त काव्यावतरण निराला द्वारा विरचित लम्बी कविता 'सरोज स्मृति' से अवतरित है। सामाजिक रीति - रिवाजों की रूढ़ व बासी परम्पराओं को न मानने वाले -स्वभाव से अक्खड़ निराला अपनी सरोज का ब्याह अपनी जाति से बिल्कुल हटकर करते हैं । शिवशेखर द्विवेद्वी नामक इस युवक से हुए लीक से अलग ब्याह का अंकन ही इस पद्यांश में हुआ है -

व्याख्या -

परम्परा से हटकर, रीति-रिवाजों को तजकर विवाह करने की वजह से उस समय पंडितजी भी तैयार नहीं हुए। उसी प्रसंग में कविवर निराला पिता के रूप में कहते है कि शिवशेखर तुम मेरी बेटी सरोज से ब्याह करो, ब्याह के सारे नियमों को तोड़ रहा हूँ । यह विवाह बिना लग्न (मुहूर्त) के होगा । यह सामाजिक योग (ब्याह) नये सिरे से होगा । यदि पण्डितगण विवाह के लिए तैयार न होंगे तो मैं स्वयं ब्याह के मंत्र पढ़कर बेटी की शादी करूँगा ब्याह के समस्त कर्मकाण्ड वे अपने ढंग से पूरे करेंगे । इस प्रकार से निराला शिवशेखर को ब्याह के लिए समझा रहे हैं या मानसिक तौर पर तैयार कर रहे हैं । वे यह भी कहते है कि यद्यपि मेरे पास बेटी के दहेज में देने को कुछ नहीं हैं फिर भी जो कुछ उनके पास है, वे यह समझ ले कि वह उनकी बेटी का ही है ।

ब्याह की शुभ घड़ी भी आई है, पण्डित जी भी तैयार हुए, उनके निकटस्थ लोग उपस्थित हुए जिनमें साहित्यिक मण्डली के मित्रगण भी उपस्थित हुए, जिनमें उनके पड़ोसी पं. नंददुलारे वाजपेयी भी शामिल थे । इन सब लोगों ने पूरी तरह अपने ढंग का नया विवाह संस्कार देखा और इस तरह सरोज पर कलश का पवित्र जल गिरा, अर्थात उसकी शादी हुई

विशेष -

1. यह उल्लेख्य है कि स्वभाव, सिद्धान्त, रीति-नीति, काव्य सिद्धान्त आदि के अनूठेपन, निरालेपन के कारण ही निराला 'निराला' कहलाए ।
2. यहाँ स्पष्ट होता है कि निराला पर स्वामी विवेकानन्द के दर्शन का प्रभाव था इसलिए वे शादी ब्याह की रूढ़ परम्पराओं में यकीन न करते थे ।

3. यह भी ध्यातव्य है कि अत्यधिक गरीबी व अभावग्रस्तता के कारण निराला बारात व शादी के होने वाले झमेलों (खर्चो) से पूरी तरह बचना चाहते थे, इसलिए इस तरह का ब्याह किया ।
4. एक तथ्य यह भी महत्वपूर्ण है कि शिवशेखर द्विवेद्वी से निराला का परिचय अन्य परिचित युवा मित्र दयाशंकर वाजपेयी द्वारा हुआ था । यद्यपि वह कनोजिया ब्राहमण था लेकिन निराला का युवा मित्र व उन्हीं के समतुल्य विचारों वाला ।
5. भाव भाषा प्रवाही प्रसंगानुकूल, प्रवाहात्मक एवं प्रभावात्मक है । अभिधा शक्ति से प्रसादात्मकता का गुण प्रवहमान है । कथात्मकता का आभास भी होता है । लेकिन फिर भी काव्यात्मा मौजूद हैं ।

5.5.7 माँ की कुल शिक्षा मैंने दी ..... महाभरण ।

'माँ की कुल शिक्षा मैंने दी
पुष्प सेज तेरी स्वयं रची,
सोचा मन में, ' दह शकुन्तला,
पर पाठ अन्य यह, अन्य कला । '
कुछ दिन रह गह तू फिर समोद
बैठी नानी की स्नेह गोद
मामा मामी का रहा प्यार
भर जलद धरा को ज्यों अपार"

संदर्भ एवं प्रसंग

प्रस्तुत काव्यावतरण प्रसिद्ध छायावादी कवि महाप्राण निराला जी शोक गीतात्मक संस्मरणपरक लम्बी कविता की रचना 'सरोज स्मृति' के अन्तिम भाग से अवतरित है । विवाह के प्रसंग में सरोज को याद करते हुए कविवर निराला कहते है कि माँ के अभाव से ब्याह के अवसर पर बेटी को दी जाने वाली शिक्षा भी मैंने तुम्हे स्वयं दीं ।

व्याख्या -

उक्तांश अत्यन्त मार्मिक एवं भावपूर्ण है । निराला कहते है कि उन्होंने बेटी को माँ द्वारा दी जाने वाली शिक्षा स्वयं दी । यहाँ एक तरह से पिता ने मातृत्व निभाकर मातृत्व व पितृत्व दोनों को सार्थक किया । वे कहते हैं कि ऋषि कण्व ने जिस तरह शकुन्तला की पुष्प सेज रची । लेकिन निराला यह कहते कहते अपने को तुरन्त अलग करते हुए यह भाव व्यंजित करते है कि कण्व का पाठ (कार्य) और कला (ढंग) वन्य और आर्ष (ऋषि संबंधी) है, पर यह एक निम्नमध्यवर्गीय अभावग्रस्त गृहस्थ पिता कार्य और ढंग है! अर्थात कण्व में और मुझमें फर्क है ।

दूसरे चरण में कवि कहता है कि शादी के कुछ दिनों बाद तक तुम आनन्द से अपने घर रही और फिर अपनी नानी की स्नेह गोद में आ बैठी । यहाँ निराला सरोज के लालन पालन की ओर; सुधियों की रील को उल्टा घुमाते हुए कहते हैं कि तेरी सँभाल मामा-मामी व नाना नानी का अपार प्यार ठीक उस तरह से था जैसे कि बादल ढेर सारी जल राशि धरा को सहज ही अर्पित करता है।

विशेष -

1. यह उल्लेखनीय है कि जल्द ही निराला की पत्नी मनोरमा के निधन के कारण निराला के पुत्र रामकृष्ण व (छोटी) सरोज नानी के घर मामा-मामी के स्नेह पूर्ण वातावरण में पले बढ़े । इसीलिए यहाँ कवि ने उस स्नेहमय वातावरण को कोमल, लालित्यपूर्ण व माधुर्यमयी भाषा में प्रस्तुत किया है ।
2. नन्दकिशोर नवल ने माँ की कुल शिक्षा निराला द्वारा देने पर लिखा है कि पितृत्व की चरम परिणति मातृत्व में होती है । निराला ने अपने जिस पितृत्व को पहले निरर्थक कहा है, उसकी सार्थकता इससे बढकर क्या होगी?
3. अवतरण की भाषा शैली प्रसंगानुकूल भावमयी, तत्सममयी एवं प्रभावी है । यहाँ घटनाओं के प्रसंगों को बड़ी ही चतुराई व सावधानी से मगर सफलता व प्रभावपूर्ण ढंग से ठीक उस तरह रहे हैं जैसे कि किसी श्रेष्ठ फिल्म का निर्माता - निदेशक 'पट' बदलता है ।

5.5.8 मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल. ..... मैं तेरा तर्पण ।

'मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल
दुःख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही
हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सफल
हों भ्रष्ट शीत के से शतदल!
कन्ये! गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण!

सन्दर्भ एवं प्रसंग

प्रस्तुत काव्यावतरण निराला द्वारा विचरित लम्बी कविता 'सरोज स्मृति' से लिया गया है। यह अंश कविता/ कृति का अंतिम अंश है । इसमें कवि और पिता निराला अपनी समग्र भावनाओ के ज्वार को समर्पित कर देते हैं । उनके कठोर व संघर्षपूर्ण जीवन की दास्तां व इस कृति की आत्मा, कवि की जीवन सच्चाई इस अंश में अवतरित हुई है । एक प्रकार से यह अंश रचना का सर्वाधिक मार्मिक एवं प्रभावी है । रचना व निराला हृदय का समस्त दुख, उनकी समस्त करूणा, पुत्री के प्रति समस्त स्नेह धार यहाँ निचुड़ जाती है ।

व्याख्या -

अपने को दुर्भाग्यशाली मानते हुए निराला कहते है कि तू मेरे एकाकी व नीरस जीवन की एकमात्र सहारा थी । तुम तो शादी के दो वर्ष बाद (विकल) बीमार हो गई । मैं क्या कहूँ जिसे मैने अब तक नहीं कहा जिस जीवन की कथा को मैं अकेला झेलता रहा, पूरी जिन्दगी ही दुखभरी रही है । कोई एक दो दुख की बात या घटना हो तो कहूँ ढेर सारी और अनन्त दुख की दास्ता को मैं क्या कहूँ! और आज तक मैंने कहा भी नहीं है । शायद कहने से कोई लाभ भी तो नहीं । आगे के

अंश में निराला ओर बुझे मन वाले हैं । वे अपने हालात के आगे टूट जाते हैं । अत: अत्यन्त दुःखी मन से कहते हैं कि मेरे जीवन के अब तक जितने भी संचित कर्म हैं उन पर वज्रपात हो, वे सब बेकार व नष्ट हों, यदि इस पथ पर धर्म मेरे साथ है; अर्थात यदि मैं काव्य रचना (कवि कर्म) के संसार में ऐसे ही लगातार सृजनरत रहता हूँ तो मेरी जितनी भी रचनाएँ हैं वे सब शीत ऋतु के कमलदल की तरह भ्रष्ट हो जाएँ; नष्ट हो जाएँ । तुम्हारी इस अकाल भीषण मृत्यु पर मैं अपना समस्त काव्य कर्म अर्पित कर, हे कन्ये! तुम्हारा तर्पण करता हूँ तुम्हें श्रद्धान्जलि अर्पित करता हूँ ।

उक्त अंश की व्याख्या में निराला साहित्य के अधिकृत अध्येता डॉ. रामविलास शर्मा कहते है कि - यहाँ निराला का एक ओर भाग्य के अंक खण्डित करने का इरादा है, भविष्य के प्रति अशंक दृष्टि है; दूसरी ओर कविता के अंत में, भाग्य द्वारा स्वयं खण्डित होने, अपनी अशंक दृष्टि की तुलना में अदृष्ट के अधिक शक्तिशाली होने का चित्र है ।

विशेष -

1. इस मत में दो राय नहीं कि दुःख ही जीवन की कथा रही.....अंश सम्पूर्ण कविता की केन्द्रीय पंक्तियाँ है; निराला के समस्त जीवन को रिफलेक्ट करने वाली दर्द भरी मगर यथार्थ से सम्पृक्त पंक्तियाँ है । निराला के जीवन के सारे दुख, समस्त करूणा, सारे संघर्ष यहाँ आकर पूंजीभूत होकर पर्वत की तरह कठोर निराला की छाती को फोड़कर ज्वालामुखी के विस्फोट की तरह व्यक्त होते हैं ।
2. इस अवतरण के उत्तरार्द्ध की व्याख्या डॉ. नन्दकिशोर नवल बिल्कुल भिन्न तरह से करते हैं । उनका कहना है कि दुख निराला का अपना नहीं अपितु सरोज की जिन्दगी का है । वे आगे कहते हैं- "कर्मश्ग़ील मनुष्य और नियति का कभी न समाप्त होने वाला संघर्ष । मनुष्यकर्म द्वारा इस नियति को बलपूर्वक मोड़कर उसे अपने अनुकूल बनाना चाहता है, किन्तु मुड़ने के बदले नियति खुद उसे भीतर से तोड़ देती है । इस अंश पर विशेष चर्चा व विश्लेषण आगामी इकाई में यथावसर करेंगे ।
3. दूसरी पंक्ति में आया 'विकल' शब्द नंदकिशोर जी के अनुसार अवधी का है । जिसका अर्थ व्याकुल न होकर बेकल और बीमार से है । यहाँ प्रसंगानुसार सरोज के संदर्भ मे यह अर्थ फिट भी बैठता है ।
4. ध्वनि साम्य के साथ कविताश की भाषा तत्समनिष्ठ प्रभावी एवं सरस है । निराला की विशिष्ट शब्दावली उन्हें अन्य कवियों से इतर करके विशिष्ट बनाती है । यह अंश स्पष्ट है ।

5.5 शब्दावली

उनविश	–	उन्नीस
दृक्पात	–	दृष्टिपात, नजर डालना
तनये	–	पुत्री
शुचितर	–	पवित्रतम
अष्टादशाध्याय	–	अठारह अध्याय, 18 वर्ष की आयु
तर्राण	–	नाव

ज्योति शरण तरण	–	अनन्त ज्योति (ब्रह्म प्रकाश) की शरण में उद्धार
शत-शत-जर्जर	–	सैकड़ों तरह से पीड़ित भ्रष्ट
दुस्तर तम	–	दुर्गम अंधकार
स्तब्धान्धकार	–	चकितया ठहरा देने वाला स्तब्भ करने वाला अंधकार
अर्थागमोपाथ	–	अर्थ/ धन पैदा करने के तरीके
स्वार्थ समर	–	हित की लड़ाई
चीनाशकु	–	चीन से आयातित विशेष रेशमी वस्त्र
दधिमुख	–	दूध-दही मक्खन से भरा मुख
क्षीण	–	गरीब, विपन्न, कमजोर
मुखचित	–	अपने जैसे चेहरे व चरित्र वाला
भास्वर	–	आलोकित, दीप्त
शर क्षेप	–	बाण की नोंक /फलक, प्रहार
चीत्कारोत्कल	–	उत्कल या प्रखर चीत्काल
विमला	–	सरस्वती
उपार्जनक	–	माना /कमाई
गौरव	–	भारबोझ ,
अजिर	–	अभावग्रस्त(गरीब का घर)
निशिवासर	–	रातदिन-
मोद	–	प्रसन्नता
उत्पल दृग	–	कमल दल(कमाल रूपी नेत्र)
सैकत विहार	–	रेल का घूमना
गहकर	–	पकड़कर
चपला	–	चंचला चतुर ,
हासोच्छल	–	मुस्कान से खिला हुआ
ऊर्मि धवल	–	पवित्र स्वच्छ लहरे
लखती	–	देखती
निरानन्द	–	बिना रुचि व आनंद के
सत्वर	–	फुर्ती सेतुरंत ,
दिशाकाश	–	दिशाएँ व आकाश
सुरूप	–	सर्दी की खिली हुई, मनभाति सुंदर धूप
दिक्	–	प्रसारजहां तक दिशाएँ फैली हैं अर्थात चारों और
किसलय दल	–	फूलों के समूह
भोगावाती	–	गंगा नदी

पिक	–	बालिकाकोयल की बेटी
धन्य धाम	–	अच्छा वर
शुचि वर	–	योग्य वर/ लड़का
धर्मोत्तर	–	श्रेष्ठ धर्म
सहोत्साह	–	उत्साह सहित
कुलीगार	–	कुल को जलाने वाली आग
सकेल	–	दोनों
चमरौधे	–	चमडे के जूते (हस्तनिर्मित मौजड़ी(
नैमित्तिक	–	निमित्त /नियति का क्रियाविधान
आमूल नवल	–	पूरी तरह नया
समोद	–	मोद या प्रसन्नता सहित
महामरण	–	महामृत्यु, विशिष्ट मृत्यु जिसमें आत्मा परम् ज्योति में लीन हो जाती हैं ।
शतदल	–	कमल दल
अर्पण	–	अर्पित करना, सौंपना
तर्पण	–	श्रद्धांजलि /तर्पण की क्रिया
वेकल	–	अवधी का शब्द, अर्थ-बीमार

5.5 सारांश

आपके एक ओर जहाँ सरोज स्मृति मुख्यांशों की व्याख्या समझी; वहीं दूसरी ओर रचना के केन्द्रीय भाव को भी समझा । 'सरोज स्मृति' की जो मूल संवेदना है, कविवर निराला के एक पिता के रूप में जो भाव अनुभव हैं उनसे तादात्म्य हुआ। निराला जी गहन करूणा, भावना, जीवन का सतत संघर्ष कठोर अनुभव व अविरल दुःख धार में भी आप चाहे अनचाहे डूबे । इस तरह रचना के मर्म को तो जाना ही, यह भी समझा कि किस तरह से निराला का जीवन बहुमुखसंघर्ष रहा । एक ओर व्यक्तिगत जीवन अभाव, दारिद्रय व विपन्नता में बीता वही, उनकी स्नेहधार मनोरमा भी बहुत जल्द छोड़ गई । इतना ही नहीं वे अपनी जो साहित्य साधना व मौलिक काव्य कर्म कर रहे थे; उसे साहित्यिक समाज पचा नहीं पा रहा था, उनके मुक्त छन्द के अविर्भाव का लोगों ने घोर विरोध किया और उसे रवड छन्द आदि कहकर मजाक बनाई । इसके अलावा सम्पादकगण उनकी रचनाओं को नहीं छापते थे । यह उनका जीवन था ।

'सरोज स्मृति' पढ्ने से पता लगता है निराला का एकाकी जीवन कितना आभावग्रस्त, नीरस, बेवस एवं विपन्नता युक्त था । आर्थिक अभाव इतने जबरदस्त थे कि वे ताउम्र बी.पी.एल. बने रहे । इस रचना से स्वयं स्पष्ट है कि बेटी की शादी वे परम्परित ढंग से इसीलिए नहीं करना चाहते थे कि उनके पास बारात को बुलाकर खिलाने (जिमाने नहीं) की शक्ति नहीं थी । यह भी स्पष्ट है कि वे विवेकानन्दी दर्शन से प्रभावित होने के कारण भाग्य पर नहीं कर्म पर अखण्ड विश्वास 'करते थे । बहुविध विरोधी परिस्थितियों के बावजूद हार मानना उनके जीवन सिद्धान्तों के खिलाफ था ।

काव्यरूप की दृष्टि से 'लम्बी कविता' विधान का सरोज स्मृति' न केवल हमें सरोज और निराला जीवन से परिचित करवाती है । इस रचना में जितना काव्यानन्द है, गहन करूण एवं वात्सल्य रस है, जो संघनित भावानुभूतियाँ है, जिन घटनाओं एवं तथ्यों की जीवन्त रिकॉर्डिग है वह इसे न केवल पठनीय एवं महत्वपूर्ण बनाती है अपितु विश्वसाहित्य में इसे अद्भुत विशिष्ट एवं महान भी घोषित करती हैं और सूर्यकान्त त्रिपाठी को 'निराला' बनाती है ।

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के व्यक्तित्व व कृतित्व पर एक लेख लिखिए ।
2. निम्न पदों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए ।
   (i) तब भी ..... यथाभ्यास से ले
   (ii) धीरे - धीरे फिर ..... दिक् प्रसार

5.8 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. रामविलास शर्मा, राग विराग, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999 ।
2. नंदकिशोर नवल, सरोज स्मृति: पुनरवलोकन, अनुपम प्रकाशन पटना, 1998 ।
3. डॉ. हरिचरण शर्मा, छायावाद के आधार स्तम्भ, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर 2001 ।
4. दूधनाथ सिंह, निराला; आत्महन्ता आस्था, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000 ।
5. परमानन्द श्रीवास्तव, निराला, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2006 ।

इकाई - 6

'सरोज स्मृति' कविता का अनुभूति व अभिव्यंजनात्मक पक्ष

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 'सरोज स्मृति' का अनुभूति पक्ष

- 6.2.1 सरोज स्मृति' का कथानक
- 6.2.2 'सरोज स्मृति' का जीवन चरित्र
- 6.2.3 दुख: ही निराला कथा
- 6.2.4 निराला और सामाजिकता
- 6.2.5 साहित्यिक समाज और निराला
- 6.2.6 निराला की विद्रोह धर्मिता
- 6.2.7 वात्सल्य, करूणा व नारीवादी दृष्टि

6.3 'सरोज स्मृति' का अभिव्यंजना पक्ष

- 6.3.1 काव्यरूप और सरोज स्मृति
- 6.3.2 छायावादी शिल्प सौष्ठव

6.4 'सरोज स्मृति' का महत्व

6.5 शब्दावली

6.6 सारांश

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप.

- सरोज के चरित्र से रूबरू हो सकेगे ।
- सरोज के चरित्रोद्घाटन से पूर्व आप रचना का कथानक जान पाएँगें ।
- निराला के व्यापक पीडामय जीवन को समझ सकेंगे ।
- निराला के बहुमुखी संघर्ष व दुख के स्वरूप को कारण सहित जान सकेंगे ।
- कविवर निराला के अनोखे अन्दाज और अपनी शैली निवेश के कारण हुई उनकी विद्रोह धर्मिता से रूबरू हो सकेंगे ।
- निराला को पुत्री के प्रति जो भावोदेक हुआ है, जो करूणा व वात्यल्य की सरिता प्रवाहित हुई है उसमें आप भी डुबकी लगा सकेंगे ।
- अभिव्यजंना पक्ष के अन्तर्गत रचना के काव्यरूप की पड़ताल कर उसकी भाषा, शैली, उपमान, प्रतीक व बिम्ब आदि से व्युत्पन्न कलात्मक सौन्दर्य का आनन्द उठा सकेंगे ।

6.1 प्रस्तावना

"वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान
उमड़कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान"

काव्य सृजन एवं प्रस्फुटन के संबंध में पन्त द्वारा कही उक्त पंक्तियाँ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की आलोच्य कृति सरोज स्मृति पर शत प्रतिशत फिट बैठती है । यह अनुभूत सत्य है कि हृदय के भीतर जब भावावेग प्रखर होकर आलोकित होते हैं तभी उनका जार प्रच्छन्न गति से अभिव्यक्त होने के लिए व्याकुल होता है, तभी सहृदयी रचनाकार किसी कृति को जन्म देता है । प्यारी बेटी के 18 वर्ष की उम्र में ही, वह भी अर्थाभाव से बीमारी का सम्यक् इलाज न करा पाने की संघन पीड़ा किस जनक को व्याकुल न करेगी । सरोज के निधन पर निराला की संघीभूत पीडा स्मृतियां बनकर, जीवन की कसक व आह! के रूप में 'सरोज स्मृति' में मूर्त हुई हैं । प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरान्त आप - 'सरोज स्मृति' काव्य की मूल संवेदना से परिचित तो होंगे ही साथ ही उसके भीतर जो भाव साघन्य है, जो निराला का जीवन संघर्ष और तद्जन्य चेतना है उसकी पड़ताल भी कर सकेंगे । हम पूर्व इकाई में भी कह चुके है कि सरोज स्मृति रचना के केन्द्र में निम्नोक्त पंक्तियाँ

"दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कहीं ।"

6.2 'सरोज स्मृति' का अनुभूति पक्ष

आलोच्य कृति सरोज स्मृति एक प्रकार से निराला की जीवनीपरक आत्मचरित्रात्मक मार्मिक रचना है । इसमें तो कवि की पुत्री के निधन एवं तद्जन्य मन: स्थिति के संघन मानसिक संघात की अनुभूति को अभिव्यक्त करने को मचले है । आइए इन्हें विविध बिन्दुओं के माध्यम से विवेचित विश्लेषित करें जिससे रचना का रूप विधान स्पष्टतर हो सके । कवि व कविता की अनुभूति के निम्नांकित पक्षों पर विचार कर रहे है :-

6.2.1 'सरोज स्मृति' का कथानक

दरअसल यह लम्बी कविता निराला की अन्य प्रबन्धात्मक रचनाओं यथा तुलसीदास, राम की शक्तिपूजा, शिवाजी का पत्र आदि से इतर है । यहाँ उस रूप में घटना या कथा विकास नहीं है जिस तरह से प्रबन्धात्मक रचनाओं में होता है और निराला की अन्य रचनाओं में हुआ है । इसमें तो विषाद, दुख, वियोग, एवं पुत्री के प्रति वात्सल्य व करूणा की धारा से जो अभिषेक हुआ है, उसमें कवि जीवन के विविध पुष्प, फल आदि पूजा के उपकरण माँ सरस्वती की पूजा में अर्पित हुए हैं । यहाँ कवि की स्मृति में जो और जैसी घटनाएँ जिस क्रम में आ गई उसी में प्रस्तुत हुई है । हाँ आरम्भ और अन्त सरोज से ही हुआ है । फिर भी जो घटनाएँ या वृतान्त रचना में प्रस्तुत हुए है ।

उन्हें यहाँ निम्नोक्त रूप में प्रस्तुत कर रहे है -

1. उन्नीसवें वर्ष के आरंभ में सरोज की लम्बी बीमारी के कारण मृत्यु
2. कवि सरोज के देह त्याग को मृत्यु न मानकर ब्रह्म ज्योति में लीन होकर मुक्ति के रूप में मानता है ।

3. निरर्थक एवं असमर्थपिता - रचना से यह स्पष्ट होता है कि निराला अपने को असमर्थ व निरर्थक पिता कहते है । उनका मानना है कि ऐसा इसलिए कि वे अपनी पुत्री को न अच्छा पहना सके न ही खिला सके । इस बात की कसक व पीड़ा उनके हृदय पटल पर है:-

'धन्य मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका । '

4. असमर्थता का कारण अर्थोपाय न होना है । इसका भी कारण वे रचना में स्पष्ट करते है कि मैं किसी गरीब का शोषण न कर सका, मैं स्वयं गरीब था अत: विपन्नों से कैसे अर्जित करता।
5. गद्य-पद्य रचना- निराला कहते है कि साहित्य में मैने सभी कुछ रचकर हिन्दी को उपहार दिया है । यदि मैं अभावग्रस्त रहा हूँ तो यह मेरी हार नही है । मैनें साहित्य सेवा की है जो लोकोत्तर आनन्द की उपलब्धि है ।
6. एक साथ सैकडो विपदाएँ आने पर भी वे टूटे-झुके-हारे नहीं ।
7. आगे भी वे सरस्वती कृपा से श्रेष्ठ सृजन कर सकेगें ।
8. सवा साल की सरोज को छोडकर माँ के चले जाने से ननिहाल में भाई बहन का स्नेह से नानी मामा-मामी द्वारा पोषण हुआ । भाई-बहन सहज चापल्यवश खेलते झगड़ते ।
9. मुक्त छन्द में रचनाएँ करते रहने वाले निराला की रचनाओं में तद्युगीन सम्पादकगण कोई रूचि न रखते थे और तुरन्त लौटा देते थे ।
10. सरोज को ननिहाल में छोड़ने के दो वर्ष बाद कवि स्वयं जाते हैं और ज्योतिषियों की दूसरे विवाह संबंधी घोषणा को खण्डित करने हेतु अपनी कुण्डली को सरोज के हाथो फड़वा देते हैं, सास का बहुत आग्रह व दबाव होने पर भी उन्होने दूसरा ब्याह नही किया ।
11. सरोज जब किशोरवय में पहुँची तो न केवल अद्भूत लावण्य भार से भरी थी अपितु उसमें जन्मजात संगीत प्रतिभा भी थी अत: वह अच्छी गायिका थी ।
12. एक दिन सासू ने निराला से कहा कि अब और हम नहीं पाल सकते । अच्छा सा वर देखकर इसकी शादी करो । हमसे जो मदद होगी उत्साह से करेंगे । फिर वे भिक्षुक की तरह सरोज कनक को अपने घर ले आए ।
13. ब्याह के विचार पर स्वजाति कान्यकुब्ज का विचार आते ही वे विचलित हो उठते है और लगता है कि वे सरोज को सुख न दे सकेंगे, अत: परम्परा को तोडते हुए अन्तर्जातीय विवाह का मानस बनाते है । एक परिचित युवा मित्र से कहते है कि वे परम्परित ब्याह करने में अक्षम है अत: बिना विधान-बारति के ही ब्याह होगा, भले ही मंत्र भी मैं ही पढ़ का । मेरे पास देने को कुछ नहीं है पर जो कुछ भी है वह सरोज का ही समझो । इस तरह सीमित परिचित लोगों की उपस्थिति में ब्याह होता है ।
14. शादी के समय सरोज अत्यन्त सरोज सजी-धनी एवं सुन्दर लगती है । उसकी पुष्प सेज भी स्वयं निराला ऋषि कण्व की तरह रचते हैं । विवाहोपरान्त वह कुछ समय ससुराल रही और फिर नानी के, वहाँ वह बीमार रही और अन्त में जिस नानी की गोद में पली-बढी वहीं दम तोड़ा ।

दुख ही निराला जीवन की कथा है, इसे मै क्या कहूँ । मेरे जितने भी कर्म है वे सब ग्रस्त है और मैं अर्जित कर्मो से तेरा तर्पण करता हूं ।

आलोच्य रचना में आए उक्त घटना क्रम में स्पष्ट है कि इसमें सिर्फ सरोज का अंकन न होकर स्वयं कवि का जीवन चरित और जीवन के संस्मरण सुख-दुख अभिव्यक्त हुए है ।

6.2.2 सरोज का जीवन चरित्र

'सरोज स्मृति के केन्द्र में निराला जी की पुत्री सरोज ही कथा के केन्द्र में है । उसी की स्मृतियों की मधुर-तिक्त प्रेरणाओं के दबाव से रचना सृजित होकर इस रूप में प्रस्तुत हुई, यद्यपि प्रसंगवश इसमें अन्य घटना - प्रसंग भी उपस्थित हुए है । सरोज के जीवन चरित्र को हम उसके लालन-पोषण, बाल्यकाल, व्यक्तित्व वैशिष्ट्य, विवाह व बीमारी के रूप में प्रस्तुत कर समझा जा सकता है ।

क) लालन-पालन

यह रचना से स्पष्ट होता है कि सरोज की माँ मनोहरा सरोज को सवा साल की छोडकर स्वर्ग सिधार गई थी । उसका पालन-पोषण ननिहाल में नानी व मामा-मामी द्वारा अत्यन्त स्नेह पूर्ण परिवेश में हुआ और जीवनान्त भी वहीं हुआ । बचपन वहीं बीता ।

ख) बाल्यकाल

सवा साल तक मातृ छाया में रहने व तदुपरान्त माँ का साया हटने पर सरोज नानी के घर रहकर बचपन के सारे कौतुक -विनोद करती है । वहाँ वह अपने भाई के साथ रहकर अपना सहज जीवन जीती है । भाई उसे डाँटता, चपत लगाता तो पुचकारता, मनाता भी । देखिए -

तू नानी की गोद जा पली
सब किए वहीं कौतुक विनोद
X X X
खाई भाई की मार, विकल
राई उत्पल-दल-दृग-छलछल
चुमकारा सिर उसने निहार
और फिर
गंगा तट-सैकत बिहार
करने को लेकर साथ चला ।

ग) व्यक्तित्व वैशिष्ट्य

'सरोज स्मृति' में हुए अंकन के अनुसार सरोज बाल्यकाल से ही चपला है । उसमें वे सब सहज स्वाभाविक गुण हैं जो बचपन में बालिका में होते है । वह सब तरह से योग्य और अच्छा खाने-पहनने की अधिकारिणी है । इसीलिए निराला को इस बात का पश्चाताप, दुख व ग्लानि भी होती है कि वे उसे अच्छा खिला-पहना न सका वह प्रतिभाशालिनी मेधावी व सब तरह कुशल निपुण भी है । उसका आन्तरिक व्यक्तित्व या चरित्र भी उज्ज्वल, पवित्र व साहित्य प्रकृति का है । इसीलिए कवि बार-बार शुचिते, धन्ये,गीते, तनये आदि उत्कृष्ट संबोधन प्रयुक्त करते है । देखिए -

'शुचिते, पहनाकर चीनांशुक
रख सका न तुझे अत: दधिमुख

इतना ही नहीं सरोज बचपन से ही जन्मते ही अच्छी संगीत का ज्ञान रखने वाली है । बिना किसी शिक्षा प्रशिक्षण के वह बहुत अच्छा गाती भी है -

बन जन्मसिद्ध गायिका, तन्वि

X X X

शिक्षा के बिना बना वह स्वर

है सुना न अब तक पृथ्वी पर ।

जहाँ तक शारीरिक सौष्ठव व सौन्दर्य की बात है, सरोज अनुपम सुन्दरी भी है । जब वह बाल्यावस्था से किशोरावस्था में प्रवेश करती है तो उसके लावण्य (सौन्दर्य) भार में नभ, पृथ्वी, द्रुम, कलि, किसलय दल भी परिचय पाकर खिल उठते है ।

विवाह के समय भी उसका रूप अत्यन्त खिला हुआ व आर्कषक लग रहा था । निराला लिखते है -

डर में भर झूली छवि सुन्दर

प्रिय की अशब्द श्रृंगार - मुखर

X X X

नित नयनों से आलोक उतर

काँपा अधरो पर थर-थर -थर

स्पष्ट है कि सरोज बचपन से ही चंचल, मुखर, सुन्दर, मेघावी व आकर्षक व्यक्तिव की धनी थी । गायन की प्रतिभा मानो कुदरत ने माँ से बढ़कर दी ।

6.2.3 दुख ही निराला कथा

सरोज स्मृति' निराला का शोक गीत, करूणा गीत, रूदन गीत और दुख: गीत है । इसमें मानव निराला जीवन में समस्त दुनियाँ के दुख पूंजीभूत होकर उमड़े है । बचपन से ही निराला अभावग्रस्ता, मातृ स्नेह से वंचित पीडित एवं त्रस्त है । आद्यन्त दुखों का अविचल पर्वत टलने का नाम नहीं लेता है यहीं कारण है कि पिराट व्यक्तित्व के धनी, कठोर व संघर्षशील निराला करूणा आप्लावित रूदन भाव से कहने को विवश हैं -

'दुख की जीवन की कथा रही

क्या कहूँ आज जो नही कहीं'

प्रसिद्ध आलोचक नन्दकिशोर नवल यहाँ निराला की जीवन कथा को दुखपूर्ण न मानकर सरोज का जीवन दुखमय मानते है । उनका तर्क है कि- "निराला तो अपने दुख की कथा अपनी कविताओं और अपनी गद्य-रचनाओं में लगातार कहते आ रहे थे । ..... उन्होने इस कविता के पहले मुँह नही खोला था तो सरोज की बीमारी के बारे में..... । "

यदि यहाँ निराला के स्थान पर सरोज की दुख कथा मान भी ले तो अन्यत्र कविता में अनेक प्रसंगों में कवि ने अपने जीवन को अभावग्रस्त, विषादग्रस्त अकिंचन व पीडित कहा है । कवि अपने बारे में, दुखी जीवन के बारे में इन पंक्तियों में हृदय के करूणा एवं विवश भाव से रूदन करता हुआ सा कहता है :-

– मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल
– मैं उपार्जन को अक्षम
– कवि जीवन में व्यर्थ भी व्यस्त
– आँसुओं सजल दृष्टि की छलक
– धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
– हारता रहा मैं स्वार्थ समर ।

अत: इन विविध उदाहरणों से एवं आलोच्य रचना के बाह्य परिवेश में झाँककर देखते है तो भी निराला का समस्त जीवन दुखमय गाथा ही रहा है । बचपन में ही माँ मर गई थी, अल्पवय में पत्नी छोडकर चल बसी और फिर 18 उम्र में बेटी चल बसी । शुरू से ही भीषण आर्थिक संकट रहा, इतना ही नहीं साहित्यिक समाज में भी वे समादृत न हुए और वहाँ भी मुक्त छन्द व रचनाओं को लेकर आलोचना व उपेक्षा का शिकार होना पड़ा, क्या यह दुख गाथा कम है । नियति इससे ज्यादा क्या दुखी कर सकती थी ।

6.2.4 निराला और सामाजिकता

मनुष्य मानव समाज मे जन्मता पलता बढता है । वह सामाजिक प्राणी है । समाज में रहकर सामाजिक रीति नीतियों परम्परा-रिवाजों व मान्यताओं को मानना होता है । जो व्यक्ति समाज के इन नियम-विधानों व उनके ढांचे के अनुसार चलता है । उसके स्वरूप को गतिमान बनाए रखता है, वह सामाजिक प्राणी एवं अच्छा इंसान माना जाता है । ये ही सामाजिकता के मानदण्ड है । उपर्युक्त सामाजिकता के मानदण्डों के परिप्रेक्ष्य में यदि हम सरोज स्मृति के निराला को परखते है तो यह स्पष्ट होगा कि वे इन पर खरे नहीं उतरते है । वे सामाजिक परम्परित विधानों का यथारूप अंधानुकरण नहीं करते या नहीं कर पाते । अत: वे इस दृष्टि से विद्रोही कहलायेंगे । हमें इस बात पर विचार करना है कि सरोज स्मृति में निराला किस तरह सामाजिक परम्पराओं को तोड़कर विद्रोही कहलाते है ।

उल्लेख है कि कनोजिये ब्राह्मणों की रीति-नीति से स्वयं निराला उसी जाति से संबंध रखते हुए भी विश्वास न कर उनकी पालना नहीं करते और उन्हें तोड देते है । विवाह संबंधी जो सामाजिक विधान है वे उन्हें तोड़ते है । बेटी के ब्याह में बारात नहीं बुलाते । इतना ही नहीं मन्त्रादि पढ्ने को जब पण्डित जी तैयार नहीं होते तो वे स्वयं यह करने को तत्पर होते है । देखिए -

तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम,
लग्न के, पढूंगा स्वयं मंत्र
यदि पण्डित जी होगें स्वतन्त्र
X X X
बारात बुला कर मिथ्या व्यय
मैं करूँ, नही ऐसा सुसमय

निराला परम्पराओं को तोड़ने से डरते नहीं है, कारण स्पष्ट है । पहला तो यह कि विवेकानन्द के दर्शन से प्रभावित होने के कारण वे कर्मकाण्डों में यकीन नहीं करते दूसरी बात यह कि वे नियम उनकी स्थिति, विचार एवं मानवतावादी सिद्धान्तों के खिलाफ पड़ते है । इसीलिये वे कहते हैं कि मैं परम्परित नियमों रिवाजों को ढोने में अक्षम हूं -

"..... पूर्ण रूप प्राचीन भार
ढोते मैं हूं अक्ष्म: निश्चय
आयेगी मुझमें नहीं विनय"

वे स्पष्ट कहते हे कि मेरे स्वभाव में उतनी विनम्रता नहीं जितनी इन परम्पराओं में अपेक्षित है । परम्परानुरूप ब्याह समय पर के पद पूजे जाते है, वे ऐसा कर पाने में, उसकी कल्पना मात्र से ही स्तिर उठते है और कहते कि मैं ऐसा कभी नहीं कर सकता । उनके विचार दृढ़ हैं । शायद इन्ही सब कारणों से निराला अक्खड़ कहलाए ।

निराला की सामाजिकता मानवतावादी संवेदनाओं से विनिर्मित है । इसीलिए वे भले ही गरीब, अभावग्रस्त एवं धनहीन रह सकते हैं पर सामाजिक परम्परानुसार धन नहीं कमा सकते । वे स्पष्ट कहते हैं कि "किसी कमजोर का अन्त छीनकर मैं कैसे धनार्जन कर सकता हूँ । गरीब की आँखो में झाँककर निराला ने जब - जब देखा उनमें स्वयं खुद की गरीबी का रूप प्रतिबिम्बित हो उठा । यह निराला की वास्तविक सामाजिकता सामन्तवादी सोच से बिल्कुल इतर है :-

"क्षीण का न छीना कभी अन्त
मैं लख न सका वे दृग विपन्न
अपने आँसुओं अत: बिम्बित
देखें है अपने ही मुख-चित '

जातिवादी वर्णव्यवस्था में निराला की आस्था कतई नहीं हैं । इसीलिए वे स्वयं कान्यकुब्ज होते हुए भी कान्यकुब्ज ब्राहमण समाज में व्याप्त बुराई की खुलकर आलोचना करते है और उनके विषय में कहने में तनिक भी नहीं झिझकते कि वे जिस पत्तल में खाते है, उसी में छेद करने वाले नमक हलाल है । यदि इनके हाथों में मैने अपनी सरोज का दान किया तो यह तय है कि वह वहां कभी सुख प्राप्त न करेगी । इस कुल/ समाज में तो विष-बेल ही फलेगी -

" ये कान्यकुब्ज - कुल कुलांगार
खाकर पत्तल में करे छेद
इनके कर कन्या, अर्थ खेद,
इस विषय बेलि में विष ही फल
यह दग्ध मरूस्थल, नहीं सुजल ।"

6.2.5 साहित्यक समाज और निराला

यह तथ्य भी विचार करने योग्य एवं उल्लेख है कि तद्युगीन साहित्यिक समाज में निराला जी की काव्य प्रतिभा की तुलना में प्रतिष्ठा न थी । उस समय के साहित्यकारों ने न तो निराला जी का सम्मान किया और न ही उनके काव्य सृजन को सराहा । निराला ने हिन्दी जगत् में मुक्त

छन्द का सर्वप्रथम आविर्भाव किया । लेकिन उनके द्वारा प्रवर्तित इस मुक्त छन्द की रबड़ छन्दा केंचुआ छन्द आदि कहकर मजाक बनाई गई, उपेक्षा की गई ।

निराला तद्युगीन पत्रिकाओं के सम्पादकों के पास अपनी रचनाओं को प्रकाशन हेतु भेजते थे, लेकिन वे शब्द बिना विचार किए ही बहाना बनाकर तुरन्त लौटा देते थे ।

निराला विरचित मुक्त छन्द की प्रथम कविता 'जुही की कली' 1916 को उस समय की ख्यातनाम पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी' ने छापने से मना कर दिया था । आगे चलकर द्विवेदी जी व निराला का विरोध खुलकर सामने आया । सरोज स्मृति में निराला ने अपनी उपर्युक्त पीड़ा का बयान बेबाकी से किया है । वे लिखते है -

" तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि - जीवन में व्यर्थ भी व्यस्त
लिखता अबाध गति मुक्त छन्द
पर सम्पादकगण निरानन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर
दे एक पंक्ति दो में उत्तर"

इसके बावजूद निराला हार नहीं मानते और कहते है कि श्रेष्ठ कलात्मक साहित्य क्षेत्र में उनकी देन महत्वपूर्ण है । हिन्दी साहित्य की उन्होने सेवा की है । अपने साहित्य के द्वारा उन्होने अपनी क्षमता का प्रमाण उपस्थित किया है । आगे वे अपने साहित्यिक शत्रुओं से कहते हैं कि अब तुम स्वयं देखना कि माँ भारती स्वयं अपने किरण में तूलिका लेकर मेरी काव्य छवि में कैसे रंग भरती है । तुम लोगो द्वारा लांछित मेरी काव्य छवि ही उन्हें (सरस्वती) वांछित है, वे स्नेह के रंग से अपनी कूची फेरती है :

यह हिन्दी का स्नेहोपहार
यह नहीं हार मेरी भास्वर
यह रत्नहार'लोकोत्तर वर
X X X
लेकर कर कल तूलिका कला
देखों क्या रंग भरती विमला
वांछित उस किस लांछित छवि पर
फेरती स्नेह की कूची भर ।

6.2.6 निराला की विद्रोह धर्मिता

निराला को 'महाप्राण' कहते है । मगर क्यों? इस बात पर भी प्रस्तुत रचनाधार पर विचार करना चाहिए । वस्तुत: महाप्राण उसे कहते है जिसमें महान् शक्ति है 'विराट स्ट्रेन्थ' और फौलादी ताकत है, केवल बाहरी या शरीरी नही भीतरी था । उन्होने वहीं दिया जो उन्हे रूचा और जो करना था । वे मर्जी के मालिक थे । जो कुछ जैसा कुछ उनका मस्तिष्क और मन कहता था वैसा ही करते थे । और यह स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति स्वतन्त्र और स्वच्छन्द होगा तो स्वाभाविक ही वह परिवेश के बन्धनों, नियमों व सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ेगा । निराला ने ऐसा ही किया । उन्होने

साहित्यिक ही नहीं सामाजिक और प्रशासकीय बन्धओं को भी तोड़ा । उन्हें अपनी सुविधा व मर्जी से किया । इसीलिए वे विद्रोही कहलाए । आइए सरोज स्मृति के द्वारा उनकी विद्रोह धर्मिता की पहचान करें ।

आलोच्य कृति सरोज स्मृति' में मुख्यत: निराला साहित्यिक, सामाजिक व ज्योतिष विषयक धारणाओं को तोडते है ।

साहित्यिक विद्रोह-

साहित्यिक समाज में निराला ने छन्द के बन्धनों को तोड़कर 'मुक्त छन्द' का आविर्भाव कर विद्रोह किया । निराला से पूर्व काव्य रचना छन्दों के नियमों में बंधकर होती थी । सर्वप्रथम निराला ने ही जुही की कली (1916) रचकर छन्द से मुक्त होकर 'मुक्त छन्द' में रचना की । यह साहित्यिक समाज को नहीं रूचा और उसने निराला की कई प्रकार से भर्त्सना की । उनकी मजाक छन्द को रबड़ छन्द, कंगारू छन्द आदि कहकर की । सम्पादकगण इसी वजह से उनकी रचनाओं को बिना प्रकाशित किए लोटा देते थे । जिस स्तर की प्रतिभा की रचनाएँ निराला की थी, उस स्तर का थोड़ा सम्मान भी निराला को न मिला । सरोज स्मृति में वे लिखते है :-

लिखता अबाध्य गतिमुक्त छन्द
पर सम्पादकगण निरानन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर
दे एक-पंक्ति -दो में उत्तर

सामाजिक विद्रोह -

यह सदियों से सामाजिक रीति व परम्परा है कि अपनी ही जाति में परम्परा व संस्कारों के अनुकूल जीवन के विविध कर्म एवं विवाहादि संस्कार सम्पन्न किए जाते है । व्यक्ति सामाजिक होता है अत: वह उससे बंधकर ही चाहे-अनचाहे कार्य करता है । लेकिन निराला अपनी परिस्थिति, मन:स्थिति व मर्जी के अनुरूप चलने वाले थे । उन्होने सामाजिक वर्जनाओं को भी तोड़ा । वे स्वयं कान्यकुन्ज ब्राहमण होते हुए भी अपनी पुत्री का विवाह इस जाति में करने को तैयार न होकर अन्तर्जातीय ब्याह करने को तत्पर होते हैं । वे इनके बारे में लिखते है :-

"ये कान्यकुब्ज -कुल कुलांगार
खाकर पत्तल में करें छेद
इनके कर कन्या, अर्थ खेद"

इतना ही नहीं सदियों से शादी में वर पक्ष के यहाँ से वधू के बारात आने की परम्परा है । शादी-फेरे आदि कार्य भी पण्डितगण करते है, लेकिन निराला ने इन बंधनों को भी तोड़ा । बारात नही बुलाई । पण्डित जी के राजी न होने पर स्वयं मंत्र पढ़ने को तैयार हुए, बाद में पण्डित राजी हो गए, वह अलग बात है । यह विद्रोह इन पंक्तियों में स्पष्ट है :-

बारात बुला कर मिथ्या व्यय
मैं करूँ, नही ऐसा सुसमय
तुम करो ब्याह, तोडता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम

लग्न के, पढ़ूँगा स्वयं मंत्र

समग्रत: स्पष्ट है कि निराला ने मुखर सामाजिक विद्रोह किया । इसी तरह ज्योतिष मान्यताओं को न मानकर भी ज्योतिष के खिलाफ विद्रोह किया । उनकी पहली पत्नी के जल्द की स्वर्ग सिधारने पर दूसरे ब्याह के खूब प्रस्ताव आए । उनकी कुण्डली में दो विवाह लिखे भी थे । लेकिन सरोज को सौतिया माँ की पीड़ा न सहनी पडे, इसलिए वे विवाह न करना चाहते थे । अत: कुण्डली को दो वर्ष की सरोज से फड़वा देते है :-

कुण्डली दिखा बोला - ए-लो '
आई तू दिया, कहा- "खेलो'
जिस और कुण्डली छिन्न -भिन्न

अत: इसमें कोई दो राय नहीं कि निराला अपनी मर्जी के मालिक एवं विद्रोही स्वभाव के इंसान थे ।

6.2.7 वात्सल्य, करूणा व नारीवादी दृष्टि

सरोज स्मृति' सामान्य लम्बीकविता या ढर्रे की आत्मचरितात्मक रचना नहीं है । यह एक वास्तविक व मार्मिक शोकगीत है । ऐसा शोक गीत जो पुत्री के निधन से उपजा है । पुत्री भी ऐसी जिस पर पिता की अगाध आसक्ति है, अनन्त वात्सल्य है । पिता भी ऐसा जो माँ भी साथ-साथ है, ऐसे में यदि निराला की करूणा भावना का अजस्र सोता फूट पडता है तो यह सहज ही था । इनके साथ-साथ आलोच्य रचना में निराला की नारी विषयक धारणा व दृष्टि भी प्रकारान्तर में, प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से उभरी है । इसका विवेचन किए बिना सरोज स्मृति' की संवेदना अधूरी रह जाएगी ।

निराला की प्रस्तुत रचना ही अपने आप में सरोज के प्रति उनकी करूणा व वात्सल्य भावना को प्रतिपादित करती है, इससे बडा प्रमाण और क्या चाहिए । लेकिन कृति की अन्तर्वस्तु में भी हम उनकी करूणा व वात्सल्य की जीवन्त भावना पाते है । कृति में सरोज के लिए कवि ने कतिपथ विशिष्ट संबोधनों का प्रयोग किया है, यथा तनये, गीत, शुचिते, धन्ये, तन्वि आदि । इनसे भी स्पष्ट होता है कि निराला अपनी पुत्री से कितना अगाध स्नेह करते थे उनके लिए वह कितनी प्यारी है । इससे भी बडी बात यह है कि निराला की पहली पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरे ब्याह के अनेक अच्छे ऑफर आए । उस जमाने में इण्टर पास सुन्दर लड़की का रिश्ता भी आया (जबकि निराला स्वयं इण्टर पास न थ) उनकी सास का भी दबाव, लेकिन इन सबके बावजूद यह निराला की सरोज के प्रति अगाध करूणा व वात्सल्य भावना का ही प्रमाण है कि वे दूसरी शादी को तैयार न हुए । सिर्फ इसलिए कि दूसरी माँ आएगी तो सरोज का क्या होगा । सरोज के लालन पालन, स्नेह, ममता व वात्सल्य में कोई कमी न आए, इसीलिए वे कुण्डली पड़वाकर शादी के प्रस्ताव को ठुकरा देते है । यह सरोज के प्रति अगाध, अजस्त्र करूणा व वात्सल्य भावना के कारण ही । रचना में आया स्पष्ट संकेत देखिए-

लड़की थी रूपवती, समुचित
आपको यही होगा कि कहें
हर तरह उन्हे, वह सुखी रहे
आयेंगे कल दृष्टि थी शिथिल

आई पुतली तू खिल खिलखिल
हँसती, मैं हु आ पुन: चेतन
सोचता हु आ विवाह - बंधन
कुण्डली दिखा बोला "ए-लो"

इस वात्सल्य व करूणा भावना के साथ निराला की नारीवादी दृष्टि में परिचित हो ले । साथियों रचना में निराला ने अपने को भाग्यहीन मानकर पुत्री को ही एक मात्र सम्बल कहा है । जबकि सरोज से बड़ा उनका बेटा रामकृष्ण भी मौजूद है तो भी वे यही कहते है :-

"मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल"

बेटी के उचित पालन पोषण स्नेहपूर्ण परिवेश के लिए ही वे दूसरी शादी नही करते । वात्सल्य के प्रमाण संबंध में सुधि समीक्षक नन्दकिशोर नवल लिखते है :- निराला सरोज को कभी परी कहते है, कभी पुतली या गुडिया जिससे उसके प्रति उनके अपार और अथाह वात्सल्य की सूचना मिलती है ।

निराला की नारी विषयक दृष्ठि के प्रसंग में नवल जी और भी लिखते है - "..............'निराला ने सरोज की बाल-क्रीडा का वर्णन किया है, जो संपूर्ण कविता में विलक्षण है । एक तो यह कि यह एक बालिका की क्रीड़ा का वर्णन है, बालक की क्रीड़ा का नहीं । निराला का पुत्री प्रेम गहराई में उनकी नवीन चेतना की देन है जो पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं करती और दोनो को समान महत्व देती है ।' आज से 70-75 बरस पहले एक लड़की या नारी के प्रति निराला की यह दृष्टि वास्तव में महत्वपूर्ण व प्रशंसनीय है ।

6.3 सरोज स्मृति का अभिव्यजंना पक्ष

भावों का कोई मतलब सर्जना के लिए नहीं रह जाता यदि वे आकार न ले । कवि के भाव शब्दों के सांचे सें निकलकर शिल्प की क्रिया से गुजरकर कविता की सुष्ठु आकृति लेते है । उच्च स्तरीय भाव भी महत्वहीन या उपेक्षित रह जाते है यदि उनकी सार्थक एवं प्रभावी अभिव्यक्ति न हो । अत: स्पष्ट ही है कि भाव और अभिव्यंजना के सम्यक् सम्मिलन से ही रचना की सार्थकता होती है । रचना में दोनो का ही महत्व होता है । और फिर छायावादी कविता तो आधुनिक काव्येतिहास में इसीलिए अमर, स्वीर्णिम एवं सर्वाधिक प्रशंसनीय रही है कि उसमें अनुभूति एवं अभिव्यक्ति, भाव एवं भाषा, वस्तु एवं शिल्प दोनो ही उत्कृष्ट रहे है । निराला काव्य भी इतर नही है ।

सरोज स्मृति कलात्मक रूप से भी उतनी ही समृद्ध एवं श्रेष्ठ रचना है जितनी की वर्ण्यवस्तु एवं भाव संवेदना की दृष्टि से । इस रचना के अभिव्यंजना पक्ष को निम्नोक्त बिन्दुओं में विश्लेषित कर समक्ष सकते है :-

6.3.1 काव्यरूप और सरोज स्मृति

आलोच्यकृति के अभिव्यंजना पक्ष के विचार पर सर्वप्रथम काव्यरूप आता है । इसमें कोई प्रतिवाद नहीं यह लम्बी कविता है जिसमें आत्मचरितात्मक कथा कविता रूप में कही गई है । लम्बी कविता घोषित करने के लिए संक्षेप में लम्बी कविता के स्वरूप की पड़ताल भी कर ली जाए तो यह अनुचित न होगा ।

शाब्दिक दृष्टि से लम्बी कविता वह है जो सामान्य या साधारण कविता से आकार में दीर्घ है । संवेदनाओं की निर्बाध अभिव्यक्ति, चेतना का मुक्त प्रवाह, यथार्थ का स्पष्ट बोध और उनके बीच से मूल्यों का निर्धारण लम्बी कविता की पहचान है । डॉ. नरेन्द्र मोहन के अनुसार - "बिम्ब और विचार का तनाव लम्बी कविता की संरचना का मूल आधार है" एक अन्य समीक्षक डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार - "दीर्घ कविता का मूल आधार बाल और आन्तरिक द्वन्द्वमय तनाव है. ।" लम्बी कविता के पांच मुख्य तत्व माने गये है - 1. प्रदीर्घता 2. नाटकीयता, 3. अन्विति 4. विचार तत्व 5. संघर्षपूर्ण तनाव ।

लम्बी कविता के उक्त स्वरूप, परिभाषीकरण व तात्विक परिचयोपरान्त यह सहज ही कहा जा सकता है कि सरोज स्मृति उक्त सभी दृष्टियों से फिट बैठती है । हाँ, इसमें विचार तत्व के अतिरिक्त भावेन्द्रिक भी है जो उसे और भी प्रभावी बनाता है । आलोचक परमानन्द श्रीवास्तव इस विषय में लिखते हैं - स्मृति में सौन्दर्यानुभव की रागात्मक समृद्धि और यथार्थ में जीवन के कठोर व्यंग्य की हताश स्वीकृति - द्वन्द्वात्मकता में ही इस लम्बी कविता का रूप विधान मूर्त होता है । इस कविता में कवि के भीतरी और बाहरी जीवन का सारा तनाव सरोज की स्मृति के तनाव के बहाने व्यक्त होता है । "

स्पष्ट हो जाता है कि काव्यरूप की दृष्टि से 'सरोज स्मृति' लम्बी कविता है ।

6.3.2 छायावादी शिल्प सौष्ठव

'सरोज स्मृति' के अभिव्यंजना पक्ष पर यदि सतही ढंग से भी विचार करे तो समझने में तनिक भी देर न लगेगी कि इसमें छायावादी शैली के अधिकांश तत्व मौजूद हैं । हो भी क्यों नही, पहली बात तो यह कि यह प्रमुख - प्रसिद्ध छायावादी कवि निराला द्वारा रचित है, दूसरी बात यह कि भले ही यह छायावादी दौर के अन्त की रचना हो, लेकिन है तो छायावादी काल की ही । अत: छायावादी शैली का प्रभाव पड़ना सहज ही है ।

छायावादी शैली वैशिष्ट्य में तत्समनिष्ठ, परिष्कृत, प्रांजल भाषा, सामासिकता, प्रतीक व बिम्ब विधान, नवगढ शब्दावली, मुक्त छन्द, गीतात्मकता में शैली, मानवीकरण, लाक्षणिकता आदि आते है । और ये समस्त विशेषताएँ सरोज स्मृति में भी अवस्थित है ।

तत्समनिष्ठ शब्दावली अन्तर्गत बलि, सहोत्साह निष्पलक दृकपात, तरण, वरण ज्योति शरण: चीनांशुक शुचिते शर-क्षेप, उन्मनन, ऊर्मि कौतुक, विहार आदि सैकड़ों शब्द प्रयुक्त हुए। निराला काव्य की एक मुख्य विशेषता सामाजिक शब्दावली का प्रयोग है, जो सरोज स्मृति में भी खूब हुआ है । द्रष्टव्य है - सहोत्साह यथाभ्यास, निरानन्द, गंगा -तट-सैकत बिहार, हतोत्साह, रहस्य स्मित, कुलांगार उच्छवसितधार, विश्वास स्तब्ध हासोच्छल, चीत्कारोत्कल, स्तब्धान्धकार, अर्थागमोपाय ज्योतिस्तरणा, अष्टादशाध्याय आदि ।

प्रतीको में शुचिते, गीते, रागिनी वहि स्वर्ण झनक, पिक- बालिका आदि । चाक्षुष, स्पर्श एवं घ्राण बिम्ब की सश्लिष्टता का उदाहरण -

" वे जो यमुना के - से कछार

पद फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यो, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर ग्रंथ '

नवगढ शब्दावली में कुलांगार चमरौधे, निरानन्द, हासोच्छल, चीत्कारोत्कल, न्यस्त आदि को लिया जा सकता है ।

जहाँ तक छन्द की बात है यह पूरी तरह से 'निराला छन्द' मे रचित है । अर्थात मुक्त छन्द तो है ही लेकिन इसे भी निराला ने अपने ढंग से रचा है । इस सबंध में 'नंदकिशोर नवल की उल्लेख हे । वे लिखते है :

"..... वस्तुत यह पद्धरि या पद्धतिका का नामक मात्रिक छंद है, जो सोलह मात्राओं का होता है और नियमत: जिसका अन्त जगण से होता है । लेकिन निराला ने इस जगण वाले नियम को नहीं माना है और स्वतंत्रापूर्वक चरण के अंत में जो गण रखना चाहा है रखा है । " 'आगे नवल लिखते है - 'सरोज स्मृति' में छंद संबंधी वैषस्य इस रूप में दिखलाई पडता है कि छंद छोटा है लेकिन वाक्य उसमें कावे ने प्राय: बड़े- बड़े रखे है । स्वभावत: वे चरण के साथ समाप्त नही होते और अगले चरणों में भी प्रवाहित होते रहते है ।

भाषा - शिल्प की दृष्टि से 'सरोज स्मृति' में एकरूपता नहीं है, विविधता है । यह वैविध्य जिस तरह विषयवस्तु में है ठीक उसी तरह का है । जहाँ कथात्मकता अधिक है वहाँ भाषा भी सरल, सहज एवं गद्यात्मक विन्यास की हो गई है । दूसरी ओर काव्यात्मक व छायावादी औदात्य से परिपूर्ण है । भाषा के दोनो नमूने तुलनात्मक दृष्टि से द्रष्टव्य है -

गद्यात्मक व सरल भाषा -

जो कुछ है मेरा अपना धन
पूर्वज से मिला, करूँ अर्पण
यदि महाजनों को, तो विवाह
कर सकता हूँ पर नहीं चाह
मेरी ऐसी, दहेज देकर
मैं मुर्ख बनूँ यह नहीं सुधर
बारात बुलाकर कर मिथ्या व्यय
मैं करूँ, नहीं ऐसा सुसमय

काव्यात्मक व छायावादी सौष्ठव की भाषा -

परिचय - परिचय पर खिला सकल -
नभ, पृथ्वी, दुम, कलि, किसलय दल
क्या दृष्टि! अतल की सिक्त-धार
ज्यों भोगावती उठी अपार
उमड़ता ऊर्ध्व को कल सलील
जल टलमल करता नील नील

पर बँधा देह के दिव्य बाँध
छलकता दृगों से साध-साध

यहाँ भाषा मे चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता एवं संगीत सा है, क्योकि यहाँ समान ध्वनियों वाले वर्णो की योजना की गई है । अनुप्रासिकता अलंकृति व बिम्बात्मकता है । यहाँ अभिव्यंजना में अद्भुत सौदर्न्य एवं प्रभावात्मकता आ गई है ।

आलोच्य कृति की भाषा शैली के संन्दर्भ में डॉ. नन्दकिशोर नवल की टिप्पणी अल्लेखनीय है- भाषा प्रयोग के मामले में भी सरोज स्मृति में बहुत वैषम्य है । इसके दो स्तर तो बिल्कुल स्पष्ट है, जिसमें कोई मेल दिखाई नहीं देता । पहला स्तर कवितापूर्ण भाषा का है दूसरा बिल्कुल बेरंग और गद्यात्मक बातचीत वाली भाषा का..... । छंद और तक में बँधी होने से काव्य भाषा का हलका सा तनाव उसमें जरूर है, लेकिन वह अपर्याप्त है ।

रामविलास शर्मा ने सरोज स्मृति को संवाद रचना की दृष्टि से काफी कमजोर माना है ।

वसतुत: सरोज स्मृति' की भाषा में गजब का तनाव है । तनाव का कारण भावोद्रेक के साथ-साथ निराला का गहन संघर्ष है । यह संघर्ष जैसा कि पूर्व में स्पष्ट हो चुका है त्रेआयामिक हे । डॉ. नवल अपनी कृति सरोज स्मृति' पुनरवलोकन में और भी लिखते है- " सरोज स्मृति की भाषा में गजब का तनाव भर गया है । एक तनाव वाक्यों में सरलता और जटिलता को लेकर भी है । वाक्य का कोई हिस्सा बहुत सरल है, तो कोई जटिल, जिसमें गूढ़ अर्थ छिपा होता है । इस कविता के प्रत्येक स्तर पर वैषम्य है, जिससे एक ऐसा तनाव पैदा हुआ है, जैसा वीणा - जैसे वाद्ययंत्र के चढ़े हुए तारों में ही देखने को मिलता है । "

सरोज स्मृति की उक्त भाषा-शिल्प के वैशिष्ट्य को डॉ. दूधनाथ सिंह ने भी कुछ अलग शब्दों में निरूपित किया है - "तत्समता, उठान, आवेक्ष, आभिजात्य, गढ़न और लयात्मक प्रवाह इन की भाषिक संरचना की प्रमुख विशेषताएँ है । "

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सरोज स्मृति' कलात्मक संगठन की दृष्टि से, अभिव्यजना पक्ष की दृष्टि से सुगढ़ व सफल रचना है । सर्वत्र भाषा शैली भावानुकूल, प्रवाहात्मक औदात्यपूर्ण, काव्यात्मक, गरिमानुकूल, सुष्ठु एवं प्रभावी है ।

6.4 'सरोज स्मृति' का महत्व

'सरोज स्मृति' हिन्दी साहित्य में अपनी तरह की विशिष्ट रचना है । शिल्प की दृष्टि से अधिक अंतर्वस्तु की दृष्टि से । यह कृति निराला की रचनाओं में तो उत्तम है ही अपितु छायावाद और आधुनिक कविता साहित्य की भी महनीय उल्लेखनीय व पठनीय रचना है । इसकी महत्ता का प्रमाण इस बात से भी लगाया जा सकता है कि न केवल हिन्दी साहित्य में अपितु सम्पूर्ण यूरोपीय भाषा साहित्य में भी इस तरह की शोक गीतात्मक रचना प्रकाश में नहीं आई है, जिसमें एक पिता ने अपनी पुत्री के निधनवश शोक के कारण अपनी दुखमयी एवं कठोर संघर्षमयी जीवन की करूण गाथा को उच्चतर भावों के साथ प्रस्तुत किया हो । इसकी अनुपम महत्ता के विषय में निराला साहित्य के सबसे बडे अध्येता एवं प्रख्यात आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा का अभिभत उल्लेख है-

"शोक गीत हिन्दी में तो कम लिखे गये । यूरोप की भाषाओं में ऐसा शायद ही कोई प्रभावशाली गीत है । जिसे कवि पिता ने अपनी पुत्री के निधन पर लिखा है । मित्र या प्रियतमा पर लिखे हुए शोक गीतों में कवियों ने प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण से, पौराणिक गाथाओं की वनदेवियो के अवतरण से अपनी अभिव्यंजना को अलंकृत किया हैं । निराला की इस रचना में इस तरह के अलंकरण का अभाव है । इसके विपरीत रूढ़िवादी समाज के चित्रण में निराला का एक विक्षुब्ध अट्टहास है शेक्सपियर के महानाटको में गंभीर भावाभिव्यक्ति के साथ हास और व्यंग्य के मिश्रण की तरह ।"

स्पष्ट ही शर्मा जी ने एक और 'सरोज स्मृति' रचना को अनुपम एवं बेजोड (एक्सस्लुजिव) बताया है वहीं इस रचना की तुलना शेक्सपियर के महानाटको से की है । अत: रचना का महत्व स्वत: सिद्ध है । इसके अतिरिक्त इस रचना के महत्व का अन्दाज सहजता से ही इस बात से लगाया जा सकता है कि यह रचना भारत के अधिकाशं विश्वविद्यालयों में किसी न किसी पाठ्यक्रम में सन्निहित है । रचना के महत्व को पुष्ट करने हेतु इससे अधिक प्रमाणों की, आलोचकों के अभिमतों की आवश्यकता नहीं है ।

6.5 शब्दावली

आलोच्य	–	जिस रचना या कृति की आलोचना या समीक्षा कर रहे हैं
प्रच्छन्न	–	प्रखर, तेज या वेग से
संघीभूत	–	धनी
साघन्य	–	सघनता
नारिकेल	–	नारियल
आविर्भावक	–	आविर्भाव/ शुरुआत करने वाली
संघात	–	पीडा
अर्योवायधन	–	की व्यवस्था
लावण्य	–	सौन्दर्य
चीनांशुरू	–	(चीन में निर्मित) रेशमी वस्त्र
तन्वि	–	युवावस्था का विशेषणवाची संबोधन
आद्यन्त	–	आदि (शुरू) से लेकर अन्त तक
अकिंचन	–	गरीब
विधान	–	नियम, परम्परा, व्यवस्था
इतर	–	अलग
सत्वर	–	तेजी से
निरानन्द	–	बिना आनन्द के
लांछित	–	अपमानित
अजस्त्र	–	लगातार चलने वाला
स्रोता	–	झरना

अन्विति – परस्पर संबंध, सुगुंफन

6.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा-समझा और सहृदयी के नाते निराला की गहन अन्त:अनुभूति से परिचय किया कि वे बाहर से कठोर और भीतर से कोमल एवं संवेदनशील है । वे भले ही विद्रोही प्रवृति के एवं अक्खड़ व्यक्तित्व के धनी हो लेकिन पिता के नाते अपने पुत्री के प्रति उनकी जो अगाध स्नेह भावना, वात्सल्स एवं करूणा भावना है वह उन्हे पूर्ण पुरूष एवं शायद उससे भी कहीं अधिक बनाती है । वे सरोज के लिए माँ व पिता दोनो थे । 18 वर्ष की आत्मीय तनया को खोकर कौन पिता करूणाशील होकर रूदन को विवश न होगा।

निराला कृत सरोज स्मृति में सरोज की कथा के प्रसंग के साथ-साथ उन के जीवन का आत्मचरित्र भी प्रस्तुत हुआ है जिसमें उनके कठोर संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है । रचनान्त में निराला का दिल ही नहीं मुसीबतो की, संघर्षो की अनवरतता के चलते रोम-रोम क्रन्दन करता हुआ पुकार उठता है -

'दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कहीं '

प्रस्तुत इकाई मे आपे पढ़ा कि निराला ने किस तरह मुक्त छन्द का आगाज कर साहित्यिक समाज को रूष्ट कर दिया था । परिणामत: उन्हे सम्पादकों का कोपभाजन बनना पड़ता और उनकी रचनाएं अनछपे ही लौटी । सामाजिक स्तर का उन्होने कान्यकुब्ज होकर भी उस जाति-समाज से बगावत की और बेटी के ब्याह के लिए समस्त नियम तोडे । यह सब निराला का विद्रोही व्यक्तित्व ही करवाता है । बेटी के प्रति निराला के विचारों भावों को देखकर यह निश्चित ही कहा जा सकता है कि वे सामन्तवादी विचारों से इतर पूर्णत: नवेचतनावादी आधुनिक विचारों से इतर पूर्णत: नवचेतनावादी आधुनिक इसाने थे, इसीलिए पुत्र के होते हुए भी वे पुत्री के लिए कह उठते है "तू मुझ भाग्यहीन ही संबल । "

सरोज के लाड़ प्यार स्नेह एवं वात्सल्य के लिए निराला दूसरी शादी नहीं करते । अभिव्यंजना के धरातल पर सरोज स्मृति एक कथानक लम्बी कविता सिद्ध होती है । इसमें भावावेश की तीव्रता तो है ही वैचारिक तनाव एवं संघर्ष भी है, जो लम्बी कविता का अनिवार्य तत्व है । गद्यात्मक प्रसंगो में काव्यात्मक कौशल का अभाव होते हुए भी उनमें काव्यत्व है । शेष स्थानों पर छायावादी शिल्प का उत्कृष्ट सौन्दर्य देखने को मिलता है । भाव एवं वर्ण्यवस्तु के वैषम्य के साथ शैल्पिक वैषम्य भी दिखता है जो कि भाव एवं प्रसंग की माँग हैं । समग्रत: रचना अपनी प्रभावोत्पादकता में सफल रही है । यह विश्व साहित्य की अनुपम रचना है, क्योंकि अन्य शोक गीतों में पत्नी प्रेयसी आदि के विरह से उत्पन्न शोक की अभिव्यक्ति है, लेकिन इसमें एक कवि पिता की पुत्री के प्रति विरह एवं तद्जन्य शोक की मार्मिक अभिव्यक्ति है जो अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी है । कह सकते है कि 'सरोज स्मृति' कालजयी कविता है ।

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'सरोज स्मृति' में प्रस्तुत निराला के संघर्ष को स्पष्ट कीजिए ।

2. "दुख ही जीवन की कथा रही क्या कहूँ आज जो नही कहीं" पंक्तियों में प्रस्तुत दुख स्वयं निराला के निजी जीवन का है या सरोज के निजी जीवन का ? तार्किक विवेचन देते हुए अपने विचार स्पष्ट कीजिए ।
3. 'निराला महाप्राण एवं विद्रोही चरित्र के धनी है ।' कथन की व्याख्या कीजिए ।
4. निराला सरोज की शादी कान्यकुब्ज वर्ग में क्यों नही करना चाहते थे ?
5. रचना के आधार पर सरोज का चारित्रिक वैशिष्ट्य निरूपित कीजिए ?
6. साहित्यिक समाज में निराला के स्थान का निर्धारण प्रस्तुत रचनाधार पर कीजिए ।
7. 'निराला बाहर से कठोर एवं भीतर से कोमल थे ।', कथन की विवेचना आलोच्य कविता के आधार पर कीजिए ।
8. 'सरोज स्मृति' का कविता के इतिहास में महत्व निरूपित कीजिए ।
9. 'सरोज स्मृति' छायावादी शैली की रचना है? पक्ष - विपक्ष में मत दीजिए ।
10. 'सरोज स्मृति' एक संश्लिष्ट रचना है कथन की प्रामाणिकता की विवेचना कीजिए ।

6.8 संदर्भ' ग्रंथ

1. डॉ. रामविलास शर्मा, राग विराग, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999 ।
2. नंदकिशोर नवल, सरोज स्मृति: पुनरवलोकन, अनुपम प्रकाशन पटना, 1998 ।
3. डॉ. हरिचरण शर्मा, छायावाद के आधार स्तम्भ, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर 2001।
4. दूधनाथ सिंह, निराला, आत्महन्ता आस्था, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000 ।
5. परमानन्द श्रीवास्तव, निराला, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2006 ।

इकाई-7

ब्रह्माराक्षस (मुक्तिबोध) की व्याख्या एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 कवि परिचय

7.3 कविता -परिचय

7.4 कविता का पाठ और व्याख्या

7.5 शब्दावली

7.6 सारांश

7.7 अभ्यासार्थ प्रशन

7.8 संदर्भ ग्रंथ

7.0 उद्देश्य

ब्रह्मराक्षस गजानन माधव मुक्तिबोध की विख्यात और चर्चित लंबी कविता है, जो 'अंधेरे में की तरह अब क्लासिक का दर्जा प्राप्त कर चुकी है । यह कविता रोमांटिक बेचैनी और तड़फ से भरी हुई एक विचार गर्भित कविता है, जो फैंटेसी पर आधारित है । इस इकाई में इस कविता की व्याख्या और विवेचन किया गया है । इसका अध्ययन करने के बाद आप-

- कवि मुक्तिबोध को जान सकेंगे ।
- 'ब्रह्मराक्षस' कविता से परिचित हो सकेंगे ।
- 'ब्रह्मराक्षस' कविता के विभिन्न चरणों की व्याख्या और विवेचन कर सकेंगे ।
- 'ब्रह्मराक्षस' कविता का वैशिष्ट्य समझ सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

'ब्रह्मराक्षस' हिंदी की कुछ ' विख्यात और चर्चित लंबी कविताओं में से एक हे । मुक्तिबोध ने इसमें मिथक को आधार बनाकर फैंटेसी निर्मित की है । यह धारणा है कि यदि ब्राह्मण पापकर्म करता है, तो मृत्यु के बाद उसे प्रेत योनि प्राप्त होती है । मुक्तिबोध इस धारणा के आधार पर आधुनिक मनुष्य के मन के अंतसंघर्ष और असफलता की चित्रित करते हैं । 'ब्रह्मराक्षस' मनुष्य योनि में एक सत्यान्वेशक के रूप में आजीवन संघर्ष करता है, लेकिन अपनी समस्याओं के गणित: में उलझ जाता है और अंतत: घुटकर मर जाता है । दरअसल यह अंतसंघर्ष और असफलता एक प्रगतिशीँल मध्यवर्गीय भारतीय मनुष्य की है । मुक्तिबोध की यह कविता उनकी चर्चित कविता 'अंधेरे में' की तरह की फैंटेसी पर आधारित है और इसका रचाव बहुत संश्लिष्ट है । प्रस्तुत इकाई में इस कविता की व्याख्या और विवेचन किया गया है ।

7.2 कवि-परिचय

कवि, समालोचक और इतिहासकार मुक्तिबोध का जन्म 13 नवंबर, 1917 को हुआ था । मुक्तिबोध मानवीय अस्मिता, आत्मसंघर्ष और प्रखर राजनीतिक चेतना से समृद्ध रचनाकार थे । उन्होंने हिंदी साहित्य में कविता और आलोचना की समृद्ध और संश्लिष्ट प्रतिबद्ध परंपरा का नेतृत्व किया । उनका काव्यकर्म सबसे पहले 'तार सप्तक' के माध्यम से सामने आया, लेकिन उनके अपने जीवनकाल में उनका कोई स्वतंत्र काव्य संकलन प्रकाशित नहीं हुआ। मरणोपरांत उनकी कविताओं के दो संकलन, 'चाँद का मुंह टेढ़ा है' और 'भूरी-भूरी खाक धूल' नाम से प्रकाशित हुए। कविता के साथ उन्होंने कविता विषयक चिंतन और आलोचना की नयी पद्धति भी विकसित की । उनका काव्य चिंतन और आलोचना 'एक साहित्यिक की डायरी 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' और 'नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र नाम से प्रकाशित हुए हैं । 'भारत का इतिहास' उनकी इतिहास विषयक गवेशणापूर्ण पुस्तक है । मुक्तिबोध ने 'वसुधा' और 'नया खून' जैसी पत्रिकाओं में संपादन-सहयोग भी किया । उनको प्रगतिशील कविता और नयी कविता का सेतु माना जाता है । मुक्तिबोध का निधन 11 सितंबर, 1964 को हुआ।

7.3 कविता-परिचय

'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध की प्रसिद्ध लंबी कविता है । इसका सबसे पहले प्रकाशन बनारस से निकलने वाली साहित्यिक पत्रिका 'कवि' में 1957 में हुआ था । बाद में यह संशोधित रूप में 1964 में मुक्तिबोध के पहले काव्य संकलन 'चाँद का मुंह टेढ़ा है' में प्रकाशित हुई। आरंभिक दौर में यह कविता साहित्यिकों का ध्यान अपनी ओर नहीं खींच पाई, लेकिन बाद में समालोचकों ने इसको 'अंधेरे में' के बाद मुक्तिबोध की दूसरी मूल्यवान और क्लासिक कविता का दर्जा दिया । यह आकार में 'अंधेरे में' से छोटी है, लेकिन इसकी चारित्रिक संरचना एक लंबी कविता की है । समालोचक नंदकिशोर नवल के शब्दों में ' 'ब्रह्मराक्षस रोमांटिक बेचैनी और तड़फ से भरी हुई एक विचारगर्भित कविता है, जो मुक्तिबोध की कविताओं में 'अंधेरे में' की तरह क्लासिक बन चुकी है । 'याज्ञवलक्य स्मृति' में एक स्थान पर ब्रह्मराक्षस के संबंध में कहा गया है कि "जो व्यक्ति दूसरे की पत्नी का अपहरण करता है, वह मृत्यु के बाद जंगल में किसी निर्जन प्रदेश में जाकर 'ब्रह्मराक्षस' हो जाता है । " यह धारणा ही इस कृति का मिथकीय आधार है । कविता दो भागों में विभक्त है- पहले खंडे में कवि ने ब्रह्मराक्षस के प्रेतोचित व्यवहार का चित्रण किया है और दूसरे खंड में उसने अपने पाठकों को उसकी ट्रैजेडी से परिचित करवाया है ।

7.4 कविता का पाठ और व्याख्या

काव्यांश - 1

शहर के उस ओर खंडहर की तरफ
परित्यक्त सूनी बावड़ी
के भीतर
ठंडे अंधेरे में
बसी गहराइयां जल की.....

सीढ़ियां डूबी अनेकों
उस पुराने घिरे पानी में.....
समझ में न आ सकता हो
कि जैसे बात का आधार
लेकिन बात गहरी हो
बावड़ी को घेर
डाले खूब उलझी हैं,
खड़े हैं मौन औदुम्बर ।
व शाखा पर
लटकते घुग्घुओं के घोंसले
परित्यक्त, भूरे, गोल ।

संदर्भ और प्रसंग

प्रस्तुत कवितांश गजानन माधव मुक्तिबोध की लंबी कविता 'ब्रह्मराक्षस' से उद्धृत किया गया है । यह कविता मुक्तिबोध के मरणोपरांत प्रकाशित काव्यकृति 'चाँद का मुंह टेढ़ा है' में संकलित है। मुक्तिबोध मानवीय अस्मिता, आत्मसंघर्ष और प्रखर राजनीतिक चेतना के कवि हैं । यह कविता एक प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के आत्मसंघर्ष और वैचारिक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाने की हताशा को मिथकीय फैंटेसी में चरितार्थ करती है । प्रस्तुत कवितांश में नगर के एक तरफ खंडहर के समीप स्थित निर्जन बावड़ी का चित्र खींचा गया है ।

व्याख्या -

कवि बावड़ी का वर्णन करते हुए कहता है कि नगर के एक तरफ जो खंडहर है, उसके समीप एक निर्जन बावड़ी है । इस परिव्यक्त बावड़ी पर आवागमन बंद है । यह बावड़ी बहुत गहरी है और इसके भीतर ठंडक और अंधकार है । इसके गहरे पानी में इसकी सीढ़ियाँ डूबी हुई हैं । कवि कहता है कि यह गहराई समझ से परे है, लेकिन इसका आभास मिल जाता है । बावड़ी को घेर कर गूलर के पेड खड़े हैं । इन पेड़ों ने मौन धारण कर रखा है और इनकी उलझी हुई शाखाओं पर घुग्घुओं द्वारा छोड़ दिए गए गोल और भूरे घोंसले लटके हुए हैं ।

विशेष -

1. मुक्तिबोध परित्यक्त और निर्जन बावड़ी के माध्यम से भय का वातावरण उत्पन्न करते हैं । इस तरह का वातावरण उनकी कविताओं में प्राय: आता है । यह भय का वातावरण आधुनिक समाज के भय को व्यंजित करता है ।
2. 'खडे हैं ओर औदुम्बर' में मानवीकरण है ।

काव्यांश - 2

विगत शत पुण्य का आभास
जंगली हरी कच्ची गंध में बसकर
हवा में तैर
बनता है गहन संदेह
अनजानी किसी बीती हुई उस श्रेष्ठता का जो कि

दिल में एक खटके-सी लगे रहती ।

प्रसंग -

कवि प्रस्तुत काव्यांश में नगर के एक तरफ स्थित निर्जन बावड़ी का वर्णन कर रहा है ।

व्याख्या -

कवि कहता है कि उस तालाब के आसपास बहुत अच्छी हरी और कच्ची (ताजा) गंध आ रही है । यह गंध पिछले सौ पुण्यकर्मो की प्रतीति की तरह महसूस हो रही है । यह संदेह भी कवि मन में है कि यह कोई अज्ञात श्रेष्ठता न हो, जो अब अतीत की वस्तु बन चुकी है, लेकिन जिसे दिल भूला नहीं पाता । उसमें वह हमेशा खटके-से लगी रहती है ।

विशेष -

1. प्रस्तुत काव्यांश में मध्यवर्गीय अतीत प्रेम की गहरी और सूक्ष्म पहचान है ।
2. मानवीकरण और उपमा अलंकार

काव्यांश - 3

बावड़ी की उन घनी गहराइयों में शून्य
ब्रह्मराक्षस एक पैठा है,
व भीतर से उमड़ती गूंज की भी गूंज,
हड़बड़ाहट-शब्द पागल से ।
गहन अनुमानिता
तन की मलिनता
दूर करने के लिए, प्रतिपल
पाप-छाया दूर करने के लिए, दिन-रात
स्वच्छ करने-
ब्रह्मराक्षस
घिस रहा है देह
हाथ के पंजे, बराबर,
बांह-छाती-मुंह छपाछप
खूब करते साफ
फिर भी मैल
फिर भी मैल!!

प्रसंग -

कवि निर्जन और परित्यक्त बावड़ी का भयावह चित्र खींचकर अब उसमें रहने वाले ब्रह्मराक्षस का चित्रण शुरू करता है । यह ब्रह्मराक्षस दरअसल मनुष्य योनि में असफल मध्यवर्गीय प्रगतिशील बुद्धिजीवी का प्रेत है । इस प्रेत को भ्रम है कि उसका शरीर गंदा है, इसलिए वह बार-बार बावड़ी में स्नान करता है और अपनी देह की मलीनता छुड़ाने का प्रयास करता है ।

व्याख्या -

कवि ब्रह्मराक्षस का वर्णन करते हुए कहता है कि परित्यक्त और निर्जन बावड़ी की घनी गहराई में एक एकाकी ब्रह्मराक्षस का निवास है । वह तालाब के गहरे जल में डुबकियां लगा रहा है और पागलों की तरह बड़बडाए जा रहा है । उसके बड़बड़ाने की गूंज और अनुगूंज बावड़ी में फैली हुई है । ब्रह्मराक्षस को गहरा भ्रम है कि उसका शरीर गंदा है । उसको साफ करने के लिए वह दिन-रात निरंतर तालाब में अपनी देह रगड़ता रहता है । उसके हाथ के पंजे पानी में छपाछप करते हुए बांहो, छाती और मुंह को साफ करने के लिए चलते रहते हैं । वह अपनी पाप छाया को दूर करने के लिए निरंतर स्नान करता रहता है, लेकिन इससे उसकी देह की गंदगी दूर नहीं होती ।

विशेष -

1. रामविलास शर्मा ने इन पंक्तियों के आधार पर मुक्तिबोध को अस्तित्वाद से प्रभावित सिद्ध किया था । वे लिखते हैं कि "शहर से दूर खंडहर की तरफ परित्यक्त सुनी बावड़ी में एक ब्रह्मराक्षस रहता है । भीतर पागल की सी बड़बड़ाहट गूंजती रहती है । तन की मलीनता और पाप छाया दूर करने के लिए वह हाथ के पंजे देह-पर दिन रात घिसता है, फिर भी मैल दूर नहीं होता । अस्तित्ववाद के पितामह कीर्केगार्ड ने मनुष्य की भूलों, अपराध भावना, पाप संबंधी चेतना, आत्म परिष्कार की तड़फ, आत्मसंघर्ष द्वारा मुक्ति और ईश्वर प्राप्ति की संभावना पर बड़ा बल दिया था ।'

काव्यांश -4

और.. होठों से
अनोखा स्तोत्र, कोई कुछ मंत्रोच्चार,
अथवा शुद्ध संस्कृत गालियों का ज्वार,
मस्तक की लकीरे
बुन रही
आलोचनाओं के चमकते तार!!
उस अखंड -स्नान का पागल प्रवाह...
प्राण में संवेदना है स्याह!!
किंतु गहरी बावड़ी
की भीतरी दीवार पर
तिरछी गिरी रवि-रश्मि
के उड़ते हुए परमाणु, जब
तल तक पहुंचते है कभी
तब ब्रह्मराक्षस समझता है, सूर्य ने
झुककर नमस्ते कर दिया ।
पथ भूलकर जब चाँदनी
की किरन टकराये
कहीं दीवार पर,
तब ब्रह्मराक्षस समझता है

वंदना की चाँदनी ने
ज्ञान-गुरू माना उसे
अति प्रफुल्लित कंटकित तन मन वही
करता रहा अनुभव कि नभ ने भी
विनत हो मान ली है श्रेष्ठता उसकी!!
और, तब दुगुने भयानक ओज से
पहचानवाला मन
सुमेरी-बैबिलोनी जन कथाओं से
मधुर वैदिक ऋचाओ तक
व तब से आज तक के सूत्र
छंदस, मंत्र, थियोरम
सब प्रमेयों तक
कि मार्क्स एंजेल्स, रसेल, टॉएंबी
कि हीडेग्गर व स्पेंग्लर, सार्त्र, गांधी भी
सभी के सिद्ध अंतों का
नया व्याख्यान करता वह
नहाता ब्रह्मराक्षस ष्याम
प्राक्तन बावडी की
उन घनी गहराइयों में शून्य ।

प्रसंग -

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ब्रह्मराक्षस के बुद्धिजीवी व्यक्तित्व और असीमित ज्ञान का वर्णन करता है । कवि के अनुसार ब्रह्मराक्षस कोई सामान्य मनुष्य नहीं है । वह एक बुद्धिजीवी का प्रेत है, इसलिए उसका आचरण भी कुछ हद तक असाधारण है ।

व्याख्या -

कवि मुक्ति बोध कहते हैं कि स्नानरत ब्रह्मराक्षस कभी किसी असामान्य स्तोत्र का पाठ करता है, कभी क्रोधित होकर कोई मंत्रोच्चार करता है और कभी उसके मुँह से शुद्ध संस्कृत गालियों का ज्वार फूट पडता है । उसके ललाट की रेखाओं को देखकर लगता है, जैसे वे आलोचना की चमकती रेखाएं हों । वह असाधारण प्रेत है इसलिए निरंतर जल में नहाता रहता है । वह कोई उज्ज्वल भावनाओं और संवेदनाओं वाला व्यक्ति नहीं है । उसकी संवेदना स्याह है । प्रेत होने के कारण उसका आचरण असामान्य है । गहरी बावड़ी में जब तिरछी होकर सूर्य की किरणें पहुँचती है, तो ब्रह्मराक्षस को लगता है जैसे उसे श्रेष्ठ मानकर सूर्य ने उसे अभिवादन किया है । इसी तरह मार्ग से भटककर कभी जब चाँदनी की कोई किरण बावड़ी की दीवार से टकराती है, तो ब्रह्मराक्षस को लगता है कि चाँदनी ने उसको गुरु मानकर उसकी वंदना की है । वह अत्यंत उल्लसित होकर मान लेता है कि आकाश भी उसकी श्रेष्ठता स्वीकार कर उसके चरणों में विनत हो गया है । इस तरह अपनी श्रेष्ठता से अभिभूत होकर वह दुगुने ओज और वेग से बावड़ी में स्नान करने के लिए डुबकियां लगाने लगता है । डुबकियों

के साथ ही वह सुमेरी और बेबीलोनी जनकथाओं से लेकर वैदिक ऋचाओं तक, प्राचीन वेदों से आधुनिक सूत्रों, छंदों, मंत्रों, थियरमों, प्रमेयों और दर्शनिक मार्क्स, एंजेल्स, रसेल, टायंबी, हीडेगर, स्पेंगलर, सार्त्र, गांधी तक के आख्यान-पुनराख्यान प्रस्तुत करने लगता है । वह उस प्राचीन बावड़ी के काले और गहरे जल में इस तरह नहाता रहता है और श्राप मुक्त होने का असफल प्रयास करता रहता है ।

विशेष -

1. प्रस्तुत कवितांश में स्वतंत्र प्राकृतिक दृश्य भी आते हैं । सामान्यत: मुक्तिबोध की कविताओं में स्वतंत्र प्रकृति दृश्य नहीं आते, लेकिन जब ये प्रासंगिक रूप से आते हैं, तो नंदकिशोर नवल के शब्दों 'पूरी शक्ति और सुंदरता के साथ आते हैं।'
2. प्रस्तुत कविताश में ब्रह्मराक्षस का आचरण पूरी तरह असाधारण है । यह स्वाभाविक है । मृत्यु के बाद प्रेत योनि में यह सत्यान्वेशी की स्वाभाविक परिणति है ।
3. प्रस्तुत कवितांश की अंतिम पंक्तियाँ गूढ़ार्थ लिए हुए हैं । दरअसल आधुनिक सिद्धांतों की नवीन व्याख्याएँ और प्राक्तन बावड़ी मानव मन के दो छोरों के प्रतीक हैं-एक चेतन मन, जो सब मिथ्या-अमिथ्या समझता है, और दूसरा अवचेतन मन, जो इतिहास बोध में जीता हुआ ब्रह्मराक्षस से शरीर का मैल उतरवाने का प्रयत्न करवाता है ।

काव्यांश - 5

.....ये गरजती, गूंजती, आंदोलिता
गहराइयों से उठ रही ध्वनियाँ, अत:
उद्भ्रांत शब्दों के नये आवर्त में
हर शब्द निज प्रति-शब्द को भी काटता
वह रूप अपने बिम्ब से भी जूझ
विकृताकार-कृति है बन रहा
ध्वनि लड़ रही अपनी प्रतिध्वनि से यही
बावड़ी की इन मुंडेरो पर
मनोहर हरी कुहनी टेक सुनते है
टगर के पुष्प तारे श्वेत
हे ध्वनियाँ!
सुनते है करौंदी के सकोमल फूल
सुनता है उन्हें प्राचीन औदुम्बर
सुन रहा हूं मैं वही
पागल प्रतीकों में कहीं जाती हुई
वह ट्रैजिडी
जो बावड़ी में अड़ गयी ।

प्रसंग -

प्रस्तुत काव्यांश में डूबकियों से विक्षुब्ध बावड़ी और ब्रह्मराक्षस की ट्रैजेडी का चित्रण किया गया है ।

व्याख्या -

कवि कहता है कि ब्रह्मराक्षस के व्याख्यानों, छंदों, मंत्रों आदि की गरजती और गूँजती ध्वनियों-प्रतिध्वनियों से बावड़ी में आंदोलन जैसा माहौल है । यही ध्वनियाँ एक दूसरे को काटती हुई, एक दूसरे से लड़ती हुई लग रही हैं । गहराइयों से उठने वाले उद्भ्रांत शब्दों के जो आवर्त बनते हैं, वे आपस में टकराते हैं और टकराकर विकृत हो जाते हैं । बावड़ी के मुंडेर पर कुहनी टेक कर टगर के पुष्पा इन ध्वनियों-प्रतिध्वनियों को सुन रहे हैं । करौंदी के कोमल फूल और प्राचीन गूलर के पेड़ भी इनको सुन रहे हैं । कवि आगे कहता है कि वह भी इन ध्वनियाँ-प्रतिध्वनियों में ब्रह्मराक्षस की ट्रैजेडी सुन रहा है । यह ध्वनियाँ-प्रतिध्वनियाँ कवि के अनुसार पागल ब्रह्मराक्षस की ट्रैजेडी की प्रतीकात्मक उपादान हैं । यह ट्रैजेडी बावड़ी में अड़कर रह गई है ।

विशेष -

1. प्रस्तुत काव्यांश में 'गरजती', गूंजती और आंदोलित-जल की गहराइयों में वर्ण्यवस्तु का बहुत सजीव चित्र उपस्थित करते हैं ।
2. प्रस्तुत काव्यांश में कोलाहल- ध्वनि-प्रतिध्वनि और उनका आपसी टकराव दरअसल प्रतीकात्मक उपकरण है, जिनके माध्यम से ब्रह्मराक्षस अपनी ट्रैजेडी बयान कर रहा है ।
3. प्रस्तुत काव्यांश ब्रह्मराक्षस के भीषण अंतसंघर्ष का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करता है ।
4. मानवीस्वण अलंकार

कवयांश- 6

खूब ऊँचा एक जीना सांवला
उसकी अंधेरी सीढ़ियां.....
वे एक आभ्यांतर निराले लोक की ।
एक चढ़ना औ उतरना,
पुन: चढ़ना औं लुढ़कना,
मोच पैरो में
व छाती पर अनेक घाव ।
बुरे-अच्छे बीच के संघर्ष
से भी उग्रतर
अच्छे व उससे अधिक अच्छे बीच का संघर्ष
गहन किंचित सफलता,
अति भव्य असफलता!
अतिरेकवादी पूर्णता
की ये व्यथाएं बहुत प्यारी है.....
ज्यामितिक संगीत-गणित,
की दृष्टि के कृत
भव्य नैतिक मान
आत्मचेतन सूक्ष्म नैतिक मान. ...

अतिरेकवादी पूर्णता की तृष्टि करना
कब रहा आसान
मानवी अंतर्कताएं बहुत प्यारी है!!

प्रसंग -

प्रस्तुत काव्यांश से इस लंबी कविता का दूसरा खंड शुरू होता है, जिसमें ब्रह्मराक्षस की उस ट्रैजेडी का चित्रण है, जब वह मनुष्य योनि में था । मनुष्य योनि में एक सत्यान्वेशक के रूप में उसका अंतर्संघर्ष बहुत परेशान करने वाला था ।

व्याख्या -

कवि ब्रह्मराक्षस के मनुष्य योनि व्यक्तित्व की कल्पना एक भव्य प्रासाद के रूप में करता है । इस प्रासाद की ऊँची और अँधेरी सीढ़ियां थीं । सत्यान्वेशी इन सीढ़ियों पर चढ़ता-उतरता था और इस दौरान कई बार लुढ़क जाता था । इससे सत्यान्वेशी के पैरों में मोच आ जाती थी और उसकी छाती पर अनेक घाव हो जाते थे । कवि कहता है कि यह संघर्ष अच्छे-बुरे के संघर्ष से उग्रतर था, क्योंकि यह अच्छे और उससे भी अच्छे के बीच का संघर्ष था । इस संघर्ष में थोडी सफलताएं थी और शेष सब भव्य असफलताएं थीं । असफलता अनिवार्य थी, क्योंकि सत्यान्वेशी के आदर्श अतिरेकवादी थे । वह चाहता था कि नैतिकता के भव्य और सूक्ष्म प्रतिमान उतने ही सुनिश्चित होने चाहिए जितने ज्यामितिशास्त्र और गणित के नियम होते हैं । यह संभव नहीं था, क्योंकि नैतिकताएं मनुष्य क्षापेक्ष और मनोगत होती है इसलिए उनमें विज्ञान की वस्तुपरकता और गणित जैसी नियम निर्भरता संभव नहीं थी । कवि इस सत्यान्वेशी के अंतर्संघर्श के साथ सहानुभूति व्यक्त करता है । वह कहता है कि सत्यान्वेशी का पूर्णता के लिए अंतसंघर्ष भले ही असफल रहा हो इससे उसका महत्व कम नहीं होता । अतिरंकादी पूर्णताएं पाना आसान नहीं है, लेकिन कवि की निगाह में ये 'मानवी अंतर्कथाएं बहुत प्यारी हैं

विशेष -

1. प्रस्तुत काव्यांश में मुक्तिबोध ने ब्रह्मराक्षस के मनुष्य योनि रूप के अंतर्संघर्ष को व्यंजित करने के लिए रूपकीकरण का सहारा लिया है । वे उसके व्यक्ति की कल्पना एक भव्य प्रासाद के रूप में करते है ।
2. प्रस्तुत काव्यांश में सत्यान्वेशी के रूप में ब्रह्मराक्षस के अंतर्संघर्ष का एक निहितार्थ और है, जिसकी ओर संकेत समालोचक नंदकिशोर नवल ने किया है । वे लिखते हैं- "पूँजीवादी व्यक्तित्व को पूर्णत: छोड़कर 'आदर्श' समाजवादी व्यक्तित्व प्राप्त करने के संघर्ष में थोड़ी सफलता और अधिक असफलता मिलना अनिवार्य था, क्योकि शोधक के आदर्श अतिवादी थे । '
3. प्रस्तुत काव्यांश में सत्यान्वेशी के संघर्ष को गलत मानते हुए भी मुक्तिबोध उसके उद्देश्य की सराहना करते हैं और कहते हैं कि इसी तरह संघर्ष करते हुए मानव संस्कृति आगे बढ़ रही है।
4. मानवीकरण और रूपक

काव्यांश -7

रवि निकलता
लाल चिंता की रुधिर-सरिता

प्रवाहित कर दीवारों पर
उदित होता चंद्र
व्रण पर बांध देता
श्वेत-धौली पट्टियां
उद्विग्न भालों पर
सितारे आसमानी छोर पर फैले हुए
अनगिन दशमलव से
दशमलव-बिंदुओं के सर्वत्र
पसरे हुए उलझे गणित मैदान में
मारा गया, वह काम आया,
और अब पसरा पड़ा है.....
वक्ष-बाहे खुली फैली
एक शोधक की ।

प्रसंग -

प्रस्तुत काव्य पंक्तियों में ब्रह्मराक्षस की बदलती मनोगतियों का चित्रण है । इसमें कवि जीवन के गणित में ब्रह्मराक्षस के उलझकर मर जाने की ट्रैजेडी का भी वर्णन करता है ।

व्याख्या -

कवि कहता है कि सूर्य जब निकलता तो ब्रह्मराक्षस की बावड़ी की दीवारों पर लाल चिंता की रक्त नदी बहने लगती थी और जब रात्रि में चंद्रमा निकलता था तो वह ब्रह्मराक्षस के घावों पर श्वेत-धवल पट्टियां बांध देता था । ब्रह्मराक्षस का उद्विग्न मस्तक उस आसमान के समान था, जिसके अंतिम सिरे तक सितारे फैले हुए थे । यह सितारे ब्रह्मराक्षस के अद्विग्न मस्तक के चिता बिंदु थे, जो दशमलव बिंदुओं के समान थे । इन दशमलव बिंदुओं के गणित के पसरे हुए मैदान में ब्रह्मराक्षस काम आया मतलब योद्धा की तरह मर गया । अब मरे हुए इस ब्रह्मराक्षस की बाहे और वक्ष खुले और फैले हुए पड़े हैं ।

विशेष -

1. प्रस्तुत कविता पंक्तियों में उल्लिखित दशमलव बिंदुओं का गणित इस समाज के विविध स्तरीय उलझाव और फैलाव का प्रतीक है । दरअसल मनुष्य अभी इस उलझाव को सुलझा नहीं पाया है । दशमलव बिंदु के बांयी ओर अंक बढ़ा देने से जैसे उसका मूल्य दस गुना बढ़ जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मराक्षस की समस्याएं बढ़ती ही जाती है और इनमें उलझकर खत्म हो जाता है ।
2. रूपक और मानवीकरण

काव्यांश -8

व्यक्तित्व वह कोमल स्फटिक प्रासाद-सा,
प्रासाद में जीना
व जीने की अकेली सीढ़िया
चढ़ना बहुत मुश्किल रहा ।

वे भाव-संगत तर्क-संगत
कार्य सामंजस्य-योजित
समीकरणों के गणित की सीढ़ियां
हम छोड़ दें उसके लिए ।
उस भाव-तर्क व कार्य-सामंजस्य-योजन.....
शोध में
सब पंडितों, सब चिंतकों के पास
वह गुरु प्राप्त करने के लिए भटका!!
किंतु-युग बदला व आया कीर्ति-व्यवसायी
लाभकारी कार्य में से धन
व धन में से हृदय-मन,
और, धन-अभिभूत अंतःकरण में से
सत्य की झाई निरंतर चिलचिलाती थी ।

प्रसंग -

प्रस्तुत काव्यांश में भी ब्रह्मराक्षस की ट्रैजेडी का वर्णन है । कवि इसमें समय में आए बदलाव की ओर भी संकेत करता है और कहता है कि उच्च आदर्शों को आधार बनाकर जीने की कोशिश अंतत: ब्रह्मराक्षस बना देती है ।

व्याख्या -

कवि कहता है कि ब्रह्मराक्षस का व्यक्तित्व कोमल स्फटिक से निर्मित महल जैसा था । उसके व्यक्तित्व रूपी महल में भावों, विचारों आदि की कई सीढ़ियां थीं । इन सीढ़ियों पर निरंतर चढना उतरना बहुत मुश्किल काम था । वह अपने भावों और विचारों सामंजस्य स्थापित करने के लिए पंडितों-चिंतकों के पास भटका, लेकिन अंतत: अपने गणित के समीकरणों में उलझकर एकाकी रह गया । कहीं भी उसे अपनी समस्याओं का समाधान नहीं मिला । कवि आगे कहता है कि अब समय बदल गया है । अब लोगों ने कीर्ति को अपना व्यवसाय बना लिया है । अब लोग वहीं कार्य करते हैं, जिससे लाभ होता है । धन से अभिभूत लोगों के अंतःकरण में अब सत्य नहीं, केवल सत्य की झांई चिलचिलाती हुई दिखाई पड़ती है ।

विशेष :

1. प्रस्तुत काव्यांश में मुक्तिबोध ब्रह्मराक्षस के व्यक्तित्व और उसके आत्मन्वेशण को प्रयास रूपकी करण की प्रक्रिया से उजागर करते है । अकेली और अंधेरी सीढियों वाले भव्य प्रासाद का रूपक इसमें ब्रह्मराक्षस के भव्य और जटिल व्यक्तित्व को सामने लाता है ।
2. मुक्तिबोध प्रस्तुत काव्यांश में व्यवसाय और धनलोलुप नए समाज के आगमन का भी संकेत करते हैं । वे संकेत में कहते हैं कि आदर्शों को लक्ष्य बनाकर संघर्ष करने वाले ब्रह्मराक्षस का समय अब नहीं रहा ।

काव्यांश -9

आत्मचेतस किंतु इस

व्यक्तित्व में थी प्राणमय अनबन.....
विश्वचेतस बे-बनाव!!
महत्ता के चरण में था
विशादाकुल मन!
मेरा उसी से उन दिनों होता मिलन यदि
तो व्यथा उसकी स्वयं जीकर
बताता मैं उसे उसका स्वयं का मूल्य
उसकी महत्ता!
वह उस महत्ता का
हम सरीखी के लिए उपयोग
उस आतरिकता का बताता मैं महत्व!!
पिस गया वह भीतरी
औ बाहरी दो कठिन पाटों के बीच,
ऐसी ट्रैजिडी है नीच!!

प्रसंग -

प्रस्तुत काव्यांश में कवि ब्रह्मराक्षस की एकाकी ट्रैजेडी पर दुखी होता है और उसके साथ तदाकार होना चाहता है । वह ब्रह्मराक्षस से पहले मिल नहीं पाने के कारण व्यथित है । कवि अब उसके अधूरे कार्यो को पूरा करना चाहता है । व्याख्या -

कवि कहता है कि ब्रह्मराक्षस आत्मसचेत व्यक्ति था, लेकिन उसके व्यक्तित्व में निरंतर अंतसंघर्ष चलता रहता था । अकृत्रिम विश्वचेतना के साथ वह तदाकार होना चाहता था, लेकिन उसका मन विशादग्रस्त था । कवि कहता है यदि वह पहले उससे मिल गया होता तो वह उसकी व्यथा को स्वयं जीकर उसे उसकी महत्ता से अवगत कराता । वह उसको बताता कि उसके अंतर्सघर्ष का महत्व भले ही उसके अपने लिए नहीं है, लेकिन कवि सरीखे दूसरे लोगों के लिए उसकी महत्ता बहुत है । कवि कहता है कि इस तरह ब्रह्मराक्षस भीतरी और बाहरी, दो पाटों के बीच पिस कर मर गया, जो एक प्रकार की - घटिया ट्रैजेडी है ।

विशेष -

1. प्रस्तुत काव्यांश की अंतिम पंक्ति 'ऐसी ट्रैजेडी है नीच!!' बहुत प्रभावी और मार्मिक है । यह ब्रह्मराक्षस के असफल जीवन की जीवंत व्यंजना है ।
2. प्रस्तुत काव्यांश में भीतरी और बाहरी दो पाटों का जो उल्लेख है वह सांकेतिक है । ब्रह्मराक्षस आजीवन अपने अंतर्सघर्ष से परेशान रहा है और उसे बाहर भी सामाजिक स्वीकृति नहीं मिली।

काव्यांश - 10

बावड़ी में वह स्वयं
पागल प्रतीकों में निरंतर कह रहा
वह कोठरी में किस तरह
अपना गणित करता रहा

औ मर गया.....
वह सघन झाड़ी के कंटीले
तम-बिवर में
मरे पक्षी-सा
विदा ही हो गया
वह ज्योति अनजानी सदा को सो गयी
यह क्यो हुआ! क्यों यह हुआ!!
मैं ब्रह्मराक्षस का सजन-उर शिष्य
होना चाहता
जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य,
उसकी वेदना का स्रोत
संगत, पूर्ण निष्कर्षों तलक पहुंचा सकूं ।

प्रसंग -

प्रस्तुत काव्यांश में कवि ब्रह्मराक्षस की ट्रैजेडी पर आहत और दुखी है । वह कहता है कि ऐसा क्यों हुआ? अब वह उसके अधूरे कार्य पूरे करना चाहता है ।

व्याख्या -

कवि कहता है कि ब्रह्मराक्षस बावड़ी में एकाकी प्रतीकों का सहारा लेकर समस्याओं के निराकरण ढूंढता रहा है । उस बावड़ी रूपी कोठरी में उसने अपना तमाम जोड़-बाकी और गणित एकाकी ही किया । यह सब करते-करते वह एकाकी मर गया । उसकी विदाई संसार से ऐसे हुई जैसे किसी कंटीली झाडी के अंधेरे बिल मे कोई पक्षी एकाकी मर जाता है । इस तरह ब्रह्मराक्षस के रूप में वह अपरिचित ज्योति हमेशा के लिए बुझ गई । कवि दुखी होकर कहता है कि ऐसा क्यों हुआ? कवि कहता है कि वह ब्रह्मराक्षस का सहृदय शिष्य होना चाहता है । वह करूणा से आप्लावित होकर ब्रह्मराक्षस के कार्यो की युक्तिसंगत परिणति तक ले जाना चाहता

विशेष -

1. प्रस्तुत काव्यांश इस कविता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश है । खास तौर इसकी अंतिम पंक्तियों का एक एक शब्द सार्थक है । यहां 'सजल-उर' का आशय करुणा से आप्लावित है । 'अधूरा कार्य' से आशय समाजवादी आदर्शो के अनुसार व्यक्तित्व निर्माण है ।
2. प्रस्तुत काव्यांश से मुक्तिबोध यह भी स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य योनि में ब्रह्मराक्षस को अपनी गलतियों के कारण वांछित सफलता नहीं मिली । इस कारण ही वह ब्रह्मराक्षस हुआ और अपने कार्य के अधूरे रह जाने के कारण निरंतर बेचैन और अवसादग्रस्त रहा ।

इस तरह की मानवीय अंतर्कथाएं बहुत प्यारी है । कविता के अंत में कवि करुणा से आप्लावित होकर ब्रह्मराक्षस का शिष्य होने की इच्छा व्यक्त करता है और उसकी गलतियों से सबक लेकर युक्तिसंगत निष्कर्षो तक पहुंचना चाहता है ।

7.5 शब्दावली

परिव्यक्त – छोड़ी हुई, जहां आवागमन बंद हो ।

औदुम्बर	–	गूलर । विगत-व्यतीत ।
आवर्त	–	चक्कर, भंवर ।
ट्रैजेडी	–	दुखांत नाटक ।
आम्यांतर	–	भीतर, हृदयस्थल ।
उद्भ्रांत	–	उद्विग्न ।
बिवर	–	बिल ।
सजल-डर	–	करूणा से आप्लावित हदय ।
पुष्प तारे	–	पुष्प रूपी तारे ।
कन्हेर	–	एक प्रकार का पुष्प वृक्ष ।
रवि रश्मि	–	सूर्य की किरण ।
कंटकित	–	कंटीला ।
ओज	–	शक्ति, उर्जा, दीप्ति ।
प्रासाद-	–	महल

7.6 सारांश

मुक्तिबोध मानवीय अस्मिता, आत्मसंघर्ष और प्रखर राजनीतिक चेतना के रचनाकार थे । उन्होंने प्रगतिशील कविता और नयी कविता के बीच सेतु का कार्य किया । 'ब्रह्मराक्षस' उनकी विख्यात और चर्चित लंबी कविता है, जो अब क्लासिक का दर्जा पा चुकी है । यह कविता मध्यवर्गीय प्रगतिशील बुद्धिजीवी के उच्चादर्श के लिए आत्मसंघर्ष और उसकी असफलता का जीवंत चित्रण करती है । इसमें ब्रह्मराक्षस की मिथकीय अवधारणा को फैंटेसी में सम्मूर्त किया गया है । कविता की शुरुआत शहर के एक तरफ स्थित उस निर्जन बावड़ी से होती है, जिसमें ब्रह्मराक्षस का निवास है । यह बावड़ी बहुत भयावह है । इसकी सीढियाँ इसके अंधेरे और गहरे जल में डूबी हुई है । इस बावड़ी के इर्दगिर्द कच्ची और हरी सुगंध फैली हुई है । इसके चारों ओर गूलर के पेड़ है, जिन पर घुग्घुओं घोसले लटके हुए हैं । इस बावड़ी में पाप छाया के बोध से ग्रस्त ब्रह्मराक्षस निरंतर नहाता रहता है । वह अपने शरीर की मलीनता का धोने का असफल प्रयास करता रहता है । ब्रह्मराक्षस बुद्धिजीवी का प्रेत है, इसलिए वह स्तोत्रपाठ करता है, मंत्रोच्चार करता है और दर्शनिकों के विचारों का आख्यान-प्रत्याख्यान करता रहता है । वह इस बात से अभिभूत और प्रसन्न है कि सूर्य, चंद्रमा और आकाश ने उसकी श्रेष्ठता स्वीकार कर ली है ।

कविता के दूसरे खंड में मुक्तिबोध इस ब्रह्मराक्षस की ट्रैजेडी बयान करते हैं । वह कहते है कि ब्रह्मराक्षस जब मनुष्य योनि में था तो वह पूँजीवादी व्यक्तित्व को छोडकर आदर्श समाजवादी व्यक्तित्व प्राप्त करने के लिए संघर्षरत था । उसका यह आदर्श अतिरेकवादी था, इसलिए वह अपना वांछित पाने में असफल रहा और वह मरणोपरांत ब्रह्मराक्षस हो गया । उसकी मृत्यु जीवन की समस्याओं के गणित में उलझ कर हुई । कवि ब्रह्मराक्षस की इस ट्रैजेडी से दुखी है । वह उसके साथ तदाकार होकर उसको उसके महत्व की जानकारी देना चाहता है । वह कहता है कि इस तरह के प्रयासों से ही मानवीय संस्कृति का विकास होता है । उसे

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मुक्तिबोध के कृति व्यक्तित्व का परिचय दीजिए ।
2. 'ब्रह्मराक्षस' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए ।
3. 'ब्रह्मराक्षस' कविता के पहले खंड में वर्णित बावड़ी को अपने शब्दों मे चित्रित कीजिए ।
4. "फिर भी मेल!!" इस पंक्ति का निहितार्थ समझाइए ।
5. "मानवी अंतर्कथाए बहुत प्यारी है । " इस पंक्ति में मुक्तिबोध का आशय समझाइए ।
6. "ऐसी ट्रैजेडी है नीच!!" इस पंक्ति की भावार्थ स्पष्ट कीजिए ।
7. दशमलव बिंदुओं से मुक्तिबोध का क्या आशय है?
8. 'यह क्यों हुआ!!' पंक्ति में कवि का आशय स्पष्ट कीजिए ।
9. पसरे हुए उलझे गणित मैदान में पंक्ति में कवि क्या कहना चाहता है' ?

7.8 संदर्भ ग्रंथ

1. नंदकिशोर नवल, मुक्तिबोध: ज्ञान और संवेदना, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005
2. नंदकिशोर नवल; मुक्तिबोध: कवि छवि, नीलाम प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002
3. नीलकांत, मुक्तिबोध की तीन लंबी कविताएं, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999
4. अज्ञेय (संपादक), तारसप्तक भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995
5. नामवरसिंह; कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली 2006
6. प्रभात त्रिपाठी, प्रतिबद्धता और मुक्तिबोध, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर 1990

इकाई -8

'ब्रह्मराक्षस' कविता का अनुभूति एवं अभिव्यंजनात्मक पक्ष

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 पृष्ठभूमि और प्रभाव

8.3 मिथकीय आधार

8.4 आत्मसंघर्ष और ट्रैजेडी

8.5 आत्मसंघर्ष और ट्रैजेडी से सहानुभूति

8.6 फैंटेसी और यथार्थ

8.7 रूपबंध और भाषा

8.8 सारांश

8.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.10 संदर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हिंदी के विख्यात कवि गजानन माधव मुक्तिबोध की लंबी कविता 'ब्रह्मराक्षस' की अंतर्वस्तु और अभिव्यंजना पर विचार किया गया है । यह कविता एक मध्यवर्गीय प्रगतिशील बुद्धिजीवी के पूंजीवादी व्यक्तित्व से समाजवादी व्यक्तित्व में रूपांतरण में असफल रहने की प्रक्रिया को मिथकीय फैंटेसी और लंबी कविता के रूप विधान में चित्रित करती है । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- कविता की रचना की पृष्ठभूमि, प्रेरणा, प्रभाव आदि के बारे में जान सकेंगे ।
- कविता की अंतर्वस्तु से परिचित हो सकेंगे ।
- कविता की अभिव्यंजना के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण कर सकेंगे ।
- कविता में अतर्नियोजित फैंटेसी और लंबी कविता के रूप विधान को समझ सकेंगे ।

8.1 प्रस्तावना

गजानन माधव मुक्तिबोध मानवीय अस्मिता, आत्मसंघर्ष और प्रखर राजनीतिक चेतना के कवि थे । उन्होंने प्रगतिशील कविता के आदर्शो को नयी कविता में ढालकर नयी शुरुआत की । नयी कविता को उसकी रुग्ण व्यक्तिवादिता और जड़ीभूत सौंदर्य अभिरुचि से मुक्तिबोध ने ही मुक्त किया । 'ब्रह्मराक्षस' उनकी 'अंधेरे में' के बाद सर्वाधिक चर्चित कविताओं में से एक है । यह धारणा है कि पापकर्म करने वाला ब्राह्मण मरने के बाद प्रेत योनि में जन्म लेता है और ब्रह्मराक्षस कहलाता है । मुक्तिबोध ने इस मिथकीय धारणा का इस्तेमाल मध्यवर्गीय प्रगतिशील बुद्धिजीवी के आत्संघर्ष और ट्रैजेडी को रूपायित करने में किया है । ब्रह्मराक्षस मनुष्य योनि में प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी था, जो जीवन की समस्याओं के गणित में उलझकर मर गया और ब्रह्मराक्षस हो गया । कविता

में मुक्तिबोध इस प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के आत्मसंघर्ष और ट्रैजेडी को फैंटेसी के माध्यम से चित्रित करते है । इस इकाई में इस कविता की अर्तवस्तु और अभिव्यक्ति विधान पर रोशनी डाली गई है ।

8.2 पृष्ठभूमि और प्रभाव

'ब्रह्मराक्षस' कविता सर्वप्रथम 1957 में बनारस से प्रकाशित होने वाली साहित्यिक पत्रिका 'कवि' में प्रकाशित हुई थी और तब इसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया था । बाद में मुक्तिबोध के मरणोपरांत 1964 यह कविता उनके पहले काव्य संकलन 'चांद का मुंह टेढ़ा है' में संकलित की गई और इसे समालोचकों ने 'अंधेरे में' के बाद मुक्तिबोध की दूसरी महत्वपूर्ण कविता का दर्जा दिया । मुक्तिबोध पर मार्क्सवाद, समाजवाद, अस्तित्ववाद, राममनोहर लोहिया, कीर्केगार्ड, अरविंद आदि सभी का गहरा प्रभाव रहा । इन सबके प्रभाव से उनका व्यक्तित्व खास तरह का बना । आत्मसंघर्ष उनकी लंबी कविताओं की धुरि है । यह आत्मसंघर्ष 'ब्रह्मराक्षस' में भी है । 'तारसप्तक' को अपनी कविताएँ भेजते हुए मुक्तिबोध ने अपने पिछले दिनों के जीवन पर निगाह डाली और लिखा कि " मानसिक द्वंद्व मेरे व्यक्तित्व में बद्धमूल है । " मार्क्सवाद में मुक्तिबोध की गहरी आस्था थी, लेकिन वे संपूर्ण मार्क्सवादी नहीं थे । मार्क्सवादी समझ ने उनको इतिहास पर एकाग्र किया । वे एक जगह लिखते है कि "ऐतिहासिक अनुभूति वह कमियाँ है, जो मनुष्य का संबंध सूर्य के विस्फोटकारी केन्द्र से स्थापित कर देती है । यह वह जादू है, जो मनुष्य को महसूस कराता है कि विश्व परिवर्तन की मूलभूत प्रक्रियाओं का वह सारभूत अंग है । ऐतिहासिक अनुभूति के द्वारा मनुष्य के आयाम असीम हो जाते हैं- उसका दिक् और काल अनंत हो जाता है" मुक्तिबोध प्रगतिशील लेखक संघ से भी जुडे और इसकी गतिविधियों में भी सक्रिय रहे । उन्होंने अपने निबंधों में अपने को प्रगतिशील और मार्क्सवादी कहा है, लेकिन कुछ लोग उन्हें मार्क्सवादी नहीं मानते । मार्क्सवाद के प्रति उनका नजरिया आलोचनात्मक था । त्रिलोचन के अनुसार "मुक्तिबोध की मार्क्सवाद की अवधारणा औरों से वैसे ही भिन्न है, जैसे बहुत से रूसी समीक्षकों और चिंतकों की आपस में भिन्न दिखाई पड़ती है । मूल सिद्धांत एक होते हुए भी समझने-समझाने और आचरण करने में समय और परिस्थिति के अनुसार व्यक्ति भेद से भिन्नता आ सकती है । मुक्तिबोध की कविताएँ अन्य प्रगतिशील कवियों से भिन्न होते हुए भी प्रगति विरोधी नहीं है ।" 'ब्रह्मराक्षस' में भी मुक्तिबोध का दृष्टिकोण मार्क्सवाद के प्रति आलोचनात्मक है । मुक्तिबोध की लंबी कविताओं पर उनके अपने किस्म के रहस्यवाद का भी प्रभाव है । मुक्तिबोध का यह रहस्यवाद कबीर, टैगोर आदि के रहस्यवाद से भिन्न है । रहस्यवाद के बहुत से पुराने प्रतीकों का इस्तेमाल मुक्तिबोध करते हैं । वे इसके लिए जासूसी-ऐन्ययारी उपन्यासों की शब्दावली भी इस्तेमाल करते हैं । इन सबसे वे रहस्यवादी और जादुई माहौल अपनी कविताओं में रचते है । पुराने कुंए, बावड़ी, खंडहर, वीरान पठार, खड्ड, अंधेरी तंग गलियां, घने बरगद आदि उनकी लंबी कविताओं के स्थायी उपकरण हैं । 'ब्रह्मराक्षस' में शहर के एक तरफ स्थित निर्जन बावड़ी का जो भयावह दृश्य मुक्तिबोध खींचते हैं, उसमें इसी तरह की रहस्यवादी और जादुई शब्दावली प्रयुक्त हुई हैं । रामविलास शर्मा ने मुक्तिबोध पर एक साथ मनोविश्लेषणवाद, रहस्यवाद, अस्तित्ववाद और

मार्क्सवाद सभी प्रभाव सिद्ध किए । उनके अनुसार मुक्तिबोध इन सबमें सांमजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते है । 'ब्रह्मराक्षस' में मुक्तिबोध की यह चेष्टा साफ दिखाई पड़ती है ।

8.3 मिथकीय आधार

यह कविता मिथक पर आधारित है । मिथक या पुराकथा किसी प्राचीन कथा, अवधारणा या विश्वास को कहते हैं, जिसका वर्णन युक्तिसंगत नहीं होता और जिसमें अतिरंजना का तत्त्व सर्वोपरि होता है । भारतीय शास्त्रों और कथाओं में इस तरह के मिथकों की भरमार है । आधुनिक लेखकों ने इन मिथकों का रचनात्मक इस्तेमाल अपने समय और समाज के यथार्थ को रूपायित करने के लिए खूब किया है ।

सीधे अपने समय और समाज का आख्यान या वर्णन मुश्किल काम है-इसमे तटस्थता कम हो जाती है-इसलिए रचनाकार अपने समय और समाज के यथार्थ को समझने-समझाने के लिए मिथकों का उपयोग करते हैं । मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में कभी खंड, तो कभी संपूर्ण मिथकों का इस्तेमाल किया है । 'ब्रह्मराक्षस' में भारतीय शास्त्रों में उल्लिखित ब्रह्मराक्षस के मिथक का उपयोग आधुनिक मध्यवर्गीय प्रगतिशील बुद्धिजीवी मनुष्य के आत्मसंघर्ष और ट्रैजेडी को व्यक्त करने के लिए किया गया है । ब्रह्मराक्षस की अवधारणा -भारतीय शास्त्रों में दो स्थानों पर आई हैं । पहला उल्लेख 'याज्ञवलक्य स्मृति' और दूसरा 'मनुस्मृति' में है । दोनों उल्लेखों का आशय कमोबेश समान है । कहा गया है कि मनुष्य योनि में दुराचरण करने वाला-धन का अपहरण करने वाला और परस्त्रीगामी ब्राह्मण ब्रह्मराक्षस के रूप में जन्म लेता है । ये उल्लेख इस प्रकार हैं:

1. परस्य योशिंत हत्वा ब्रह्मस्वमयहत्य च ।
   अरण्ये निर्जले देशे भवित ब्रह्मराक्षस: । । (याज्ञवलक्य स्मृति-3.212)

अर्थात् परायी स्त्री और ब्राह्मण के धन का अपहरण करने वाला, वन में निर्जल स्थान पर रहने वाला ब्रह्मराक्षस होकर जन्म लेता है ।

3. संयोग पतितैर्गत्वा परस्यैव च योशितम् ।
   अपहत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षस: । । (मनुस्मृति- 12.60)

अर्थात् पतितों से संसर्ग करने वाला, परस्त्रीगामी और ब्राह्मण के धन को चुराने वाला ब्रह्मराक्षस होता है ।

8.4 आत्मसंघर्ष और ट्रैजेडी

केवल मिथक का आख्यान किसी रचनाकार का लक्ष्य नहीं होता । रचनाकार अपने समय और समाज के यथार्थ को समझने-समझाने के लिए मिथक का माध्यम चुनता है । मुक्तिबोध ने भी 'ब्रह्मराक्षस' में यही किया है । वे ब्रह्मराक्षस के शास्त्रवर्णित आख्यान या मिथक का उपयोग आधुनिक प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के आत्मसंघर्ष और ट्रैजेडी को चित्रित करने के लिए करते हैं । दरअसल ब्रह्मराक्षस मनुष्य योनि में एक मध्यवर्गीय प्रगतिशील बुद्धिजीवी था । वह सत्यान्वेशण में लगा हुआ था- वह जीवन की बुनियादी समस्याओं का समाधान पाना चाहता था । नंदकिशोर नवल के अनुसार "उसकी समस्या यह थी कि वह पूंजीवाद और समाजवाद में से समाजवाद को अंगीकार कर उसके अनुरूप अपने आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहता था । " उसकी इच्छा थी कि

उसके भाव और व्यवहार तथा विचार और कार्य के बीच सामंजस्य स्थापित हो जाए । वह समस्याओं के निराकरण में गणित जैसी युक्तियुक्तता की कामना करता था । उसका आत्मसंघर्ष किसी भव्य प्रासाद की अंधेरी सीढ़ियों पर उतरने-चढ़ने जैसा मुश्किल था । उसके आदर्श अतिरेकवादी थे, इसलिए उनमें थोड़ी सफलता और ज्यादा असफलता थी । वह अपने आदर्शों की प्राप्ति के लिए कई चिंतकों-पंडितों के पास गया, लेकिन उसे कहीं भी सफलता नहीं मिली । अंतत: यह सत्यान्देशी जीवन की इन समस्याओं के गणित में उलझकर असफल मर गया । उसकी मृत्यु का मुक्तिबोध ने बहुत प्रभावशाली वर्णन किया है:

सितारे आसमानी छोर पर फैले हुए
अनगिन दशमलव-से
दशमलव-बिंदुओं के सर्वत:
फैले हुए उलझे गणित मैदान में
मारा गया, वह काम आया
और पसरा पड़ा है... .....
वक्ष-बाहे खुली फैलीं
एक शोधक की ।

मुक्तिबोध इस कविता में इस सत्यान्वेशी की ट्रैजेडी के कारणों की भी गहरी पड़ताल करते हैं । वे कहते हैं कि उसकी असफलता का कारण जीवन की समस्याओं की उसकी गलत समझ थी । वह अपनी लघुता को महत्ता के चरणों में समर्पित करना चाहता था- वह अपने व्यक्तित्व बोध को विस्मृत कर सार्वजनीन व्यक्तित्व प्राप्त करना चाहता था । उसकी व्यक्तित्व के रूपांतरण की यह चेष्टा गलत थी, क्योंकि व्यक्तित्व का परित्याग नहीं, विकास होता है । इस तरह वह आत्म और विश्व और बाहर और भीतर के गलत द्वंद्व में उलझा रहा । कवि उसकी इस ट्रैजेडी के संबंध में कविता में एक जगह लिखता है-

आत्मचेतस् किंतु इस
व्यक्तित्व में थी प्राणमय अनबन.....
विश्वचेतस् बे-बनाव!!
महत्ता के चरण में था
विशादाकुल मन!.....
मेरा उसी से उन दिनों होता मिलन यदि
तो व्यथा उसकी स्वयं जीकर
बताता मैं उसे उसका स्वयं का मूल्य
" उसकी महत्ता!
वह उसका महत्ता का
हम सरीखों के लिए उपयोग
उस आंतरिकता का बताता मैं महत्व!!
पिस गया वह भीतरी

औ बाहरी दो पाटों के बीच
कैसी ट्रैजेडी है नीच!!

इसी तरह इस सत्यान्वेशी की एक दूसरी कमजोरी की ओर भी संकेत मुक्तिबोध इस कविता में करते हैं । वे मानते हैं कि अपने विचारे हुए को कार्यरूप देने के लिए व्यवहार क्षेत्र में उतरना जरूरी है । इसके लिए जनसंघर्षों की समझ और उनमें भागीदारी जरूरी है । इस सत्यान्वेशी को व्यवहार क्षेत्र का अनुभव बिल्कुल नहीं था । मुक्तिबोध सत्यान्वेशी बुद्धिजीवी की इस कमजोरी का बयान इस तरह करते हैं:

बावड़ी में वह स्वयं
पागल प्रतीकों में निरंतर कह रहा
वह कोठरी में किस तरह
अपना गणित करता रहा
औ मर गया.....
वह सघन झाड़ी के कंटीले
तय बिवर में
मरे पक्षी-सा
विदा ही हो गया

8.5 आत्मसंघर्ष और ट्रैजेडी से सहानुभूति

आधुनिक प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के उक्त वर्णित आत्मसंघर्ष और ट्रैजेडी के प्रति मुक्तिबोध का नजरिया सहानुभूति और सराहना का है । दरअसल आत्मसंघर्ष और आत्मान्वेषण मुक्तिबोध के वैयक्तिक जीवन में भी निरंतर था । यह बात उन्होंने कई बार स्यवं भी स्वीकार की । 'तार सप्तंक को अपनी कविताएं भेजते हुए उन्होंने लिखा था कि "मानसिक द्वंद्व मेरे व्यक्तित्व में बद्धमूल है । "नामवरसिंह ने भी उनकी कविता को आत्मसंघर्ष की कविता कहा है । ब्रह्मराक्षस का आत्मसंघर्ष दरअसल मुक्तिबोध का अपना निजी आत्मसंघर्ष भी था । वे 'ब्रह्मराक्षस' में इसीलिए प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के आत्मसंघर्ष की कमजोरियां गिनाने के बावजूद मानवीय सभ्यता और संस्कृति के लिए उसको जरूरी मानते हैं । वे कहते हैं कि इस तरह के आत्मसंघर्षों से मानवीय सभ्यता और संस्कृति आगे बढ़ती है । कविता में एक जगह वे कहते हैं-

.....अतिरेकवादी पूर्णता
की वे व्यथाएं बहुत प्यारी हैं.....
ज्यामितिक संगति-गणित
की दृष्टि से कृत
भव्य नैतिक मान
आत्मचेतन सूक्ष्म नैतिक भान.....
.....अतिरेकवादी पूर्णता की तृष्टि करना
कब रहा आसान
मानवी अंतर्कथाएं बहुत प्यारी है ।!

इस कविता का अंतिम अंश इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है । ब्रह्मराक्षस के प्रति कवि की सहानुभूति यहां चरम पर है । वह उसका करुणा से आप्लावित शिष्य होना चाहता है । वह इस सत्यान्देशी के अधूरे कार्यो को पूरा करना चाहता है । वह जानता है कि इस सत्यान्वेशी ने कई गलतियां की थीं, जिनके कारण उसे उसका वांछित प्राप्त नहीं हुआ और इस कारण उसे प्रेत योनि प्राप्त हुई । कवि अपने आत्मसंघर्ष और आत्मान्वेशण को इन गलतियों से मुक्ति रखना चाहता है । कविता की ये अंतिम पंक्तियां इस तरह हैं-

मैं ब्रह्मराक्षस का सजल-उर शिष्य
होना चाहता
जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य
उसकी वेदना का स्रोत,
संगत, पूर्ण निष्कर्षो तलक
पहुंचा सकूं ।

8.6 फैंटेसी और यथार्थ

'ब्रह्मराक्षस' कविता में मुक्तिबोध फैंटेसी का रचनात्मक इस्तेमाल करते हैं । फैंटेसी नंदकिशोर नवल के अनुसार "वह तर्कहीन कल्पना है, जो सबसे अधिक स्वप्न में मिलती है ।' फैंटेसी में घटनाए तर्कातीत ढंग से घटती हैं और उनमें युक्तिसंगत पूर्वापर क्रम नहीं होता, जिससे सब कुछ मायावी और जादुई लगता है । फैंटेसी को इसी कारण मनोलीला भी कहते है । फैंटेसी मुक्तिबोध की कविताओं का स्थायी लक्षण है । इसके कारणों की पड़ताल करते हुए कवि शमशेर बहादुर सिंह ने एक जगह लिखा है कि "गजानन माधव मुक्तिबोध वैज्ञानिक साहित्य बहुत पढ़ते थे । निम्न मध्यवर्गीय कटु संघर्षो पर दीर्घकालीन चिंतन की ऊहापोह ने एक विचित्र भुतहा लोक से उनकी कल्पना को भर दिया है । ये कटु संघर्ष अपने ही जीवन और परिवार के रहे हैं । अत: कल्पना का यह भुतहा लोक अत्यधिक यथार्थ है, जैसा कि उनकी पंक्तियों के स्नायविक तनाव से स्पष्ट है । " मुक्तिबोध की फैंटेसी की खासियत यह है कि जादुई माहौल के बावजूद उसमें विचार और तर्क पद्धति निष्क्रिय नहीं हो पाती । 'ब्रह्मराक्षस' में फैंटेसी रूपकात्मक है- उसमें प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी को ब्रह्मराक्षस का रूप दिया गया है और कवि आद्यंत इसका निर्वाह करता है । इसके पहले खंड में शहर के एक तरफ स्थित निर्जन बावड़ी और उसमें रहने वाले ब्रह्मराक्षस का अतिकाल्पनिक वर्णन है । दूसरे खंड में फैंटेसी अपेक्षाकृत कम है, क्योंकि इसमें कवि ब्रह्मराक्षस की ट्रैजेडी बयान करता है । फैंटेसी के प्रयोग के बावजूद 'ब्रह्मराक्षस' में यथार्थ विकृत और अतिरंजित नहीं लगता, क्योंकि मुक्तिबोध की विचार प्रकिया इससे निष्क्रिय नहीं होती । कविता में ब्रह्मराक्षस का प्रेतोचित आचरण और अन्य प्रसंग फैंटेसी में नियोजित होने के बावजूद भी अतिकल्पना नहीं लगते । इस कविता में यथार्थ का फैंटेसी रूप में और ठीक उसी तरह फैंटेसी का बिल्कुल यथार्थ के रूप में चित्रण कर मुक्तिबोध ने यथार्थ और फैंटेसी, दोनों का प्रभावी इस्तेमाल किया है ।

8.7 रूपबंध और भाषा

'ब्रह्मराक्षस' कविता का रूपबंध लंबी कविता का है । मुक्तिबोध से पहले निराला लंबी कविताएँ लिख चुके थे । मुक्तिबोध के समकालीन कई कवियों ने भी इस रूपबंध पर अपना हाथ आजमाया था । मुक्तिबोध ने लंबी कविता के रूपबंध की जरूरत पर विचार करते हुए एक जगह लिखा है कि "जो कविता आवेशमूलक होती है, वह एक बार अपने को प्रकट करके खत्म हो जाती है, लेकिन जिसमें कवि आवेष के कारण और उस कारण के कारण की तलाश करने लगता है, वह उस तरह से समाप्त नहीं होती, बल्कि उसे समाप्त करना कवि के लिए एक समस्या होती है । " मुक्तिबोध की कविताओं में आवेश है और साथ ही आवेश के कारणों की परत-दर परत पड़ताल भी है, इसलिए वे लंबी होती जाती हैं । 'ब्रह्मराक्षस' कविता भी इस कारण लंबी हो गई है । इसमें पहले बावड़ी और उसमें रहने वाले ब्रह्मराक्षस का वर्णन है । मुक्तिबोध आगे स्पष्ट करते हैं कि वह ब्रह्मराक्षस क्यों बना और पाप ग्रंथि से क्यों ग्रस्त है । फिर वे कहते हैं कि उन्हें ब्रह्मराक्षस से सहानुभूति है । आगे वे इसके कारणों का ब्यौरा देते हैं । अंत में वे ब्रह्मराक्षस का शिष्य बनने की इच्छा व्यक्त करते हैं, लेकिन आगे वे इसका कारण भी बताते हैं । इस कारण कविता लंबी होती चली जाती है ।

'ब्रह्मराक्षस' की भाषा गूढ़ और सांकेतिक है । इसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दों का जमकर इस्तेमाल हुआ है, लेकिन कवि यथावश्यकता दूसरे शब्दों का इस्तेमाल भी करता है । औदुम्बर, आवर्त, परिव्यक्त, अनुमानिता, मंत्रोच्चार, उद्भ्रांत, ज्यामितिक, अंतर्कथाएं, व्रण, कंटकित, आत्मचेतस्, विश्वचेतस्, तम-बिवर जैसे शब्दों के साथ खटके-सी, टगर, कन्हेर, टेक, जीना, नीच, बे-बनाव जैसे सामान्य लोक शब्दों का प्रयोग भी 'ब्रह्मराक्षस' में मिलता है । 'ब्रह्मराक्षस' की सबसे बड़ी विशेषता इसमें प्रयुक्त अवधारणात्मक शब्दावली है । अतिरेकवादी पूर्णता, ज्यामितिक संगति-गणित की दृष्टि से कृत, भाव-संगत-तर्क संगत कार्य-सामंजस्य योजित समीकरणों का गणित, धन अभिभूत अंतःकरण, सजल-उर, तुम-बिवर, अच्छे-बुरे बीच, अच्छे व उससे अधिक अच्छे बीच जैसी दुरुह और गूढ पदावली से यह कविता अर्थगर्भित हुई है । इस कविता की वाक्य योजना भी मुक्तिबोध की अन्य लंबी कविताओं की तरह असाधारण है । इसके वाक्य बहुत लंबे हो गए हैं । फैंटेसी ने भी इस कविता की अभिव्यक्ति को खास तरह से गढ़ा है । अति कल्पना के लिए लगता है, खास तरह के शब्द इसमें आग्रहपूर्वक प्रयुक्त हुए हैं । कुछ आलोचकों ने इस कारण मुक्तिबोध की अभिव्यक्ति और भाषा को उबड़खाबड़ की संज्ञा दी है, जो ठीक नहीं है । आलोचक नंदकिशोर नवल के शब्द उधार लेकर कहें तो कहा जा सकता है कि "मुक्तिबोध ने संघर्ष करते हुए अपने लिए जो भाषा उपलब्ध की, वह छायावादी तो क्या होगी, प्रचलित 'यथार्थवादी' काव्य भाषा से भी बहुत आगे की भाषा है, जिसमें अनेक सम-विषम स्तर हैं ।"

8.8 सारांश

'ब्रह्मराक्षस' गजानन माधव मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' के बाद सबसे अधिक चर्चित और समादृत कविता है । 1957 से 1963 के बीच मुक्तिबोध ने लंबी कविताएं लिखी थीं । इस कविता की रचना इसी दौरान हुई । इस कविता की रचना के दौरान मुक्तिबोध मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, रहस्यवाद और

कई दार्शनिको-चिंतकों से प्रभावित थे । इन सबका आशिक प्रभाव इस रचना पर है । इस कविता का आधार ब्रह्मराक्षस की मिथकीय अवधारणा है । याज्ञवलक्य स्मृति और मनुस्मृति में उल्लेख है कि मनुष्य योनि में दुराचरण करने वाले, धन और स्त्री का अपहरण करने वाले और पतितों से संसर्ग करने वाले ब्राह्मण को मृत्यु के बाद प्रेतयोनि मिलती है और वह ब्रह्मराक्षस कहलाता है । मुक्तिबोध ने इस मिथक का इस्तेमाल आधुनिक प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के आत्म संघर्ष और ट्रैजेडी को चित्रित करने के लिए किया है । यह बुद्धिजीवी मनुष्य योनि में सत्यान्वेशी था, लेकिन उसे निरंतर आत्मान्वेशण के बाद भी सत्य तक पहुंचने में सफलता नहीं मिली और वह असफलता का बोध लिए मर गया और ब्रह्मराक्षस हो गया । मुक्तिबोध को ब्रह्मराक्षस की इस ट्रैजेडी और आत्मसंघर्ष से सहानुभूति है । वे कहते हैं कि इस तरह के आत्मसंघर्ष से ही मानवीय संस्कृति विकसित होती हे । इस कविता में फैंटेसी और यथार्थ, दोनों का प्रभावी इस्तेमाल हुआ है । फैंटेसी मुक्तिबोध की कविताओं का स्थायी लक्षण है और इस कविता में भी इसकी प्रभावी भूमिका है । इस कविता में फैंटेसी निर्णायक हैसियत में होने के बावजूद यथार्थ को विकृत और अतिरंजित नहीं करती । यह कविता लंबी कविता के रूपबंध में है । दरअसल मुक्तिबोध आवेश को कार्य-करण श्रृंखला में रखते हैं, इसलिए उनकी कविताएं अक्सर लंबी हो जाती, हैं । 'ब्रह्मराक्षस' में भी ऐसा ही हुआ है । 'ब्रह्मराक्षस' की अभिव्यक्ति संश्लिष्ट और दुरुह है । इसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दों और अवधारणात्म पदावली का जमकर इस्तेमाल हुआ है।

8.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'ब्रह्मराक्षस' कविता की पृष्ठभूमि, प्रेरणा और प्रभाव पर टिप्पणी लिखिए ।
2. 'ब्रह्मराक्षस' के मिथकीय आधार पर प्रकाश डालिए ।
3. 'ब्रह्मराक्षस' की अंतर्वस्तु का सोदाहरण विवेचन कीजिए ।
4. 'ब्रह्मराक्षस' एक मध्यवर्गीय प्रगतिशील बुद्धिजीवी के आत्मसंघर्ष और ट्रैजेडी का जीवंत दस्तावेज है । समझाइए ।
5. 'ब्रह्मराक्षस' के साथ मुक्तिबोध की सहानुभूति की सोदाहरण विवेचना कीजिए ।
6. फैंटेसी का आशय स्पष्ट करते हुए 'ब्रह्मराक्षस' में इसके प्रयोग की समीक्षा कीजिए ।
7. 'ब्रह्मराक्षस' के रूपबंध पर विचार कीजिए ।
8. लंबी कविता का आशय स्पष्ट करते हुए सिद्ध कीजिए कि 'ब्रह्मराक्षस' एक लंबी कविता है ।
9. 'ब्रह्मराक्षस' की भाषा की विशेषताओं पर सोदाहरण प्रकाश डालिए ।

8.10 संदर्भ ग्रंथ

1. नंदकिशोर नवल; मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005 ।
2. नंदकिशोर नवल; मुक्तिबोध: कवि छवि, नीलाम प्रकाशन; इलाहाबाद, 2002 ।
3. नीलकांत; मुक्तिबोध की तीन लंबी कविताएँ, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999 ।
4. अज्ञेय(संपादक) तारसप्तक; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 ।
5. नामवरसिंह; कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली 2006 ।
6. प्रभात त्रिपाठी; प्रतिबद्धता और मुक्तिबोध का काव्य, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर 1990 ।
7. गजाननमाधव मुक्तिबोध; चाँद का मुंह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985 ।

8. गजाननमाधव मुक्तिबोध; मुक्तिबोध रचनाबली (पेपर बैक), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995 ।
9. आशोक वाजपेयी; फिलहाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973 ।

इकाई - 9

'दो चट्टानें' (हरिवंशराय बच्चन) की व्याख्या व विवेचन

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 कवि-परिचय

9.2.1 जीवन-परिचय

9.2.2 रचना-परिचय

9.3. 'दो चट्टानें' सामान्य परिचय

9.4. 'दो चट्टानें'-काव्य वाचन और ससंदर्भ व्याख्या

9.5 दो चट्टानें संक्षिप्त विवेचन

9.6. सारांश

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.8. सन्दर्भ ग्रन्थ

9.0 उद्देश्य

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा से सम्बद्ध वैयक्तिक चेतनावादी सुविख्यात कवि डॉ. हरिवंशराय बच्चन मूलत: हालावादी एवं प्रेम व मरती की काव्यधारा के कवि हैं, तदपि उनका परवर्ती काव्य सांस्कृतिक बोध व यथार्थवादी या सामयिक चेतना को प्रस्तुत करता है । आप इस इकाई के द्वारा जान सकेंगे कि बच्चन ने सिर्फ उद्दाम प्रेम एवं वासना की ही बात नहीं की है अपितु भारतीय संस्कृति का प्रबल पक्ष लेते हुए अपनी प्रतिबद्धता भी व्यक्त की है । इस इकाई के द्वारा आप जान पाएँगे कि यूनानी संस्कृति व भारतीय संस्कृति के मूल में क्या अन्तर है । मिथक व प्रतीकों के द्वारा कविवर बच्चन ने कर्म सौन्दर्य की सार्थकता व सार्थक श्रम की महत्ता प्रतिपादित की है । हनुमान को आधार बनाकर कवि ने अपनी भावाभिव्यक्ति दी है । इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप-

- बच्चन के व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे ।
- बच्चन के रचना संसार को जान पाएँगे ।
- बच्चन कृत 'दो चट्टानें' से परिचित हो सकेंगे ।
- बच्चन रचित सांस्कृतिक बोध की रचना 'दो चट्टानें' को अनुभूत कर सकेंगे ।
- 'दो चट्टानें' के विशिष्टांशो की व्याख्या कर सकेंगे ।

9.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम प्रेम एवं मस्ती की स्वच्छन्दमार्गी काव्यधारा के वैयक्तिकतावादी कवि के रूप में विख्यात हालावादी डॉ. हरिवंशराय बच्चन के परवर्ती काव्य की प्रतिनिधि रचना 'दो चट्टानें' की चर्चा करेंगे । बच्चन यद्यपि भावुक एवं वैयक्तिक भावों के गीतकार-कवि के रूप में जाने जाते

हैं तदपि उनका परवर्ती काव्य सामयिक युग बोध एवं यथार्थ के अनुभवों से सम्पृक्त होकर सांस्कृतिक बोध को भी प्रस्तुत करता है । 'दो चट्टानें' वस्तुत: एक दीर्घ कविता है जो कि इसी नाम के संकलन में संकलित है । इसमें बच्चन ने भारतीय व यूनानी संस्कृति की तुलना कमश: हनुमान व सिसिफस से करते हुए भारतीय संस्कृति में निहित आस्थावादिता मूल्यवादिता कर्मठता व सार्थक श्रम का मण्डन कर यूनानी संस्कृति के प्रतीक सिसिफस की निरर्थक कर्मण्यता, भौतिक संस्कृति की शून्यता का खण्डन किया है । इस इकाई के माध्यम से एक ओर आप उक्त दोनों संस्कृतियों से परिचित होकर हनुमान व सिसिफस के व्यक्तित्व की गहराई से सुपरिचित हो सकेंगे वहीं दूसरी ओर व्याख्याओं के माध्यम से रचना की भाव विस्तीर्णता व गहनता से भी रूबरू हो पाएँगे ।

9.2. कवि-परिचय

9.2.1 जीवन परिचय

हालावाद के प्रवर्तक व वैयक्तिक प्रणयानुभूती उद्दाम वासना के गीतकार - कवि के रूप में विख्यात डॉ. हरिवंशराय बच्चन का जन्म 27 नवम्बर 1907 ई. को इलाहाबाद में प्रतापनारायण - सुरसती (सरस्वती) नामक दम्पति के यहाँ हुआ। बच्चन घर में इसलिए अधिक महत्व के साथ पले-बढ़े क्योंकि उनसे पूर्व की सभी पाँच संतानें अकाल कालग्रस्त हो गई थीं । 'बच्चन' नाम प्यार के कारण पड़ा । ये जाति से कायस्थ थे । शिक्षा घर पर ही माँ द्वारा उर्दू वर्णमाला सिखाने से शुरू हुई । औपचारिक शुरुआत पुरोहित जी एवं मौलवी साहब द्वारा हुई। जुलाई 1919 से 1922 तक कायस्थ पाठशाला में हाई स्कूल तक पढ़े । 1930 में अंग्रेजी से एमए. प्रथम वर्ष किया लेकिन पारिवारिक जिम्मेदारियों के चलते 1938 में एमए. पूर्ण हो सका । तदुपरान्त बी.टी. (टीचर्स ट्रेनिंग) कर 1954 में केम्ब्रिज वि.वि. (इंग्लैण्ड) से W.B.Eats पर पी. एच.डी. उपाधि प्राप्त की । बच्चन विदेश से यह डिग्री लेने वाले दूसरे भारतीय थे ।

बच्चन का आरंभिक जीवन मानसिक संताप, पारिवारिक कष्ट, व्यक्तिगत मुसीबत व आर्थिक संकटों व संघर्षो में बीता । प्रथम विवाह 1926 में 14 वर्षीय 'श्यामा' से हुआ जिसे वे प्यार से 'ज्वाय' कहकर खेल की सहेली मानते थे । बीमारी के चलते; आर्थिक संकट से सही इलाज न हो पाने से 17 नवम्बर 1936 को श्यामा का देहावसान हो गया । बच्चन का दूसरा विवाह 24 जनवरी 1942 को मीरपूर खास के सरदार की चौथी बेटी तेजी से लव मैरिज के रूप में हुआ। तेजी बच्चन ने पूरी आयु पाई और दिसम्बर 2007 में दिवंगत हुई।

वित्तीय संकटों के कारण बच्चन पढ़ाई के साथ साइकिल से जाकर ट्यूशन पढ़ाते थे । बी.ए. करने पर 'चाँद' पत्रिका से जुड़े । शीघ्र ही इसे छोड़कर सौ रूपये प्रतिमाह में 'पायनियर' प्रेस में एजेन्ट एवं संवाददाता बनना पड़ा । तीन महीनें की पायनियर की नौकरी के दौरान ही रूबाइयाँ फूटीं और तदुपरान्त पचास रूपये मासिक में 'अभ्युदय' प्रेस से जुड़ना पड़ा । जुलाई, 1934 में अग्रवाल विद्यालय में अध्यापन किया 1939 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के अस्थाई व्याख्याता बनें और 1941 में स्थाई हुए। 1955 में इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर हिन्दी प्रोड्यूसर के रूप में नियुक्त

हुए । तदुपरान्त 1955 में विदेश मन्त्रालय के हिन्दी प्रोड्यूसर के रूप में कार्य किया । 1966 से 1972 तक गाँधी-नेहरू परिवार से निकटता के कारण राज्यसभा सदस्य मनोनीत हुए ।

9.2.2. रचना -परिचय

बच्चन का साहित्यकार रूप कहानीकार रूप में प्रस्फुटित हुआ, जबकि उनकी कहानी 'हृदय की आंखे' विश्वविद्यालयी प्रतियोगिता में पुरस्कृत हुई। आगे चलकर एक और कहानी लिखी जिसकी भूमिका धीरेन्द्र वर्मा ने लिखी लेकिन वह छप नहीं सकी । निराश बच्चन ने इस तरह कहानी लेखन छोड़कर कविता- सृजन शुरू किया । बच्चन की प्रथम कविता जबलपुर की पत्रिका 'प्रेमा' में मध्याह्न शीर्षक से 1931 ई. में प्रकाशित हुई । प्रथम कविता संग्रह 'तेरा हार' 1932 में प्रकाशित हुआ । बच्चन ने कुल 24 मौलिक काव्यकृतियाँ, 10 अनूदित काव्य रचनाएँ, बाल कविताएँ अनेक गद्य रचनाएँ लिखीं, इनमें उनकी चार भागों में छपी आत्मकथाएँ (प्रथम-क्या भूलूँ क्या याद करूँ, द्वितीय - नीड़ का निर्माण फिर, तृतीय - बसेरे से दूर एवं चतुर्थ -दशद्वार'- से सोपान' तक') एक डायरी (प्रवास की डायरी) व निबन्ध संकलन शामिल हैं । आपकी काव्य- रचनाएँ निम्नांकित हैं-

तेराहार (1932), मधुशाला (1935), मधुबाला (1936), मधुकलश (1937), निशा निमन्त्रण (1938), एकान्त संगीत (1937), आकुल अन्तर (1943), प्रारभिक रचनाएँ (प्रथम-भाग-1943), प्रारभिक रचनाएँ (द्वितीय भाग 1943), खादी के फूल (1948), सूत की माला (1948), मिलन यामिनी (195०), प्रणय पत्रिका (1955), धार के इधर-उधर (1957), आरती और अंगारे (1958), बुद्ध और नाचघर (1958), त्रिभंगिमा (1961), चार खेमे चौसठ खूँटे (1962), दो चट्टानें (1965), बहुत दिन बीते (1967), कटती प्रतिमाओं की आवाज (1968), उभरते प्रतिमानों के रूप (1969), जाल समेटा (1973) व सतरगिनी (1946) ।

कंठ से गाते जिसे सुनने के लिए लोग बेताब रहते । इतना ही नहीं लाखों अहिन्दी भाषी लोगों ने 'मधुशाला' पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी । यह उद्दाम प्रेम, यौवन, वासना और मस्ती की पर्याय है । 'मधुबाला' में बच्चन के जीवन में आई खूबसूरत बला (रानी-प्रकाशो) के साथ भोगे गए मदिर पलों की स्वानुभूत अभिव्यक्तियाँ हैं । कवि की आरंभिक रचनाओं में जहाँ स्वानुभूत प्रणय एवं जीवनगत संघर्ष की मधुर - तिक्त अभिव्यक्ति है वहीं परवर्ती, खासतौर से बुद्ध और नाचघर से सामयिक चेतना एवं यथार्थवादी अनुभवों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है ।

9.3 दो चट्टानें : सामान्य परिचय

'दो चट्टानें' 1962-64 में रचित कविताओं का संकलन है जो 1965 में प्रकाशित हुआ । यह कृति साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित है । यह रचना अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है । इसकी अधिकांश कविताओं में कवि का दृष्टिकोण यथार्थवादी व बहिर्मुखी रहा है । इसमें कवि की भावुकता का स्थान बौद्धिकता ने ले लिया है । जितनी गहराई से कवि अपने समकालीन सामाजिक जीवन के परिदृश्य को देखता है, उतनी ही गहराई से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी वह अभिव्यक्ति देता है । इसमें कुल 53 कविताएँ संकलित हैं जिन में अन्तिम कविता 'दो चट्टानें' अथवा 'सिसिफस बरक्स हनुमान' शीर्षक से है । काव्यरूप की दृष्टि से यह एक लम्बी कविता (दीर्घ कविता) है । यह आलोच्य

कृति की सबसे बड़ी कविता है जो कि चार पृष्ठों की भूमिका के साथ 54 पृष्ठों, या खण्डों व 1412 पंक्तियों में निहित है । प्रबन्धात्मक रचना में कवि ने भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में हनुमान व विदेशी या यूनानी प्रतीक के रूप में सिसिफस के सहारे अस्तित्ववादी दर्शन की सशक्त अभिव्यक्ति की है । कवि की आस्था जीवन पर और कर्म पर होने से हनुमान पर है । हनुमान में आस्था आराध्यदेव होने से ही नहीं है, वरन् एक शक्तिशाली, संयमी, दृढ़, सुखदा, बलदा, आत्मदा व योग क्षेमकारी रूप के कारण भी है । हनुमान एक प्रतीक रूप में हैं जो भारतीय संस्कृति, मानव जीवन और आजकल के बिखरे हुए मानव-मूल्यों में लुटे-पिटे व्यक्ति को अतिरिक्त सम्बल दे सकते हैं । सिसिफस निरर्थक यातना भोग, मूल्यहीन श्रम, आधुनिक मानव की दयनीयता, भौतिक संस्कृति की शून्यता का प्रतीक बनकर आया है । इस तरह बच्चन का यथार्थ बोध जो अन्य काव्य-संकलनों में कठोर भूमि के रूप में दृष्टिगत है, यहाँ चट्टान में परिणत हो गया है ।

इस संकलन की अन्य महत्वपूर्ण कविताओं में सार्त्र के नोबेल पुरस्कार ठुकरा देने पर शिवपूजन सहाय के देहावसान पर; 'कुकडू-कूँ, दो रातें, 27 मई लेखनी का इशारा आदि शामिल हैं ।

9.4 'दो चट्टानें '-काव्य वाचन और संसदर्भ व्याख्या

(1)

वाम गिरि पर वह खड़ा है
नग्न और प्रलंब शालस्तंभ जैसा,
अंग सारे सानुपातिक,
संतुलित, साँचे ढले-से ।
भूमि जकड़े जमे पंजे,
सत्य कोई, तथ्य कोई ज्यों दबाए
कसी-मांसल पिंडलियाँ
गज-शुंड रानें
कमर पतली सिंह की-सी,
खूब चौड़ी और फूली हुई छाती-पला हो विद्रोह जिसमें-
वृषभ कंधे, ठोस पुट्ठे और बल्लेदार ऊर्जस्वल भुजाएँ
जानु तक लटकी हुई हैं,
मुट्ठियाँ ऐसी कि जिनमें असंतोष बँधा हुआ हो
भरी गर्दन
शत्रु का ज्यों मान मर्दन
कर तनी हो ।
शशि उन्नत देव का-सा
स्वर्ण-श्रृंखल-कुंतलों का ताज पहने ।
दिव्य-भव्य ललाट यद्यपि 'पराजय', 'नैराश्य' अंकित ।

संदर्भ व प्रसंग -

प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ प्रसिद्ध कवि डॉ. हरिवंशराय बच्चन की परवर्ती रचना 'दो चट्टानें' से उद्धृत है । बच्चन प्रेम, मस्ती एवं हाला के कवि के रूप में ख्यात रहे हैं, लेकिन प्रस्तुत रचना उनके सांस्कृतिक - वैचारिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है । 1965 ई। में प्रकाशित 'दो चट्टानें' या 'सिसफस बरक्स हनुमान' शीर्षक कविता काव्यरूप की दृष्टि से 'लम्बी कविता' है । इस रचना में कविवर बच्चन ने यूनानी दंतकथा (सिसिफस संबंधी) व भारत में लोकप्रचलित हनुमान की कथा को लेकर दो प्रतीक प्रस्तुत किए हैं । ये दोनों महापात्र विशिष्ट कारणों से अपने हाथों में विशाल चट्टानें उठाते हैं । लेकिन सिसिफस का चट्टान उठाना जहाँ निरर्थक श्रम का प्रतीक है वहीं हनुमान द्वारा चट्टान उठाना सार्थक श्रम का प्रतीक । उक्तांश में सिसिफस के व्यक्तित्व का अंकन हुआ है ।

व्याख्या -

सिसिफस वाम गिरि पर मृत्यु को बाँधने के दण्ड स्वरूप खड़ा है । वह लम्बे शाल वृक्ष के खंभे की तरह नंगा है । उसके शरीर के सारे अंग जैसे बिल्कुल संतुलित, अनुपात में और पूरी तरह साँचे में ढले हुए से जान पड़ रहे हैं । अर्थात् कवि उसके शरीर का अंकन करते हुए कहता है कि सिसिफस का शरीर पूरी तरह लम्बा -पूरा, सुडौल और व्यवस्थित है । वह जिस स्थान पर और जिस तरह खड़ा है उसका निरूपण करते हुए बच्चन जी ने कहा है कि वह जमीन को अपने पंजो से पूरी तरह जकड़कर अर्थात् मजबूती से खड़ा है । मानो उसने अपने पैर के पंजों से किसी सत्य को या किसी तथ्य को कसकर दबा रखा हो । उसके शरीर की मांसपेशियाँ और पिडंलियाँ पूरी तरह से सुडौल, माँसल और स्वस्थ हैं । उसके पैर हाथी की सूँड की तरह नीचे पे पतले और ऊपर से (जाँघो तक) मोटे हैं ।

कविवर बच्चन सिसिफस के शारीरिक सौष्ठव का निरूपण करते हुए कह रहे है कि उसकी कमर सिंह की तरह पतली है । छाती बहुत चौड़ी, फूली और इतनी मजबूत है मानों उसमें कोई भीषण विद्रोह पला हुआ है । उसके कंधे बैल की तरह मजबूत हैं तो पुट्ठे ठोस हैं । उसकी भुजाएँ ऊर्जा से भरपूर और घुटनों तक लम्बी हैं । उसकी मुट्ठियाँ इस तरह से कसकर बँधी हुई हैं मानों उनमें किसी प्रकार का (व्यवस्था आदिक), असंतोष बँधा हुआ हो । बच्चन सिसिफस की गर्दन का सुष्ठु अंकन करते हुए कहते हैं कि उसकी गर्दन भरी हुई है मानों वह अपने दुश्मन के मान को नष्ट करने, चूर करने के लिए तनी हुई हो । उसका सिर देवताओं की तरह ऊँचा है और उसने जैसे सोने के बालों की श्रृंखलाओं का ताज पहन रखा हो । उसका ललाट यद्यपि दिव्य और भव्यता के गुणों से सम्मिलित है तदपि उसमे पराजय और निराशा भी अंकित है ।

विशेष -

1. कवितांश में श्रेष्ठ काव्यात्मक उपकरण अवस्थित हैं । वर्णनात्मक कौशल चित्रात्मकता, उपमान योजना भावात्मकता एवं सुष्ठु अंकन हुआ है
2. प्रस्तुत अंश में सिसिफस का व्यक्तित्व किसी महान् खलनायक सदृश्य विराट रूप में उपस्थित हुआ है ।
3. सिसिफस की छाती के चौड़ेपन को कवि ने विद्रोह पलने से जोड़ा है जो एक ओर कवि की कल्पना शक्ति को प्रमाणित करता है वहाँ दूसरी ओर सिसिफस के दुश्चरित्र को भी उभारता है ।

(2)

विवश सिसिफस काँपता था
छूट सहसा जायेगा क्या
एक दिन संपूर्ण वैभव?
छूट सहसा जायेंगे क्या
सभी पुर जन, सभी प्रिय जन?
तब किसी से मोह क्या
अनुराग क्या,
अपनत्व कैसा!
क्या इसी के वास्ते जीवन मिला है
भीति,
शंका,
शीश पर लटका करें
धागे-बँधी तलवार बनकर?
बालपन में जो पड़ा संस्कार
उसका छूटना होता असंभव
बालपन के प्रश्न
यौवन पार की वय में लगे उठने निरंतर

सन्दर्भ एवं प्रसंग -

उपर्युक्त कवितांश सुविख्यात कवि हरिवंशराय बच्चन की लम्बी कविता 'दो चट्टानें' के आरंभिक भाग से लिया गया हैं । यूनानी दंतकथा के अनुसार एक बार वहाँ का महानायक सिसिफस यद्यपि समस्त प्रकार के भौतिक सुख-संसाधनों से युक्त था, उसका नगर भी देवताओं की तरह भव्य व आकर्षक था । उसके पास सुख के समस्त साधन थे, उसका नगर सब तरह से आकर्षक था, लेकिन फिर भी वह मृत्यु का चिन्तन करते ही भयभीत हो उठा । उक्तांश में सिसिफस की उसी भयाकान्त मानसिक स्थिति का अंकन किया गया है ।

व्याख्या -

मृत्यु के रहस्य व उसकी स्थिति से अनजान सिसिफस विवशभाव से मृत्यु की गति से काँपने लगता था । जब वह मृत्यु के सम्बन्ध में चिन्तन कर रहा था तो उसे एक बार लगा कि जैसे मृत्यु के आते ही अचानक सब कुछ छूट जाएगा! क्या मेरा सम्पूर्ण वैभव और सुखोपभोग के समस्त संसाधन यों ही रखे रह जाएँगे? क्या यों ही मेरे समस्त परिचित, रिश्तेदार, नगरवासी,परिवारजन, प्रिय जन आदि भी अचानक छूट जाएँगे? सिसिफस मृत्यु की इस स्थिति पर विचार करता हुआ मन ही मन सोचता है कि यदि वास्तव में ऐसा ही होगा, या ऐसा ही होना तय है तो फिर किसी भी जड़ या चेतन वस्तु और व्यक्ति से अपनत्व क्यों? क्यों किसी से अनुराग किया जाए? क्या वास्तव में इन्हीं सब स्थितियों के लिए, इन सब बुरे हालातों को झेलने और उनसे रूबरू होने के लिए जीवन मिला है?

सिसिफस मृत्यु के संबंध में उपर्युक्त चिन्तन मनन करता हुआ भयभीत रहने लगा । उसके मन में मृत्यु सम्बन्धी अनेक शंकाएँ प्रश्न के रूप में उसके सिर पर धागे से बँधी हुई किसी तलवार

की भाँति लटका करतीं । इस तरह समस्त सुख-सुविधाओं के बावजूद वह व्यथित-चिन्तित और शंकालु रहने लगा । सिसिफस के मन में मृत्यु के सम्बन्ध में ये संस्कार बचपन में ही आ पड़े थे । कवि कहता है कि बालपन के संस्कार और बालपन के प्रश्न कभी मिटते नहीं है । यही वजह रही कि आज जबकि सिसिफस यौवनावस्था को पार करने के कगार पर है तो भी मृत्यु सम्बन्धी प्रश्न व चिन्तन लगातार उठ रहे थे ।

विशेष -

1. उपर्युक्तावतरण में कविवर बच्चन ने मृत्यु -चिन्तन से भयभीत व शंकाग्रस्त सिसिफस का बड़ा ही भावपूर्ण, मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक अंकन प्रस्तुत किया है ।
2. कवि ने प्रसंगानुरूप यह वैचारिक चिन्तन भी प्रस्तुत कर दिया है कि व्यक्ति के बचपन में पड़े संस्कार और जिज्ञासाएँ कभी छूटती या समाप्त नहीं होती हैं, ये समय पाकर आजन्म उठती रहती हैं ।
3. अवतरण की भाषा - भावानुकूल, प्रभावी, मार्मिक एवं प्रसंगानुकूल है । भय व शंका की भयावहता व व्यापकता चित्रित करने के लिए शीश पर धागे बंधी तलवार के लटकी होने का उपमान अत्यन्त सार्थक एवं प्रभावी हैं । शब्द योजना परिष्कृत, परिमार्जित तत्समनिष्ठ खड़ी बोली की है ।
4. शैली सरल, सहज, प्रवाही एवं गद्यानुरूप है ।

(3)

क्या नहीं संभव,
पिता जो कर न पाए वह
करू मैं ?
मौत जब लेने मुझे आए
उसे मैं कैद कर लूं
और हो अमरत्व मेरा ही नहीं
संसार भर का ।
मौत खाए मात,
जीवन की यहाँ पूरी विजय हो ।
सब अभय हों ।
खड्ग जो सिर पर लटकता
फूल बनकर
झरे सिर पर!
और जीवन का जय-ध्वज उठे ऊपर
और गूँजे घन जयस्वर!

संदर्भ एवं प्रसंग -

उक्तावतरण प्रसिद्ध गीतकार एवं कवि हरिवंशराय बच्चन द्वारा विरचित "दों चट्टानें" शीर्षक संकलन की इसी नाम की दीर्घ कविता से उद्धृत है । प्रस्तुत कवितांश में कविवर बच्चन ने यूनानी मिथकानुरूप सिसिफस के उस वृतान्त को उकेरा है जिसमें उसने अपनी शक्ति के अहंकार में उसका

नकारात्मक उपयोग किया । वस्तुत: सिसिफस एक सुसम्पन्न समग्र सुविधाओं युक्त एक सफल नायक था । वैभव-विलासिता के समस्त साधनों के बावजूद एक दिन उसके दिमाग में मृत्यु का भय और तद्जन्य नाना प्रकार की शंका -आशंकाएँ उत्पन्न हुई । मृत्युजन्य दुष्परिणाम से बचने के लिए वह अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहता है । इसी सम्बन्ध में प्रस्तुत पद्यांश है ।

व्याख्या -

सिसिफस विचार करता है कि उसके पिता भी शक्ति सम्पन्न एवं विराट पुरुष होने के बावजूद मृत्यु को चुनौती नहीं दे पाए । अत: वह विचार करता है कि जो कार्य उसके पिता भी न कर पाए, वह कर दिखाए क्या यह संभव नहीं है? क्यों नहीं वह उस सम्बन्ध में कुछ करे । इसी चिन्तन को विकास देता हुआ वह योजना बनाता है कि जब मृत्यु उसे लेने आए तो क्यों नहीं वह उसे बन्दी बना ले । यदि वह मृत्यु को कैद कर लेता है तो निश्चय ही वह अमरता को प्राप्त होगा । इतना ही नहीं यह अमरता उसकी अपनी अकेले की न होकर समस्त संसार की होगी । यदि वह मृत्यु को बन्दी बना लेता है तो फिर मौत भी उससे मात खा जाएगी और इस तरह उसके जीवन की, जीवन की चाह की विजय होगी । फिर उसके जीवन की विलासिता और वैभव के समस्त उपकरणों का जी भर कर उपयोग कर सकेगा । उसकी जिन्दगी सब तरह सफल होगी ।

सिसिफस सोच रहा है कि जब वह मृत्यु को अपन आगोश में ले लेगा तो न केवल वही भयरहित हो सकेगा बल्कि अन्य संसारीजन भी हो सकेंगे । शंका और विभिन्न चिन्ताओं के रूप में जो तलवार लटक रही थी वह अब तलवार की तरह खतरनाख न लगकर फूलों के समान आनन्ददायी लगने लगी । सिसिफस की सारी आशंकाएँ और तनाव अब दूर होने लगे । वह सोचने लगा कि अब जीवन में किसी प्रकार का संकट और समस्या नहीं रहेगी । जीवन की जीत का ध्वज अब सदैव ऊपर उठा रहेगा और उसकी जीत के गान, जयकारे आकाश में गुंजायमान रहेंगे । सिसिफस को यह लगने लगा कि अब वह अमर है और उसकी जीत का डंका बजता रहेगा । अब उसे न कोई पराजित कर सकता है और न ही उसकी प्रभुता को चुनौती दे सकता है । अब चहुँ ओर उसी की विजय पताका फहराएगी-लहराएगी ।

विशेष -

1. अवतरण में सिसिफस मौत को चुनौती देता हुआ अपनी शक्ति से उसे वश में करने की योजना बना रहा है । वास्तव में सिसिफस द्वारा एसा करना न केवल उसके अहंकार का द्योतित कर रहा है अपितु उसके द्वारा शक्ति के दुरुपयोग को भी दर्शाता है ।
2. पद्यावतवरण की भाषा-शैली विचारानुकूल, सिसिफस के व्यक्तित्व को उद्घाटित करने वाली एवं कथा को गति देने वाली है । शब्द प्रयोग सार्थक, चिन्तनपरक एंव सम्यक् प्रकार से किया गया है ।

(4)

क्षरण होता है
प्रतिक्षण कुछ
कि जीवन-प्रस्फुरण हो ।
यही है सौंदर्य-आभा,

ओज भी है, तेज भी है ।
क्षरण रोको, मरण रोको,
और जीवन- प्रस्फुरण स्वयमेव रुकता ।
प्रकृति-गत अमरत्व कितना
रुग्ण है, दयनीय है, करुणाजनक है!
मौत आए!
मौत आए! की
सदाएँ लगीं उठने;
ये दुआएँ माँगने कितने लगे -
उस मरण से वंचित नगर में -
प्रभु, कृपा कर मृत्यु भेजे!
दयाकर तन-मुक्त कर दो !"

संदर्भ एवं प्रसंग -

उक्तांकित काव्यावतरण डॉ. हरिवंशराय बच्चन द्वारा विरचित "दो चट्टानें' ' शीर्षक दीर्घ कविता से अवतरित है । प्रस्तुत दीर्घ कविता यूनानी दंतकथा व भारतीय पौराणिक घटना पर आधृत है । जिसमें कमल: सिसिफस द्वारा शक्ति के नकारात्मक प्रयोग एवं हनुमान द्वारा शक्ति के सृजनधर्मी प्रयोग का अंकन किया है । सिसिफस अहंकारवश एवं शक्ति के दुरुपयोग के परिणामस्वरूप जब अपनी जीवन की अमरता की विजय पताका फहराने के उद्देश्य से मृत्यु को बन्दी बना लेता है तो सृष्टि में उसके भयंकर दुष्परिणाम सामने आते है । मृत्यु को कैद कर लेने से पूरा संसार अब जीने को विवश था । संसार जड़ होने लगा । सपूर्ण प्रकृति में अनेक प्रकार की विकृतियाँ आने लगीं । पेड़ों पर पुराने फल सड़ते - गलते हुए भी डालों से चिपके रहे; और इस तरह चहुँ ओर दुर्गन्ध व्याप्त होने लगी । इसी क्रम में कविवर बच्चन ने जन्म-मरण और आने-जाने के क्रम की महत्ता को दार्शनिकता के साथ उद्घाटित किया है ।

व्याख्या -

कवि कहता है कि संसार में यदि कोई चीज क्षरित होती है, समाप्त या विनष्ट होती है तो सिर्फ इसीलिए कि उसके बाद ही नया जीवन प्रस्फुटित हो सकता है । जीवन में प्रतिक्षण कुछ न कुछ क्षय को प्राप्त होता है, या हरपल कुछ न कुछ नष्ट होता है । वास्तव में सौन्दर्य की सच्ची चमक, वास्तविक आभा इसी में है । इसी कम में जीवन का सच्चा ओज और तेज निहित है । यदि हम क्षरण को और मरण को रोकेंगे तो जीवन के विकास की सृष्टि-सौन्दर्य की गति अपने आप ही रुकने लगेगी ।

कवि के कहने का सीधा अभिप्राय यही है कि जीवन हेतु सृष्टि सौन्दर्य हेतु जन्म और प्रस्फुरण जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक मरण और क्षरण भी । क्योंकि जब तक पुराना नष्ट नहीं होगा, समाप्त नहीं होगा, मरेगा नहीं तब तक नया कैसे पैदा होगा, कैसे जन्मेगा । यह ठीक उसी तरह से है जैसे हमें खेत में नई फसल पैदा करनी है तो पुरानी को काटकर खेत खाली करना ही पड़ेगा । यदि पहले वाली फसल भी खेत में खड़ी है तो नयी कैसे आ सकती है । यदि जबरन उसी

में नई फसल हेतु बीज डालेंगे तो न तो पुरानी उपयोगी रहेगी और न हीं नई । दोनों सड़ने-गलने लगेंगी । अत: सृष्टि या जीवन संसार में जितना जरूरी प्रस्फुरण या नयापन आवश्यक है उतना ही आवश्यक पुराने का नष्ट होना, क्षय होना भी है ।

बच्चन कहते हैं कि यदि प्रकृति प्रदत्त क्षरण या नाश को हम अमरत्व देने का प्रयास करेंगे यह वास्तव में रूग्ण, दयनीय और करुणाजनक ही होगा । हम समस्त संसार को बीमार, संकट ग्रस्त, भयग्रस्त, असुन्दर और दुर्गन्धमय बना देंगे ।

सिसिफस द्वारा जब मृत्यु को बन्दी बना लिया गया तो चहुँ ओर से यह आवाज उठने लगीं कि अब तो मौत आए! मौत आए तभी पुन: सब कुछ ठीक-ठाक होगा । सब लोग यह कामना करने लगे, दुआएँ माँगने लगे कि हमें मौत आए । लोग यह प्रार्थना, वन्दना और निवेदन करने लगे कि हे प्रभु! कृपा करके हमारे नगर में पुन: मौत को भेजो । हम लोगों पर दया करो और हमारे शरीरों को मुक्त करो-हमें मौत दो ।

विशेष -

1. सिसिफस द्वारा मौत को बन्दी बना लेने से जो दुष्परिणाम सामने आए उनका अंकन सुष्ठु प्रकार हुआ है ।
2. अवतरण से यह प्रतिपादित होता है कि सृजन जितना आवश्यक है, निर्माण जितना आवश्यक है उतना ही विध्वंस और शायद कहीं अधिक विनाश भी आवश्यक है । यह ठीक उसी प्रकार से है जिस तरह से कि दिन के प्रकाश का महत्व रात्रि के अंधकार से ही है, सुख का महत्व दुख के भोगने पर ही सुखकर प्रतीत होता है । फूल काँटो से ही निकलते हैं अत: हम रात्रि, दु:ख कण्टक व सृष्टि में नकारात्मक या नश्वरता के महत्व को उपेक्षित नहीं कर सकते ।
3. भाषा-शैली प्रसाद गुणयुक्त, अभिधात्मक, सरल, विचारात्मक, प्रवाहपूर्ण एवं प्रसंगानुकूल है ।

(5)

देह पर पाषाण का
गुरू भार ढोते,
संतुलित करते उसे फिर
और फिर उससे
बराबर खेल करते
खुद हुआ पाषाण है वह ।
कुछ नहीं उद्देश्य उसका,
अर्थ उसका,
ध्येय उसका,
सिर्फ सक्रिय हर समय रहता
स्वचालित यंत्र जैसे ।
और वह अपनी महादयनीय स्थिति से
बेखबर है ।
भाषा शून्य हृदय

दिमाग विचार सूना
और गायब कंठ-स्वर है ।
व्यंग्य इससे
क्या बड़ा होगा
कि वह जग में अमर है!
और संभव
कल्पना ही है
कि तबतक
वह चलेगा जब तलक गोलक
न बनता गेंद, गोली-
और छोटी, और छोटी-
अणु तथा परमाणु
जो हो शून्य में लय ।
अस्तित्व उसका मुक्त होगा
काल कर क्षय

संदर्भ व प्रसंग

प्रस्तुत पद्यात्मक पंक्तियाँ सुकवि बच्चन की परवर्ती रचना "दो चट्टानें' ' से अवतरित हैं। सिसिफस ने जब मृत्यु को बन्दी बनाकर अपने जीवन को अमरत्व प्रदान करना चाहा तो पूरी सृष्टि में त्राहि-त्राहि होने लगी । जीव अपनी मृत्यु की कामना करने लगे तो पादप के फल क्षरण की । सिसिफस के इस दुष्कृत्य पर, जीवन के सहज व स्वस्थ क्रम को तोड़ने के परिणामस्वरूप उसे भंयकर दण्ड मिला । दण्ड यह था कि सिसिफस एक बड़ी अनगढ़ चट्टान को ठेलकर गिरि की उच्चतम चोटी पर ले जाए और जब वह लुढ़कती हुई नीचे गिरे तो सिसिफस पुन: उसे ढकेलते हुए चोटी पर ले जाए । यह क्रम अनन्तकाल तक चलता रहा ।

उक्त प्रसंग मे कविवर बच्चन कहते हैं कि अपनी देह पर इस तरह गुरू भार ढोते हुए सिसिफस भाव-विचार शून्य हो गया । इसी क्रम में कवि लिखते हैं -

व्याख्या

सिसिफस अपने शरीर पर भरी भरकम शिला का भार ढोते हुए, उसको बराबर संतुलित कर ऊपर पहुँचाने का प्रयास करते हुए एक प्रकार का खेल करता रहा । इस नीरस एवं निरर्थक प्रक्रिया में वह स्वयं पाषाण हो गया । इसमें उसका न कोई उद्देश्य था, न ध्येय और न ही कोई मतलब । वह तो जैसे मशीन की तरह लगातार सक्रिय रहता । वह स्वयं महामानव बनने के उपकम में महादयनीय अत्यन्त उपेक्षित, संवेदन शून्य, निरर्थक एवं तुच्छ तो हो गया था; लेकिन उसे इस बात का एहसास नहीं था, इस बात से बेखबर व अनजान बना हुआ था ।

मृत्यु को जीतकर अमरत्व की कामना करने वाला वह तथाकथित महामानव अब हृदय से भाव शून्य संवेदनाशून्य एवं दिमाग से विचार शून्य हो गया था । उसके दिलोदिमाग में न किसी प्रकार के भाव जन्म लेते थे और न ही किसी तरह के विचार । एक तरह से आज के स्वास्थविज्ञान की भाषा में कहें तो अकारण ही कोमा में चला गया था । उसके कंठ से आवाज गायब हो गई थी।

इस तरह वह जीवित होते हुए, सक्रिय होते हुए भी मृत व निष्ठिय जीवन जी रहा था । उसकी इस स्थिति पर इससे बड़ा व्यंग्य और विडम्बना क्या होगी ? वह वास्तव मे उस प्रकियान्तर्गत अमर होकर भी क्या अमरता का भोग कर पा रहा था? क्या वह अमरत्वपूर्ण जीवन का रसभोग कर रहा था? क्या उसके इस अमर जीवन की कोई महत्ता रह गई थी ?उत्तर स्पष्ट है ।

सिसिफस की यह जीवन प्रकिया तब तक चलती रहना संभाव्य है तब तक कि उसकी विशालकाय प्रस्तर शिला ऊपर ले जाने और लुढ़काने के क्रम में घिसते-घिसाते गोल होकर गेंद का आकर न ले और वह छोटी होकर अणु और परमाणु का आकार लेते हुए शून्य में विलीन न हो । उस समय तक उसका (सिसिफस) अस्तित्व इसी तरह रहेगा । शिलाखण्ड के शून्य में विलीन होने पर ही, समय के विराट क्रम में उसका क्षय/ मुक्ति संभावित है ।

विशेष -

1. लम्बी कविता दो चट्टानें के उक्तांश में रचना का केन्द्रीय भाव प्रस्तुत हुआ है । कवि यहाँ यह प्रतिपादित कर रहा है कि सिसिफस के महान व्यक्तित्व का अन्त निरर्थक श्रम एवं क्रिया के पराभव रूप में हुइ। यह प्रकारान्तर से यूनानी संस्कृति की निरर्थकता एवं भाव -विचार शून्यता का भी द्योतक है । कवि ने आगे चलकर हनुमान का जो वृतान्त प्रस्तुत किया है वहाँ जाकर हनुमान व सिसिफस के श्रम की सार्थकता-निरर्थकता प्रमाणित होती है ।
2. बच्चन ने यह रूपायित किया है कि नकारात्मक विचारणा या शक्ति के दुरूपयोग की परिणति किस तरह निरर्थकता, असहाय एवं बेबस स्थिति में होती है । अमरता प्राप्त करने का इच्छुक सिसिफस किस दुर्गति का शिकार हुआ। वह भाव-विचार शून्य होकर सिर्फ मशीन बनकर रह गया, जिसका कोई औचित्य न रहा । उसका महाशक्तिशाली, महामानव का रूप किसी काम न आया । संकेत यह है कि उसकी इस तरह हुई बेकद्री का कारण वह स्वयं था; उसे धिक्कार है।
3. भाषा- शैली सरल, सहज, विचार एवं भावानुसरणी है । काव्यानुकूल आडम्बर, कृत्रिमता, व क्लिष्टता कहीं नहीं है । शब्दावली आम-फहम की है ।

(6)

नील शिला का शैल
कल्पना-गिरि से
लगता है, नीचे है,
पर नीचे है विनम्रता वश
विनम्रता से नीचे ही सचमुच ऊँचे है ।
लगता है, जो इस पर्वत पर
पाँव दे सके
तारापथ कर पार,
भेद सप्तावरणों को
चरम परम अव्यक्त और अध्यय-अक्षय के
वह छू लेगा
अहंकार को त्याग

अहं अपना भूलेगा
और कल्पना
उग्र तथा उद्धत है,
जिससे ऊँची होकर भी नीची है ।
इसीलिए ऊँचाई की अंतिम उठान पर
शक्ति नहीं रे
भक्ति चाहिए ।
भक्ति विनत है,
और उसी का किसी जगह अवरूद्ध न पथ है ।

संदर्भ व प्रसंग

उक्ताक्तरण डॉ. हरिवंशराय बच्चन के परवर्ती काव्य की ख्यातनाम दीर्घ कविता ' दो चट्टानें' से अवतरित है । यह अंश कविता के उत्तरार्द्ध का आरंभिक अंश है । इक तरह से लम्बी कविता में यहाँ से दृश्य परिवर्तन होता है । कथानक में परिवर्तन होता है । अब तक सिसिफस व तद्जन्य कथा विकसित होकर पर्यवसित हुई, अब यहाँ हनुमान की कथा का बीजवपन होता है । भारतीय संस्कृति की महानता के कारणों की उद्भावना प्रस्फुटित होती है । कवि ने सिसिफस संबंधी कल्पना-गिरि व हनुमान संबंधी नील गिरि की सम्यक तुलना करते हुए भक्ति व शक्ति में निहित अन्तर को बडी ही सूझबूझ व संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है ।

व्याख्या -

कवि बच्चन कहते हैं कि नीले पत्थरों का यह पर्वत 'नीलगिरि' यद्यपि दिखने में तो 'कल्पना-गिरि' (जिस पर सिसिफस ने विशालकाय शिला चढ़ाई-लुढ़काई) से नीचे (छोटा) लगता है । लेकिन उसका यह छोटापन आकारगत ही है, गुणात्मक नहीं । कवि स्वयं स्पष्ट करता हुआ कहता है कि नीलगिरि के पर्वत के छोटे या नीचे होने के मूल में उसकी विनम्रता का रहस्य छिपा है । उसी विनम्रता के कारण वह वास्तव में छोटा होते हुए भी बड़ा है, विनम्रता के कारण नीचा नहीं ऊँचा हैं । इसमे अहंकार या बड़प्पन नहीं है ।

यह पर्वत कोई साधारण पर्वत नहीं है । यह चमत्कारिक, अत्यंत महत्वपूर्ण एवं गुणात्मक रूप से उत्कृष्ट है । इसकी महान विशेषता का बखान करते हुए कवि बच्चन कहते हैं कि इस पर्वत पर जो पैर रख सकता है वह व्यक्ति महालोक या परम् लोक को गमन कर सकता है । इस नीलगिरि के पर्वत पर पैर रखने के बाद राही या व्यक्ति तारापथ को पार कर गगनपथ और दैव-मार्ग के विभिन्न सप्तावरणों, सात भागों को भेदता हुआ, उन्हें पार करता हुआ अपने चरणों को परम् अव्यय और अक्षय लोक को छू लेगा ? अर्थात् इस गिरि के माध्यम से साधक, पथिक या व्यक्ति विविध सात आवरणों को पार करता हुआ दैव-लोक को पहुँच जाता है । वह ईश्वरीय लोक को प्राप्त कर लेता है । इतना ही नहीं कवि कहते हैं कि इस लोक को छू लेने से उसके व्यक्तित्व के समस्त दुर्गुण अनन्त में विलीन हो जाते हैं । वह व्यक्ति अपने अहंकार और बड़प्पन को त्याग कर अपने आप को, अपनी महानता को भूलने लगता है । उसकी कल्पना शक्ति उग्र और प्रखर हो जाती है । लेकिन वह अपनी इस

बुद्धि-कल्पना शक्ति की तीव्रता को पाकर भी, ऊँचा होकर, बड़ा बनकर भी नीचा, छोटा अर्थात् विनम्र बना रहता है ।

भाव यह है कि हमारी भारतीय सांस्कृतिक धरा यह सीख देती है कि इंसान बड़े से बड़े पद को, स्थान को, शक्ति को प्राप्त करने के बाद भी अंहकार के मद में, बड़प्पन के नशे में चूर नहीं होता है, वह तो उच्चतर सोपानों को प्राप्त करते हुए विनम्रतर, शिष्ट एवं शांत हो जाता है । इस तरह कवि आगे कहता है कि व्यक्ति जब अपने जीवन की उच्चर उठान पर होता है सफलता के चरम सोपान पर होता है, नित नई ऊँचाइयों को छूता है तो ऐसे में उसे शक्ति पर अंह नहीं करना चाहिए, क्योंकि यही शक्ति अहं व बड़प्पन बनकर पतन की राह पर ले जाती है, उसे नीचे गिरा देती है । वहीं विनम्रता, शिष्टता व शालीनता विनम्र बनाकर उसे और ऊँचा उठा देती हैं महान बना देती है । इसलिए निष्कर्ष रूप में कविवर बच्चन लिखते हैं कि ऊँचाई की अंतिम उठान और पराकाष्ठा के समय शक्ति की आवश्यकता न रहकर भक्ति की जरूरत रहती है । क्योंकि भक्ति-भावना से ही भक्त में, विनम्रता आती है और विनम्रता आने पर फिर किसी भी तरह से उसकी राह में अड़चनें नहीं आती हैं । वह उच्चतर सोपानों को सहजता व सफलता से प्राप्त करता जाता है ।

विशेष -

1. यूनानी कल्पना-गिरि की तुलना में कवि ने भारतीय नीलगिरि को श्रेष्ठ स्थापित किया है । भारतीय धर्म, दर्शन, चिन्तन व अध्यात्म की श्रेष्ठता निरूपित हुई है ।
2. प्रकारान्तर से कवि ने प्रतिपादित किया है कि भारतीय चिन्तन, दर्शन व अध्यात्म शक्ति प्राप्त होने पर भी भक्ति की राह पर चलकर विनम्र व शालीन बने रहने की बात करता है वहीं यूनानी चिन्तन, दर्शन में वहाँ की संस्कृति में शक्ति प्राप्ति पर अंह आ जाता है, जो कि पतन का कारण है ।
3. प्रस्तुतांश में कवि की अपनी चिन्तन, दर्शन व अध्यात्म की विचारणा प्रस्तुत हुई है ।
4. कवि ने शक्ति के उच्चतर सोपान पर पहुँचनेपर शक्ति की जगह भक्ति की आवश्यकता प्रतिपादित की है।
5. प्रस्तुतांश में भारतीय अध्यात्म, दर्शन व साधना के सप्तावरणों का उल्लेख हुआ है जिन्हें क्रमश: भेदने के बाद साधक दिव्य लोक में पहुँचकर ईश्वर से साक्षात्कार करता है ।
6. शक्ति के स्थान पर भक्ति का महत्व रूपायित हुआ है । भक्ति जहाँ भक्त को विनम्र, शिष्ट एवं सौम्य बनाकर विकास व सफलता के उच्चतर सोपानों पर ले जाती है वहीं शक्ति अंहकार का कारण बनकर पतन के मार्ग पर अग्रसरित करती है ।
7. भाषा तत्सम शब्दावली युक्त, भावानुसरणी प्रभावोत्पादक, भावोत्तेजक एवं मार्मिक है । प्रांजलता, परिष्करण, प्रसादात्मकता, प्रवाहात्मकता व प्रभविष्णुता, द्रष्टव्य है ।

(7)

पर विद्या से
शक्ति और हो जाती,
हो सकती थी तीखी ।
शक्ति बुद्धि का

अपने हित में शोषण करती
बुद्धि बिचारी, हार मानकर
शक्ति पक्ष का, न्यायोचित-अन्यायोचित हो
पोषण करती ।
क्या न यही भय
आज धरा पर व्याप रहा है?
बल विद्‌या से
जो संभव विध्वंस
उसी की आशंका से
क्या न विश्व सब काँप रहा हैं?
कहीं बुद्धि की
या विद्‌या की कमी नहीं है,
तिसपर भी क्या निर्भयता है?
शांति कहीं है ?
कहीं नहीं रे,
कहीं नहीं है ।

संदर्भ एवं प्रसंग -

उपर्युक्त काव्यांश बच्चन कृत दीर्घकविता "दो चट्टानें" से उद्धृत है । इसमें कवि ने हनुमान के कथा प्रसंग से यह बात संकेतित की है कि किस तरह से जब हनुमान की शक्ति असंयमित हो गई थी, तो उसे संयमित करने के लिए ही सूर्य देव ने उन्हें पाठ पढ़ाया था । हनुमान वज्रांग या बजरंग से हनुमान क्यों कहलाए; यह भी संक्षेप में संकेत किया है । यहाँ यह बताया गया है कि शक्ति सदैव बुद्धि का अपने पक्ष में प्रयुक्त करती है, चाहे वह न्यायोचित हो या अन्यायोचित । आज भी विश्वभर में इसी शक्ति के दुष्प्रभाव या दुरूपयोग का भय सता रह है ।

व्याख्या-

प्रसंगवश बच्चन ने यह उल्लिखित किया है कि हनुमान ने किरन तरह अनेक विद्‌याएँ सीखी । उन्होंने सूर्य देव के रथ के आगे उल्टे चलकर विद्‌या सीखी । उन्होंने पर, अपर आदि विविध विद्‌याएँ जानी । कवि कहता है कि पर विद्‌या को जानने-सीखने से शक्ति और भी अधिक प्रखर व तीखी हो जाती है, हनुमान की शक्ति भी तीखी हो सकती थी; लेकिन सूर्यदेव ने संयम से काम लिया ।

शक्ति की स्थिति पर चिन्तन करते हुए कवि यहाँ यह प्रतिपादित कर रहा है कि वह सदैव बुद्धि का शोषण करती है और बुद्धि असहाय होकर हार मानकर शक्ति का साथ देती है । इस तरह चाहे सही हो या गलत, उचित हो या अनुचित, न्याय हो या अन्याय; बुद्धि बेचारी बनकर सदैव, अपनी हार मानकर शक्ति का साथ देती है, उसको सम्बल प्रदान करती है, उसका पोषण करती है ।

उक्त प्रक्रम में बच्चन सामयिक बोध से यह कहते हैं कि आज धरती पर भी यही डर, यही भय कॉप रहा है । शक्ति और बल-भय से पूरा विश्व सशंकित है । बल शक्ति की विद्‌या से संसार का विध्वंस संभव है और आज उसी की आशंका लगातार बनी हुई है । उसी आशंका से विश्व आशंकाग्रस्त

है, भयभीत है । यद्यपि सब लोगों के पास बुद्धि, विद्या या समझदारी है, विवेक है तो भी हम सब निर्भय जीवन नहीं जी पा रहे । युद्ध की आशंका, शक्ति के उपयोग-दुरुपयोग की आशंका हमेशा बनी रहती है । इस तरह आज के जीवन में भी शांति कहीं नहीं हे । यह शक्ति या बल के दुरुपयोग के कारण ही है ।

विशेष -

1. प्रस्तुतांश में शक्ति बल के आगे बुद्धि बल की अवशता का उल्लेख हुआ है, जो कि ठीक ही है।
2. इस अंश के माध्यम से बच्चन जी का समसामयिक बोध, यथार्थवादी चिन्तन के साथ प्रस्तुत हुआ है; वह यह कि आज भी शक्ति के दुरुपयोग की, युद्ध के होने की आशंका सदैव बनी रहती है । इसी आशंका के कारण पूरा परिवेश, पूरा युग अशांति के साये में जी रहा है । यह अशांति 'दो चट्टानें' के लेखन के समय विश्व में रूस व अमेरिका की गुटबाजी व भारत-चीन युद्ध होने के कारण सहज ही थी । परिस्थितियों के बदलाव के साथ आज 2009 में भी यही आंशका लगातार बनी हुई है । विविध आंतककारी संगठन अपनी शक्ति का दुरुपयोग भारतभर के बड़े शहरों में भीषण बम विस्फोटों के माध्यम से कर रहे हैं । अत: कवि की यह पंक्ति की शांति कहीं है? अर्थात् इस आशंका और भय के माहौल में शांति कहीं भी नहीं है, हर जगह अशांति का जीवन है ।
3. उक्त विवेचन से कविता की प्रांसगिकता भी स्वत: सिद्ध है ।
4. अवतरण की भाषा-शैली सहज, प्रभावोत्पादक, विचारपूर्ण एवं विषयानुकूल है । कवि की कविता रचना की सोद्देश्यता एवं अन्विति स्पष्ट है ।

(8)

जो कि आत्मदा
जो बलदा है
सारा विश्व
उपासक जिसका
सारे देव
प्रशंसक जिसके,
अमृत-मृत्यु दोनों
जिसकी छाया में पलते
उसे हविष्य समर्पित करते ।
कस्मै देवाय हविषा विधेम?
यही देव है
जिसे हमारा
श्रद्धाविष्य-समर्पित हो अब
इसी देव को नमन करो सब
वहन करेगा यही तुम्हारे, मेरे, युग का
योग-क्षेम ।

सन्दर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत काव्यांश बच्चन द्वारा विरचित "दो चट्टानें" शीर्षक काव्य संकलन की इसी शीर्षक की प्रबन्धात्मक दीर्घ कविता से अवतरित है । कविता के उत्तर भाग में कवि ने अपने आराध्य हनुमान सम्बन्धी वृतान्त को, सम्बन्धित आख्यानों को संकेतित कर जहाँ एक ओर अपनी हार्दिक श्रद्धा-भावना व्यक्त की है वहीं हनुमान के अतुलित बल द्वारा राम-सेवा करने का चित्रण भी हुआ है । प्रस्तुतांश में बच्चन ने कहा है कि हनुमान देवों के भी प्रशंसक हैं, उनकी उपासना सारा विश्व करता है अत: हमें भी ऐसे देव को नमन कर अपने को सुरक्षित कर लेना चाहिए ।

व्याख्या -

हनुमान सम्बन्धी अनेकानेक गुणों, विशेषताओं व वृतान्तों के उल्लेख करने की श्रृंखला में कवि बच्चन कहते हैं कि हनुमान तो भक्तगणों के हितार्थ, उनकी सुरक्षार्थ सदैव अपने को अर्पित करते हैं । हनुमान तो अपना आत्म समर्पण करने को सदैव उद्यत हैं, वे ही समस्त प्रणियों को शक्ति व अतुलित बल देने में सक्षम हैं । यही वजह है कि उनकी इस अनूठी विशेषता के कारण सारा विश्व उनकी उपासना करता है, उनकी प्रशंसा करता है । समस्त देवगण भी उनके प्रशंसक हैं । हनुमान इतने विराट एवं अद्भुत रूप-स्वरूप व गुणागार हैं कि अमृत और मृत्यु भी उन्हीं की छाया में पलते हैं । अत: उनकी अनूठी विशिष्टताओं को देखते हुए हम यज्ञ का हविष्य भी उन्हें ही समर्पित करते हैं ।

कवि का भाव यह है कि हमें किस देव को हविष अर्पण करना चाहिए; इस विषय पर चिन्तित नहीं होना चाहिए, न ही किंकर्त्तव्यविमूढ़ । यही एक ऐसा योग्य दैव है जिसको हम सबकी श्रद्धा-भावना और विषय अर्पित-समर्पित होना चाहिए । हनुमान को ही श्रद्धा व हविष्य अर्पित करने का स्पष्ट कारण बताते हुए कवि कहता है कि यही वह देव है जिसमें युग के संकट को वहन करने की अद्भुत क्षमता है । यही वह देव है जिसको नमन करने से हमारे युग का योग-क्षेम वहन किया जा सकेगा । अर्थात् भाव यह है कि हमारे इस कलियुग के नाना विध संकटों, परिस्थितियों, आतपों आदि को सहकर हमारी रक्षा करने का गुरूतर दायित्व यही देव वहन कर सकता है । हनुमान में यह अद्भुत शक्ति एवं क्षमता है कि हम सब भक्तगणों की एक सच्ची आर्त्त पुकार पर वह करुणा करके हमारा उद्धार करे । अत: कवि का विनम्र अनुरोध एवं मान्यता यही है कि हम सब हनुमान को हमारा उद्धारक मानकर हमारी समस्त श्रद्धा उन्हीं को अर्पित करें । प्रकारान्तर से यह तथ्य निष्कर्षित है कि कलियुग का, वर्तमान विषय समय-परिस्थितियों के अनुकूल देवता यदि कोई है तो वह है, हनुमान । वे ही युग के योग-क्षेम को वहन कर संकट मोचक रूप में हमारे हितकारी होंगे ।

विशेष -

1. उक्तांश में कवि ने अपने श्रद्धेय आराध्य हनुमान की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए समस्त पाठकों व भक्त गणों से अपना विनम्र आग्रह प्रस्तुत किया है कि हमें हनुमान को ही अपना आराध्य मानना चाहिए ।
2. कवि ने हनुमान को आत्मदा, बलदा व युग का योग-क्षेम कारी बताया है जो कि सार्थक एवं उपयुक्त ही है ।

3. भाषा-शैली भावानुकूल तर्कानुमोदित उद्देश्योज़खी, सरस एवं -प्रभावी है । शब्दावली संस्कृतनिष्ठ एवं पारिभाषिक शब्दावली युक्त है । 'योग-क्षेम' 'गीता' का शब्द है जिसका भाव है "सब प्रकार की स्थितियों-मुसीबतों को झेलने वाला; क्षमतावान ।'

9.5 दो चट्टानें : संक्षिप्त विवेचन

आपने " दो चट्टानें " दीर्घ प्रबन्धात्मक कविता के प्रमुख अंशों की व्याख्या की । इन व्याख्यांशों के माध्यम से आप न केवल हनुमान व सिसिफस के दो विभिन्न चरित्रों को समझ गए होंगे अपितु इनके प्रतीक रूप से भारतीय व यूनानी, इन दोनों सभ्यताओं व संस्कृतियों में निहित भेद से भी परिचित हो गए होंगे । 54 पृष्ठों व 1412 पंक्तियों की रचना "दो चट्टानें" प्रबन्धात्मक औदात्य की कृति है । इसमें बच्चन ने अनेक यूनानी व भारतीय चरित्रों का अंकन कहीं वर्णनात्मक तो कहीं संकेतात्मक रूप में किया है । अनेकानेक घटनाओं का उल्लेख प्रत्यक्ष - परोक्ष रूप से हुआ है । यद्यपि मुख्य चरित्र हनुमान व सिसिफस ही हैं, लेकिन प्रसंगवश यूनानी मिथकों - आधारित अनेक चरित्रों का उल्लेख हुआ है । इनमें करबरस, प्लूटो, एटलस, प्रामिथियस, जीयस व भारतीय में राम, भरत, अंजना, रावण, भीमसेन इन्द्र, ऐरावत, अक्षयकुमार, सुग्रीव, विभीषण आदि शामिल हैं । कवि ने इन गौण पात्रों का विवरण भी दिया है । "दो चट्टानें" की कथा पेड के मूल तने के सहारे अनेक शाखा-प्रशाखाओं के द्वारा विस्तार पा गई है । पुराख्यान के मूल कथा रूप में होने पर भी रचनाकार ने हमारे युग की अनेक बातो को बड़ी ही निपुणता से प्रस्तुत किया है ।

बच्चन मूलरूप से गीतकार कवि के रूप में साहित्य जगत में जाने जाते रहे है, लेकिन इस रचना के प्रकाश में आने के साथ ही उनकी वर्णनात्मक प्रतिभा, प्रबन्धात्मक कौशल, कल्पनाशीलता, पौराणिक-सांस्कृतिक कथा तत्व के माध्यम से सामयिक परिवेश को मूर्त करने आदि के नवीन कौशलों की उद्भावना करने वाले सफल कवि के रूप में भी सामने आए । इस रचना में कवि ने बड़ी ही कुशलता, निपुणता व योग्यता से एक कथासूत्र से दूसरी कथा में प्रवेश कर दोनों में एकतानता व सुसम्बन्ध स्थापित करने में सफल रहे हैं ।

"दो चट्टानें" का मूल कथा स्रोत सिर्फ इतना भर है कि हनुमान व सिसिफस दोनों महा शक्तिशाली हैं । लेकिन सिसिफस जहाँ अपनी शक्ति का नकारात्मक उपयोग कर मृत्यु को बन्दी बनाने व अपनी अमरता की विजय पताका फहरा भौतिक जीवन जीने वाले लालची के रूप में प्रस्तुत होता है वहीं दूसरी ओर हनुमान अपनी शक्ति का सकारात्मक उपयोग कर जनहित में लगाते हैं । हनुमान की शक्ति राम से संयमित है इसलिए वह लोकोपकारी हो गई । सिसिफस छलपूर्वक मृत्यु को बन्दी बना लेने के अपराध में; संसार का अहित करने के कारण, एक ऐसे दण्ड का भागी बनता है तो अनन्त है । उसे दण्ड दिया जाता है कि वह एक महान, विशालकाय शिला को कल्पना गिरि पर्वत के शीर्ष भाग पर ठेलता हुआ ले जाए, और जब वह पुन: नीचे लुढ़क आए तो सिसिफस उसे पुन: अपने शरीर से धकेलता हुआ पर्वत के शीर्ष पर ले जाए । यह क्रिया अनन्त काल तक चलती रहे । दूसरी ओर हनुमान हैं जिन्होंने अपने स्वामी के हितार्थ संजीवनी पर्वत को अपने हाथों मे उठा लोकहित किया है । अत: एक ओर सिसिफस का निरर्थक एवं मूल्यहीन श्रम है, भौतिक जीवन की अमरता की चाह है वहीं हनुमान का सार्थक एवं मूल्यवान श्रम है जो स्वामी की सेवा के साथ-साथ

जनहित करता है । इस कथा सूत्र के माध्यम से कविवर बच्चन एक ओर भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता स्थापित करते हैं वही दूसरी और आज की भौतिकतावादी, बौद्धिक एवं अहंकारजन्य मानसिकता पर विनय व भक्ति को प्राथमिकता देते हैं । कवि का स्पष्ट संकेत यही है कि हमें शक्ति का संयमित उपयोग करना चाहिए । शक्ति स्वार्थ हेतु नहीं परार्थ हेतु प्रयुक्त हो, इसी में उसकी सार्थकता है । अहंकार जहाँ पतन का कारक है वहीं विनम्रता उत्थान की कारक ।

हनुमान की कथा के माध्यम से कवि की भावना यह है कि हमें भी स्वार्थ भावना, अहं, बौद्धिकता एवं भौतिकतावादी संस्कृति का त्याग कर जनहित, विनम्रता एवं शिष्टता, भावना एवं श्रद्धाशीलता, भक्ति-भाव आदि को अपनाना चाहिए । इसके अतिरिक्त कविता के अंतिम भाग में बच्चन ने हनुमान को आत्मदा, बलदा एवं योगक्षेमकारी बताया है । यह काफी महत्वपूर्ण है । यह इसलिए कि एक ओर जहाँ इस विचार से कवि की हनुमान के प्रति श्रद्धाशीलता व आराध्यदेव होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है वहीं दूसरी ओर भावना एवं विचारणा भी अभिव्यक्त हुई है कि वर्तमान समय में, कलियुग में हनुमान ही हमारा उद्धार कर सकते हैं । श्री राम ने हनुमान को ही नियुक्त किया हुआ है, वे सर्वसामर्थ्यवान हैं । वे भक्तों का सब तरह से ध्यान रखते हैं । हनुमान न केवल भक्तों को बल देने वाले हैं अपितु वे स्वयं भक्त हितार्थ अपने आपको प्रस्तुत कर देते हैं । सम्पूर्ण युग की कुशलता व कल्याण हनुमान की भक्ति व उपासना में निहित है । इस सन्दर्भ में स्वयं कवि की पंक्तियाँ उद्धृत हैं जिनमें सिसिफस व हनुमान का अन्तर निरूपित कर हनुमान को श्रेयस्कर बताया है- "दोनों मे समन्वय की संभावना मैंने नहीं देखी, पर दोनों से शक्ति-संचय करना कठिन नहीं है । सृजन और जीवन सिसिफस के साथ ही संभव है, पर शांति और संजीवनी-जिसके लिए मनुष्य कम नहीं तरसता और जो उसके लिए कम आवश्यक भी नहीं-हनुमान के ही पास है ।

पौराणिक एवं मिथकीय आख्यान के प्रस्तुतिकरण की सार्थकता एवं औचित्य तथा इस सन्दर्भ में "दो चट्टानें" की प्रासंगिकता की चर्चा कविता की पठनीयता हेतु, सार्थकता-सिद्धि हेतु आवश्यक है । यहाँ कविता की भूमिका में स्वयं बच्चन ने जो कुछ लिखा है वह स्वयं "दो चट्टानें" की प्रासंगिकता सार्थकता व उपयोगिता को प्रमाणित करता है । बच्चन लिखते हैं- ' 'नैतिकता-निरपेक्ष बौद्धिकता और विज्ञान की एकांगी और चरम उन्नति तथा अर्थ शासन तंत्र की विकसित शक्तिमत्ता के फलस्वरूप वैयक्तिक अहं का जो विस्फोट योरोप में हुआ और उसने (जिस) सामूहिक अहं के विस्फोट को निमंत्रित किया, उसमें अपनी आत्म-रक्षा के लिए व्यष्टि का अस्तित्ववादी दर्शन का आश्रय लेकर उभरना स्वाभाविक था ।..... बाद को जैसे-जैसे मेरी दृष्टि भीतर से बाहर की ओर गई और जैसे-जैसे मैं अपने संसार और विशषकर अपने देश में मूल्यों के विघटन के प्रति सचेत हुआ, मुझे व्यष्टि का सारा संघर्ष सिसिफस के दण्ड भोगने जैसा प्रतीत हुआ । '

9.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आपने प्रसिद्ध कवि हरिवंशराय बच्चन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को जाना । डॉ. बच्चन यद्यपि हालावादी व प्रेम-मस्ती की वैयक्तिक काव्यधारा के गीतकार-कवि के रूप में ख्यात हैं तदपि उनका परवर्ती काव्य भावुकता व व्यष्टि से इतर वैचारिकता, बौद्धिकता एवं समष्टि चतना से आप्लावित हैं । उनकी "दो चट्टानें" प्रबन्धात्मक दीर्घ कविता' एक

सांस्कृतिक-पौराणिक आख्यान की प्रतीकात्मक रचना है । 'दो चट्टानें' ' के प्रमुख अंशो की व्याख्या द्वारा एक ओर आपने रचना को समझा होगा वहीं दूसरी ओर यह परिचय भी पाया होगा कि यह रचना यूनानी संस्कृति पर भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती हैं । बौद्धिकता, भौतिकता एवं अहं युक्त जीवन संस्कृति की तुच्छता एवं मूल्यहीनता के स्थान पर विनम्रता, परोपकार, सेवा, त्याग एवं भक्ति-भाव की संस्कृति की महानता की प्रतिष्ठापना भी कविता में हुई, यह भी आप समझ गए होंगे । पौराणिक-मिथकीय आख्यान होते हुए भी वर्तमान परिवेश में इसकी प्रांसगिकिता के तर्को को आप समझे होंगे ।

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सिसिफस किस बात से भयभीत था? विस्तार से स्पष्ट कीजिए ।
2. मृत्यु को बन्दी बनाने का क्या परिणाम हुआ? समझाइए ।
3. कविता के आधार पर सृष्टि में क्षरण का महत्व बताइए ।
4. सिसिफस दिमाग से भाव-विचार शून्य कब व क्यों हुआ? विवेचन कीजिए ।
5. कविता में प्रस्तुत दर्शन को स्पष्ट कीजिए ।
6. हनुमान को सिसिफस की तुलना में श्रेष्ठ स्थापित किया गया है । आप पक्ष-विपक्ष में सतर्क-सप्रमाण विश्लेषण कीजिए ।
7. 'वहन करेगा यही तुम्हारे, मेरे, युग का योग-क्षेम' का भाव विस्तार कीजिए ।
8. यदि आप सिसिफस की तरह सर्वशक्तिमान होते तो क्या करते? स्पष्ट कीजिए ।
9. लोग सामान्यत: जीवन की कामना करते हैं, लेकिन कविता में 'मौत की माँग' किए जाने का प्रसंग है । ऐसा क्यों हुआ? मौत या नाश की आवश्यकता पर विचार कीजिए ।
10. कविता के आधार पर समझाइए कि "भारतीय संस्कृति सिरमौर है । "

9.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. हरिवंशराय बच्चन; दो चट्टानें, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1993 ।
2. डॉ. मनोज गुप्ता; बच्चन का काव्य शिल्प, गौतम बुक कम्पनी, जयपुर, 2007 ।
3. सीमा जैन; बच्चन, कविता और जीवन के अन्त: सूत्र, ईशा ज्ञानदीप, नई दिल्ली, 2000 ।
4. डॉ. श्यामसुन्दर घोष, बच्चन परवर्ती काव्य; राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1967 ।
5. डॉ. प्रवीण शर्मा, बच्चन और उनका काव्य; अभिरूचि प्रकाशन, दिल्ली,1999 ।
6. डॉ. सुधाबहन कनुभाई पटेल; बच्चन जीवन और साहित्य, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1980 ।
7. डॉ. जीवन प्रकाश जोशी; बच्चन: व्यक्तित्व और कृतित्व, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली 1968 ।

इकाई - 10

'दो चट्टानें' कविता का अनुभूति व अभिव्यंजनात्मक पक्ष

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 कवि परिचय

10.3 दो चट्टानें रचना परिवेश

10.4. दो चट्टानें अनुभूति पक्ष

- 10.4.1 कथा स्रोत
- 10.4.2 सांस्कृतिक बोध
- 10.4.3 आधुनिक बोध
- 10.4.4 मूल्यवादिता
- 10.4.5 दो चट्टानें : चिन्तन/दर्शन
- 10.4.6 चरित्र चित्रण : हनुमान व सिसिफस
- 10.4.7 सृजनोद्देश्य/ संदेश

10.5. दो चट्टानें : अभिव्यक्ति पक्ष

- 10.5.1 काव्य-भाषा
- 10.5.2 दो चट्टानें :काव्यरुप
- 10.5.3 मिथक
- 10.5.4 प्रतीक विधान
- 10.5.5 अप्रस्तुत योजना
- 10.5.6 शीर्षक की सार्थकता

10.6 सारांश

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.8 संदर्भ ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में डॉ. हरिवंशराय बच्चन के परवर्ती काव्य की प्रमुख प्रतिनिधि रचना 'दो चट्टानें' के वैचारिक पक्ष का विवेचन-विश्लेषण कर उसमें निहित सांस्कृतिक चेतना, आधुनिकता व अस्तित्ववादी चिन्तन को जान समझ-सकेंगे । संकेतित इकाई में आपको 'दो चट्टानें' का केन्द्रीय भाव तो समझने को मिलेगा ही साथ ही इसके अभिव्यजंना पक्ष के अन्तर्गत कविता के प्रबन्धात्मक औदात्य (काव्य रुप), मिथक प्रयोग, प्रतीक विधान आदि का सम्यक विश्लेषण कर सकेंगे । आलोच्य इकाई के अध्ययनोपरान्त आप -

- बच्चन के जीवन को संक्षेप में जान सकेंगे ।
- 'दो चट्टानें' किस परिवेश में रची गई, को समझ सकेंगे ।
- 'दो चट्टानें' के कथा स्रोत से परिचित होकर संकेतित चरित्र सिसिफस व हनुमान को जान पाएँगे।
- रचना के केन्द्रीय भाव को समझते हुए उसमें प्रस्तुत मूल्यवादिता, अस्तित्ववादी दर्शन, सामयिक परिवेश, भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता को जान पाएँगे ।
- 'दो चट्टानें' के अभिव्यक्ति पक्ष में आप दीर्घ कविता के स्वरुप को समझते हुए 'दो चट्टानें' के काव्यरुप का विवेचन कर सकेंगे ।
- आलोच्य कविता के भाषिक व शैल्पिक वैशिष्ट्य के परिप्रेक्ष्य में रचना में निहित मिथक, प्रतीक, बिम्ब विधान आदि का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे ।
- इकाई के समग्र अध्ययन के बाद 'दो चट्टानें' को सम्यक समझकर आप पूछे गये प्रश्नों का सटीक उत्तर दे सकेंगे ।

10.1 प्रस्तावना -

आलोच्य इकाई में हम डॉ. हरिवंशराय बच्चन की साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित रचना 'दो चट्टानें से संकलित उक्त शीर्षक रचना की अन्तर्वस्तु की गहन पड़ताल करेंगे ।

'दो चट्टानें बच्चन के परवर्ती काव्य की (1965 में प्रकाशित) प्रतिनिधि रचना है । इसमें यूनानी दन्त कथा के पात्र सिसिफस व भारतीय संस्कृति में प्रमुख आराध्य देव हनुमान के जीवन कर्म को प्रस्तुत कर उनकी तुलनात्मक स्थिति सम्यक संकेतित हुई है । पिछली इकाई में व्याख्याओं के माध्यम से आप कविता की मूल संवेदना व उसके स्वरुप से भली प्रकार से परिचित हो चुके हैं। व्याख्याओं के माध्यम से आपने रचना में निहित विचार व भाव-विस्तार समझा । यहाँ हम कविता की अंतर्वस्तु के सौन्दर्य का विवेचन-विश्लेषण कर उसके बाह्य पक्ष के मुख्य उपादानों की सामान्य चर्चा कर, तदन्तर उनकी पड़ताल कर समग्र रुप से 'दो चट्टानें' के काव्य सौन्दर्य के मर्म को जानेंगे।

10.2 कवि परिचय

डॉ. हरिवंशराय बच्चन ऐसी सख्शियत हैं जो किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं । आज बच्चन परिवार करोड़ों भारतीयों के दिल पर अपनी प्रतिभा, कला, उच्च स्तरीय जीवन मूल्य आदि के कारण राज करते हैं । अमिताभ, अभिषेक एवं ऐश्वर्या बच्चन डॉ. हरिवंश राय बच्चन के क्रमश: पुत्र, पौत्र व पौत्र वधु हैं । ' 'मधुशाला के सर्जक, हालावाद के प्रवर्तक ख्यातनाम गीतकार, प्रेम, मस्ती, स्वच्छन्दता एवं वैयक्तिकता को सहजता से वाणी देने वाले ऐसे डॉ. बच्चन का जन्म 27 नवम्बर 1907 ई. को इलाहाबाद में कायस्थ परिवार में हुआ । संर्घषशील व्यक्तित्व के धनी बच्चन ने व्यक्तिगत सामाजिक एवं साहित्यिक, इन त्रय स्तरों पर कठिन संघर्ष किया । बाधाओं के कारण उच्च शिक्षा में रुकावट आई । केम्ब्रिज वि.वि. इंग्लैण्ड से ईट्स पर पीएच.डी. की उपाधी प्राप्त की ।

जीविकोपार्जन हेतु अध्ययन के साथ ट्यूशन पढ़ाते थे । विधिवत रोजगार पत्रकार के रुप में मिला । फिर सम्पादन से जुड़े । अग्रवाल विद्यालय में अध्यापक बनें और तदुपरान्त इलाहाबाद

वि.वि. में अग्रेंजी के अस्थाई व्याख्याता के रुप मे नियुक्ति पाकर फिर स्थाई हुए। रेडियो प्रोड्यूसर व विदेश मंत्रालय में भी सेवा दी। राज्य सभा से सांसद मनोनीत हुए। 1935 में मधुशाला के प्रकाशन के साथ ही जन कवि बने। आपकी पूर्वाद्ध की रचनाओं में जहां प्रेमजन्य मस्ती, स्वच्छन्दता, प्रणयानुभूति, निराशा, वेदना एवं विविध भोगी गई भावानुभूतियाँ हैं वहीं परवर्ती रचनाओं में अनुभव जन्य वैचारिकता, बौद्धिकता, व्यक्ति के स्थान पर समष्टि चेतना आदि की प्रभावी अभिव्यक्ति है। बच्चन की काव्य भाषा अत्यन्त सहज-सरल थी। यही कारण था की वे जन-मन के कवि बन गए। ऐसे स्वनामधन्य कवि की मृत्यु 18 जनवरी 2003 को मुम्बई में हुई।

बच्चन की प्रमुख रचनाओं में मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, निशा निमंत्रण, मिलन यामिनी, एकान्त संगीत, उभरते प्रतिमानों के रुप, दो चट्टानें; (सभी काव्य) क्या भूलूँ क्या याद करुँ, नीड़ का निर्माण फिर, बसेरे से दूर व दशद्वार से सोपान तक (आत्म कथाएँ) व प्रवासी की डायरी शामिल है।

10.3 दो चट्टानें : रचना परिवेश

दो चट्टानें 1962-64 में रचित कविताओं का संकलन है। यह 1965 मे प्रकाशित हुआ। इस संकलन की अंतिम कविता का शीर्षक है 'दो चट्टानें' अथवा सिसिफस बरक्स हनुमान। 1955 तक तो कविवर बच्चन वैयक्तिकता बोध की कविताएँ रचते रहे। यहाँ आकर एक तरह से दोहरा परिवर्तन हुआ। पहला तो यह कि कवि का आन्तरिक जीवन स्थिर हो चुका था। उम्र की दृष्टि से वह अब अर्द्धशतक पूरा करने को थे। यह वय गृहस्थ को त्याग कर संन्यास लेने की होती है। सामाजिक व साहित्यिक समाज में आप सुप्रतिष्ठित एवं सुसम्मानित हो चुके थे। समग्रत: कर्म क्षेत्र मे भी स्थायित्व आ चुका था। दूसरा परिर्वतन यह कि बाह्य परिवेश में अब भारत आजाद हो चुका था। जन मन की अब हमारी चुनी सरकार से बहुत उम्मीदें थी। चीन ने भारत पर आक्रमण किया और हम उसका मुकाबला नहीं कर सके। इस तरह सरकार की नपुंसकता और सरकार की असफलता से जनता बहुत दुखी थी। वैश्विक परिदृश्य पर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद परमाणु अस्त्रों का जबरदस्त खौफ व युद्ध की आशंका, भौतिकतावाद, अहम की टकराहट, बौद्धिकता आदि के कारण स्थितियाँ बड़ी विकट हो गई थी। ऐसे परिवेश मे सार्त्र व कामू जैसे विदेशी साहित्यकार अस्तित्ववादी दर्शन पर आधारित अतियथार्थवादी, एब्सर्ड या असंगत साहित्य की सर्जना कर रहे थे। इन सब का प्रभाव बच्चन के साहित्यकार मनस् पर भी पड़ा। इन सब के प्रभाव का संकेत बच्चन ने प्रस्तुत कविता की भूमिका में भी किया-

'नैतिकता-निरपेक्ष' बौद्धिकता और विज्ञान की एकांगी और चरम उन्नति तथा अर्थ-शासन-तंत्र की विकसित शक्तिमत्ता के फलस्वरूप वैयक्तिक अहम् का जो विस्फोट योरोप मे हुआ और उसने जिस सामूहिक अहम् के विस्फोट को निमंत्रित किया उसमें अपनी आत्मरक्षा के लिए व्यक्ति का अस्तित्ववादी दर्शन का आश्रय लेकर उभरना स्वाभाविक था। उसका उद्देश्य था काल्पनिक आश्वासन-आशा से विमुक्त सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, हर प्रकार की व्यवस्था के प्रति विद्रोही, जीवन के भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक तथ्यों के प्रति पूर्ण सचेत एंव तर्क संयमित विचार तथा निर्बाध अनुभूतियों के अधिकार से समन्वित व्यष्टि की उस इकाई की प्रतिष्ठा..।

वास्तव मे बच्चन को विश्व भर मे खासकर भारत में मूल्यों के विघटन ने झकझौरा । कवि को व्यक्ति का सारा संर्घष सिसिफस के दण्ड भोगने जैसा लगा । इसी कारण सिसिफस को कथा के केन्द्र में रख कर आस्था के केन्द्र, मूल्यवादी प्रेरणास्पद, प्राणद, बलदा, युग के योग क्षेमकारी हनुमान को अपनी श्रृद्धा का केन्द्र बनाकर इस नकारात्मक एवं भौतिकवादी युग-परिवेश मे शक्ति, मूल्य एवं जीवनामृत का अगाध स्रोत माना । स्पष्ट है कि उपरिवर्णित संघर्षमय एवं नकारात्मक परिवेश मे हनुमान के चरित्र से ही भक्ति, त्याग, परोपकार, सार्थक जीवन श्रम एवं सकारात्मक जीवन की प्रेरणा दी जा सकती थी, और बच्चन ने यही किया ।

10.4 दो चट्टानें : अनुभूति पक्ष

आलोच्य कृति को सम्यक प्रकार से समझने के लिए उसकी अन्तर्वस्तु, मूल्य संवेदना और भाव पक्ष का विश्लेषण आवश्यक है । इस हेतु कविता की कथा या वस्तु का स्रोत, रचना में निहित सांस्कृतिक-आधुनिक बोध, अस्तित्ववादी दर्शन, रचना का संदेश मूल्यान्वेषण, मुख्य चरित्रों का विश्लेषण व तुलनात्मक स्थिति आदि का विवेचन-निदर्शन प्रस्तुत है ।

10.4.1 कथा स्रोत

विवेचनीय रचना मुख्यत: दो संस्कृतियों की कथा पर आधारित है । ये संस्कृतियाँ हैं:- यूनानी व भारतीय । यूनानी दन्तकथाओं में से सिसिफस व प्रोमीथियस की कथा ली गई है । वहीं भारतीय संस्कृति में हनुमान चिर परिचित हैं ही । रचना में हनुमान, सिसिफस व प्रोमीथियस के चरित्र को संबंधित कथाओं के आधार पर उद्घाटित किया गया है यहाँ उक्त तीनों चरित्रों सम्बंधी कथांश संक्षेप में प्रस्तुत है ।

(क) सिसिफस की कथा

यूनानी दंतकथाओं के अनुसार मृत्यु को बंदी बना लेने के अपराध में सिसिफस को यह दण्ड दिया गया था कि वह एक चट्टान को ठेल कर पर्वत की चोटी पर ले जाए और अनन्त काल तक यह क्रम चले ।

(ख) प्रोमीथियस की कथा

प्रोमीथियस की कथा भी यूनानी दंतकथाओं मे मिलती है । प्रोमीथियस ने ही सर्वप्रथम स्वर्ग लोक से आग चुराकर उसे मानवों के लिए उपलब्ध किया था । इस अपराध के लिय उसे यह दण्ड मिला था कि वह एक चट्टान पर जंजीरों से जकड़ दिया जाए, दिन भर एक गरुड उसके पेट का मांस नोच-नोचकर खाए, रात को घाव भर जाए और प्रात: गरुड आकर फिर क्रूर किया आरम्भ करे, और यह क्रम अनन्त काल तक चले । उक्त दोनों कथा में हमने देखा की सिसिफस व प्रोमीथियस दोनों को अपने अपने अपराधों के लिए दण्ड मिला, लेकिन जहाँ सिसिफस के दण्ड मे व्यर्थता बोध है वहीं प्रोमीथियस के दण्ड मे कुछ सार्थकता । बच्चन के अनुसार प्रोमीथियस को कम से कम यह सन्तोष होगा की वह एक बड़ी और उपयोगी उपलब्धि का मूल्य चुका रहा है, चाहे वह कितनी ही महंगी क्यों न पड़ी हो ।

(ग) हनुमान की कथा

हनुमान के चरित्र से कौन हिन्दू भारतीय अपरिचित होगा? हनुमान की जीवन गाथा कहने का यहाँ कोइ औचित्य नहीं है । लेकिन फिर भी कविता में हनुमान सम्बन्धी जो वृतान्त जिस उद्देश्य से प्रस्तुत हुआ है उसका संकेत सिसिफस व प्रोमीथियस के सन्दर्भ में अपेक्षित है ।

हनुमान ने भी परहितार्थ, स्वामी सेवार्थ, मूल्य रक्षार्थ, सत्यार्थ हेतु अपने हाथों में एक चट्टान, पूरा पहाड़ गंधमादन ही धारण किया था । राम-रावण युद्ध में जब मेघनाद ने लक्ष्मण को शक्ति दी और जब वह मूर्च्छित हुए तो वैद्य द्वारा बताई संजीवनी नामक औषधि को लाने का गुरूतर उत्तरदायित्व हनुमान के स्कंधों पर था । और हनुमान ने अनेक बाधाओं का शमन करते हुए अपना कार्य सफलता से किया ।

वस्तुत: कविता में हनुमान का कथा प्रसंग उनके जीवन के व्यापक कथा फलक को वर्णित करता है लेकिन दो चट्टानें' के संदर्भ मे उपयुक्त घटना संकेत ही पर्याप्त हैं । यों प्रसंगवश व श्रद्धावश कवि ने हनुमान का राम भक्त रूप, कदलीवन प्रसंग, सूर्य को निगलने व शक्ति को संयत करने की घटना, हनुमान के पंच रुप, राम का लीला सहचर, बजरंग से हनुमान होने की घटना, शक्ति विस्मृति का प्रसंग, इच्छा बल के साकार होने की घटना व अन्त में उसके युग के योग क्षेमकारी स्वरूप का वर्णन अपने व्यापक कलेवर में किया है, इसी व्यापकत्व के कारण प्रस्तुत रचना प्रबंधात्मक कौशल की रचना बन गई है ।

10.4.2 सांस्कृतिक बोध

आलोच्य कृति 'दो चट्टानें' स्पष्ट रुप से दो विविध या विपरीत मूल्यों की संस्कृति की गाथा है । एक संस्कृति यूनानी है तो दूसरी भारतीय । वास्तव में समेकित रचना ही यूनानी संस्कृति पर भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता की अभिव्यक्ति करती है । यूनानी संस्कृति जहाँ भौतिकवाद, अहंकार, जीवन भोग, स्वार्थकेन्द्रितता शक्ति के दुरुपयोग, जीवन की व्यर्थता व मूल्यहीनता की संस्कृति है; वहीं भारतीय संस्कृति उपर्युक्त से दूर-विपरीत सादगी, परोपकार, त्याग, परदुखकातरता अहंकार शून्यता, जीवन की सृजन शीलता व सार्थकता, शान्ति आदि के रुप में प्रस्तुत हुई है । कवि ने दोनों संस्कृतियों की तुलना, दोनों संस्कृतियों के महानायकों व उनके जीवन चरित्र के आधार पर प्रस्तुत की है ।

'दो चट्टानें' में मूल कथा में तो उक्त सांस्कृतिक बोध मुख्यत: उकेरा ही है साथ ही उत्तरार्ध में हनुमान को स्पष्ट रुप से अपना आराध्य मान कर उनके प्रति जो श्रद्धाशीलता व्यक्त हुई है उसके अन्तर्गत कवि ने भारतीय संस्कृति के इस पक्ष को भी अपनी वैयक्तिक भावना से उभारा है की वर्तमान कलियुग में हनुमान ही ऐसा आराध्य देव है जो हमारे समस्त संकटो को हरण करने में सक्षम है । अन्य समस्त देवताओं का मत जैसे हनुमान के पक्ष में है और सभी देवगणों ने हनुमान को अपना योग्य प्रतिनिधि मान कर जनहितार्थ भक्तों के मंगल हेतु पृथ्वी पर उतारा है । कवि की भावना यह है कि हनुमान के सभी देव उपासक हैं । वे ही सर्व समर्थवान है । हमारे युग का योग क्षेम वे ही वहन कर सकते हैं । कवितान्त की पंक्तियाँ हनुमान को अन्य देवगणों पर श्रेष्ठ तो सिद्ध करती ही हैं साथ ही यह ध्वनि भी है कि हनुमान की आराधना से ही हमारा सर्व मंगल हो सकता है । वस्तुत:

यह व्यावहारिक सत्य भी है कि आज हनुमान सर्वाधिक पूज्य देव हैं । अत: स्पष्ट है कि कविता से हमारी संस्कृति का बोध स्वरुप सहित प्रस्तुत हुआ है ।

10.4.3 आधुनिक बोध

यह निश्चित ही विचारणीय बिन्दु है कि आखिर पौराणिक कथा आख्यान के माध्यम से कवि क्या सिर्फ उसे पुन: प्रस्तुत करना चाहता है? या कोई अन्य चेतना भी कार्य कर रही है । निश्चय ही बच्चन जी का उद्देशय पौराणिक आख्यान का पुनर्प्रस्तुतिकरण व यूनानी संस्कृति पर भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता स्थापित करना मात्र नहीं है । इस पौराणिक आख्यान में आधुनिकता है, अनेक संदर्भ बिछे पड़े हैं । सबसे मुख्य तो यही है कि हमें हमारे जीवन को सिसिफस की तरह अहंग्रस्त, स्वार्थपूर्ण, मूल्यरहित एवं भौतिक चकाचौंध से युक्त नहीं रखना है । यदि हमने भी ऐसा ही किया तो सिसिफस की तरह दुर्गति स्पष्ट है । साथ ही आज आमजन त्रस्त है, आज की दुनिया अशांत है, चहुँ ओर बौद्धिकता हावी है, जन-मन भय ग्रस्त हैं । शक्ति का हर जगह दुरुपयोग हो रहा है । पूरा विश्व विध्वंस की आशंका से काँप रहा है, अत: हमें ऐसी स्थिति से बचना चाहिए । कवि का कथन स्पष्ट है-

बल विद्या से
जो संभव विध्वंस
उसी की आशंका से
क्या न विश्व सब काँप रहा है?
X X X
तिस पर भी क्या निर्भयता है?
शान्ति कहीं है?

आधुनिकता बोध की उक्त सभी समस्याओं का समाधान बच्चन ने हनुमान के चरित्र को आदर्श व प्रेरक मानने में निहित माना है । वर्तमान जीवन की अशांति व आपाधापी तभी दूर हो सकती है जब हम भारतीय संस्कृति में आस्था रखकर हनुमान के चरित्र से प्रेरणा लें ।

10.4.4 मूल्यवादिता

आज सर्वत्र यह शोर है कि मूल्यों का विघटन हो रहा है या मूल्य हैं ही नहीं । आज जीवन तेजी से बदल रहा है । पश्चिमी जीवन शैली मुख्यत: भौतिकवाद,चकाचौंध व भोगवाद पर आधारित है । इस संस्कृति का प्रभाव भारतीय उपमहाद्वीप में दिनानुदिन बढ़ रहा है । स्थूल रुप में त्याग, सेवा, परोपकार, अहिंसा, परदुखकातरता, दया, ईमानदारी, अपरिग्रह, अचौर्य, शुचिता, सादगी आदि ही भारतीय संस्कृति के परम्परित मूल्य हैं । इन्हीं मूल्यों के सन्दर्भ में 'दो चट्टानें' में निहित मूल्यों का विश्लेषण अपेक्षित है ।

वस्तुत: यह सत्य है कि पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव से हमारे परम्परित मूल्यों का क्षरण हुआ है । कविवर बच्चन भी कहीं न कहीं किसी न किसी स्तर पर इन मूल्यों के क्षरण से पीड़ित रहे । यही वजह है कि यूनानी संस्कृति के मूल्यों के कारण सिसिफस की हुई दुर्गति के आधार पर उन्होंने भारतीय संस्कृति में निहित मूल्यों के पोषण की बात हनुमान के माध्यम से कही । कविता

की भूमिका में बच्चन का कथन इस संदर्भ में उल्लेख्य है-".... जैसे-जैसे मैं अपने संसार और विशेष कर अपनें देश में मूल्यों के विघटन के प्रति सचेत हुआ मुझे व्यष्टि का सारा संघर्ष सिसिफस के दण्ड भोगने जैसा प्रतीत होने लगा । " बच्चन ने हनुमान के जीवन चरित्र के बखान के माध्यम से शान्ति और संजीवनी जैसे व्यापक एवं अनिर्वाय जीवन मूल्यों की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है । अन्य मूल्य हनुमान के जीवन चरित्र की विशेषताओं में स्पष्ट हैं ।

10.4.5 दो चट्टाने: चिन्तन/ दर्शन

व्यापक अध्ययन, वृहद् अनुभव व वैचारिक आलोड़न-विलोड़न के परिणामस्वरुप हरेक कलाकार और रचनाकार का चिन्तन विकसित होता है, जिसकी व्यापक अभिव्यक्ति उसकी रचनाओं में मिलती है । बच्चन के जीवन की वृहद् संवेदनाएँ, विचारणाएँ आदि भी उनके चिन्तन के रुप में प्रस्तुत हुई हैं । कविवर बच्चन यद्यपि व्यावहारिक दर्शन पर बल देने वालों में से थे । तदपि प्रस्तुत रचना में उनका अस्तित्ववादी दर्शन के संदर्भ में व्यापक चिन्तन व दर्शन प्रस्तुत हुआ है । आलोच्य रचना में, यौवन-चिन्तन, मूल्य चिन्तन, अलौकिक शक्ति या ईश चिन्तन आदि भी प्रसंगवश प्रस्तुत हुआ है । वस्तुत: ये कवि के विचार हैं । मुख्य-मुख्य बिन्दुओं पर उन्होंने अपनी जो चिन्तना/ विचारणा प्रस्तुत की है, वह संक्षेप में इस प्रकार है-

मृत्यु के संबंध में कवि ने कहा है कि यह मनुष्य की सबसे बड़ी लाचारी है । मृत्यु वास्तव में आकर्षमय संसार के मुख पर एक कड़ा तमाचा है, जिससे इंसान तिलमिलाकर ढेर हो जाता है । इसका कोई समय भी तय नहीं होता है ।

यौवन चिन्तन के अन्तर्गत बच्चन कहते हैं कि यौवन में इंसान को मृत्यु का खयाल नहीं आता । जवानी सदैव नीले नभ के समान ताजी रहती है, यह निर्जर और संगमरमर मूर्ति के समान होती है । शक्ति, धन, विद्वता, भलाई सब इसके आगे बेकार हैं ।

नारी चिन्तन के अन्तर्गत बच्चन का मानना है कि यह प्रकृति की प्रतिनिधि है । इससे विनाश व मरण के विचार तक पास नहीं आते । वह अन्यजनों की दृष्टि को इसी संसार से बाँधे रखती है।

अलौकिक शक्ति का चिन्तन करते हुए बच्चन ने बताया है कि संकट के समय अभय देने वाला, मनुष्य को अपने इशारों पर नचाने वाला, उसे निर्दिष्ट करने वाला, कल्याण पथ पर लगाने वाला, अर्थवान और समर्थवान बनने वाला, यदि कोई है तो वही (ईश्वर) है । उक्त के अतिरिक्त बच्चन ने कहा कि जब व्यक्ति उन्नति के शिखर पर हो, उसे तब शक्ति के स्थान पर विनम्रता व भक्ति का आश्रय लेना चाहिए । रचना में यह दर्शन भी व्यक्त हुआ है कि सृष्टि के सुचालन के लिए विनाश, ध्वंस, पतन व मृत्यु भी आवश्यक है । इसका भी अपना सौन्दर्य है । सृजन हेतु विध्वंस आवश्यक है । सृष्टि का आकर्षण सौन्दर्य व सार्थकता तभी है ।

10.4.6 चरित्र चित्रण

'दो चट्टानें' दीर्घ कविता में यों तो अनेक चरित्र कथानुरूप प्रस्तुत हुए हैं, यथा प्रोमीथियस, सिसिफस, करबरस, प्लूटो, एटलस, जीयस, हनुमान, श्रीराम, भीम, रावण, भरत, अंजना, द्रौपदी, राहु, इन्द्र, ऐरावत, सुग्रीव, अक्षय व विभीषण आदि । इनका किसी का संक्षिप्त तो किसी का विशद उल्लेख

है । लेकिन यहाँ हनुमान व सिसिफस के चरित्र का विश्लेषण करना ही सार्थक होगा, क्योंकि वस्तुत: ये ही कथा के केन्द्र में है और इन्हीं के द्वारा रचनाकार के उद्देश्य की संपूर्ति हुई है ।

क) हनुमान

हनुमान अंजनी सुत हैं, रामभक्त हैं । उनमें परम दिव्यता व विभव है । वे हमारे समक्ष पंच रुपों में समुपस्थित है ।वे सचराचर राम के सेवक हैं, अत: जहाँ भी राम कथा होती है वे छदम् रुप में हमेशा सुनने जाते हैं । उन्हे सीयाराम की कथा सुनने की सदैव प्यास रहती है । वे अमर हैं, उनका अमरत्व राम की कथा श्रवण करते रहने पर ही निर्भर है । उन्होनें बालपन में रवि को ग्रस लिया था उनके जन्म समय दशो-दिशाओं में भंयकर ध्वनी हुई थी, उनचास पवन दहाड़ी थी, लंका में अपशगुन हुए और रावण के वामांग फड़के । जन्म के समय राम भक्तों में ईर्ष्या जागी थी । महावीर हनुमान इसलिए हुए कि जब रवि को निगला तो सूर्यदेव को बाहर निकलने के लिए इन्द्र ने वज्र चलाया इससे उनकी ठुड्डी टूट गई थी । ठुड्डी को हनु कहते हैं इसलिए वे हनुमान हुए ।

बालपन में ही हनुमान में इतना प्रचण्ड वेग-बल था कि वे चाहते तो ब्रह्माण्ड को गेंद की तरह उठाकर, कच्चे घड़े की तरह फोड़ डालते । हनुमान की शक्ति संयमित करने के लिए सूर्य देव ने पाठ पढ़ाया । जामवन्त द्वारा शक्ति की याद दिलाने पर वे सात समुद्र के पार चले गये थे । गंधमादन पर्वत को उखाड़कर ले आये थे, अशोक वाटिका को उजाड़कर लंका को जला दिया । इस तरह 'दो चट्टानें' दीर्घ कविता में हनुमान के जीवन-चरित्र से संबंधित अनेक घटनाओं का संक्षिप्त या विस्तृत अंकन-वर्णन हुआ है ।

कविता के अन्त में हनुमान को आत्मदा, बलदा और युग का योग-क्षेमकारी बताया गया है जो वास्तव में हनुमान की अद्भुत शक्ति सामर्थ्य व देव कृपा को इंगित कर हमें इस ओर प्रेरित करता है कि हम भी श्रद्धा से हनुमान की उपासना करें ताकि हमारा जीवन सब तरह से सार्थक हो सके ।

ख) सिसिफस

'दो चट्टानें' का दूसरा प्रमुख पात्र सिसिफस है । सिसिफस भी अद्भुत शक्तिशाली है । उसका शारीरिक सौष्ठव देखते ही बनता है । लम्बी चौड़ी छाती वाला कसी हुई पिंडलियों, हाथी की सूँड के समान जंघाओं वाले सिसिफस का शरीर बहुत ही मजबूत कसा हुआ व वीरों के समान अत्यन्त आकर्षक है । उसने मृत्यु को बन्दी बना लिया था । अत: उस अपराध में आज भी हजारों सालों से लगातार एक बड़ी शिला को पर्वत के ऊपर ले जाने व बार-बार चढ़ाने का कृत्य कर रहा है ।

सिसिफस वस्तुत: यूनान के एओलिया द्वीप का था, उसके पिता एओलस वहाँ के राजा थे । सिसिफस के पास भी शासन, सत्ता व शक्ति थी लेकिन मृत्यु के भय के कारण, अहंकार वश व जीवन की भौतिकता को लम्बे समय तक भोगने के लालच में उसने मृत्यु को बन्दी बना डाला था । परिणामस्वरुप उसे निरर्थक मूल्यहीन व उद्देश्यहीन श्रम करना पड़ा उसका जीवन यंत्रवत एवं शून्य हो गया ।

10.4.7 सृजनोद्देश्य/ संदेश

इस बिन्दु पर विचार करना भी अपेक्षित है कि "दो चट्टानें" सृजन का मूल उदद्देश्य क्या है? इसके माध्यम से कवि ने क्या संदेश दिया है? वे इसके माध्यम से क्या कहना चाहते हैं? 'दो चट्टानें' एक महत् उद्देश्य को लेकर सृजित हुई। यह उद्देश्य भारतीय संस्कृति की यूनानी या पाश्चात्य संस्कृति पर विजय दिखाने के सामान्य उद्देश्य से इतर है । बच्चन ने अपने आराध्य हनुमान के प्रति श्रद्धा व आस्था व्यक्त करते हुए उस (चरित्र) से प्रेरणा लेने की बात कही है । प्रस्तुत रचना का मुख्य उद्देश्य या संदेश यह है कि हम भौतिकतावाद, बौद्धिकतावाद उपभोगवाद, वैयक्तिकता, अहंनिष्ठता के स्थान पर परोपकार, त्याग, मानवतावाद सादगीपन, आस्था, विश्वास के बूते ही सफल जिन्दगी जी सकते हैं । शान्ति, सुख एवं सम्पन्नता की चाह भारतीय संस्कृति व उसमें निहित मूल्यों के अनुपालन से ही पूरी हो सकती है । अत: कवि का "दो चट्टानें" के पीछे यही उद्देश्य है कि हम हनुमान के जीवन से व आचरण से प्रेरणा लेकर उसके प्रति आस्था, श्रद्धा व निवेदन भाव प्रस्तुत करें । शक्ति के अहम् से जहाँ पतन होता है वहीं शक्ति के शिखर पर पहुँच कर भक्ति-भाव, विनम्रता, अहंशून्यता आदि से जीवनोत्थान होता है । निष्कर्षत: डॉ. प्रवीण शर्मा के शब्दों में "दो चट्टानें" का सृजनोददेश्य या संदेश यह माना जा सकता है कि पश्चिम में यद्यपि वैज्ञानिक एवं भौतिक तोर पर प्रगती कर ली है तथापि आनन्द एवं शान्ति की उपलब्धि भारतीय (संस्कृति की) परम्पराओं एवं मान्यताओं के आधार पर की जा सकती है । अत: संदेश यह है कि हमें भी हनुमान के जीवन से प्रेरणा लेकर अहं का त्याग कर अपने आराध्य के प्रति भक्ति व समर्पण भावना प्रदर्शित करनी चाहिए ।

10.5 "दो चट्टानें" अभिव्यक्ति पक्ष

यद्यपि भावानुभूति एवं अभिव्यक्ति काव्य के अन्योन्याश्रित पक्ष हैं । तदपि रचना को सम्यक समझने के लिए उसके शिल्प या कला पक्ष पर विचार करना भी अपेक्षित है । यह ध्यातव्य है कि बच्चन का काव्य भाव प्रधान काव्य है, जिसमें भाषा, शब्द व उसका प्रस्तुतिकरण बिल्कुल सहज, सरल एवं आमफहम शैली में किया गया है । बच्चन अभिव्यक्ति पक्ष के प्रति जागरुक नहीं रहते । न ही इसके प्रति उनका आग्रह-दुराग्रह है । वे तो स्वयं भावों को व्यक्त करने के लिए छोड़ देते हैं । वे ऐसी भाषा के पक्षपाती हैं जो समाज से सम्पृक्त रखे । कवि ने कहा भी है- "रचना करते समय भाव-विचारों की अभिव्यक्ति ही मेरा ध्येय होता हैं । शब्दों अथवा अभिव्यंजना के नये प्रयोगों के लिए कुछ लिखना मुझे अस्वाभाविक लगता है । " अत: बच्चन के काव्य में प्रस्तुतिकरण के लिए जो शैल्पिक उपादान सहज ही प्रयुक्त हुए हैं उनमें काव्य-भाषा, काव्य रुप, प्रतीक, मिथक, बिम्ब, अप्रस्तुत योजना आदि को केन्द्र मे रख कर हम "दो चट्टानें" के अभिव्यक्ति पक्ष का विवेचन-विशलेषण कर रहे हैं ।

10.5.1 काव्य-भाषा

"दो चट्टानें' ' की भाषा प्रसंग, विषय, भाव के अनुरुप सरल, सहज, प्रवाही व प्रभावी हैं । कथानुरुप कहीं वर्णनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है तो कहीं आवश्यकता अनुरुप संकेत शैली । आलोच्य कृति में तत्समनिष्ठ शब्दावली का मुख्य रुप से प्रयोग हुआ है तदपि सहज रुप में तद्भव व विदेशी

शब्द भी आ गये हैं । संस्कृत की शब्दावली सूक्ति शैली में भी प्रयुक्त हो गई है । यथा- 'यस्यच्छायाध्मृतं यस्यमृत्यु: कस्मै देवाय हविषा विधेम ' । और भी देखिए- "यावद राम कथेयं ते भवेल्लोकेषु शत्रुहन तावज्जीवेयमि त्वेन । " लॉलीपोप टॉर्च जैसे अंग्रेजी के शब्द भी उपमानों के रुप में सहज ही प्रयुक्त हुए हैं । कविता में कहीं-कहीं लम्बे समास व बहुतायत से लघु समास भी मिलते हैं । जैसे- राम भक्त हनुमान-वास जो "लांगुल रख बात-अनाहत दीप-शिखा सम समाधिस्थ" "घनप्रहारिणी, प्राणहारिणी त्राणकरिणी " 'क्षरण प्रस्फुरण पर समत्व स्वामित्व प्राप्त कर' आदि । ऐसे लम्बे समासों से भावगत विलष्टता बढ़ जाती है और भाव प्राप्ती सहजता से नहीं होती । लेकिन ऐसे अंश कम हैं । संस्कृत की पंक्तियाँ या वैदिक मंत्र प्रसंगानुरुप ही आये हैं । लेकिन कुल मिलाकर पूरी कविता चिन्तन, दर्शन एवं विचार प्रधान है, भावात्मक अंश अत्यल्प हैं । काव्यानुकूल शैली की दृष्टि से उपमान, बिम्ब आदि अवश्य प्रयुक्त हुए हैं । यह एक मुक्त छन्द में रचित कृति है ।

10.5.2 'दो चट्टानें: काव्यरूप

काव्यरुप की दृष्टि से दो चट्टानें प्रबन्धात्मक औदात्य की लम्बी कविता हैं । शाब्दिक दृष्टि से लम्बी कविता वह है जो सामान्य या साधारण कविता से आकार में दीर्घ है । संवेदनाओं की निर्बाध अभिव्यक्ति, चेतना का मुक्त प्रवाह, यथार्थ का स्पष्ट बोध और उनके बीच से मूल्यों का निर्धारण लम्बी कविता की पहचान है । डॉ. नरेन्द्र मोहन के अनुसार "बिम्ब और विचार'' का तनाव लम्बी कविता की संरचना का मूल आधार है । एक अन्य आलोचक डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार-दीर्घ कविता का मूल आधार बाहय और आन्तरिक द्वंदमय तनाव है । लम्बी कविता के पाँच मुख्य तत्व माने गये हैं- 1. प्रदीर्घता 2. नाटकीयता 3. अन्विति 4. विचार तत्व व 5. संघर्षपूर्ण तनाव । दीर्घ या लम्बी कविता के उक्त विवेचन के आधार पर यह निश्चय है कि बच्चनकृत "दो चट्टानें' काव्यरूप की दृष्टि से एक लम्बी कविता है । बच्चन की एक अन्य लम्बी कविता है- "बंगाल का काल" । "दो चट्टानें' लम्बी कविता के तत्वों की दृष्टि से भी फिट बैठती है । विषयवस्तु की व्यापकता, सिसिफस व हनुमान आदि संबंधी घटनाओं की नाटकीयता, कवि प्रदत्त चिन्तन एवं दर्शन के रुप में वैचारिकता परस्पर कथान्वय व संघर्षपूर्ण तनाव आदि सभी आवश्यक तत्व रचना में मौजूद हैं।

10.5.3 मिथक

दंतकथा या पुराकथाओं को मिथक कहते हैं । दूसरे शब्दो में परम्परा के रुप में जो कथाएँ लम्बे समय से चली आ रही हैं, इन्हे मिथक कहते हैं लेकिन यह स्पष्ट है कि मिथक इतिहास नहीं है । फिर भी जनश्रुति से विभिन्न कथाएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को उपहारस्वरुप दी जा रही हैं । साहित्य इन कथाओं का आश्रय स्थल है । अत: साहित्य में पुराकथाओं या दन्त कथाओं को मिथक कहते है ।

'दो चट्टानें' मे निहित मिथकीयता पर कोई संदेह नहीं । स्वयं कवि ने भूमिका में लिखा है- "यह प्रतीकात्मक रचना है प्रतीक दंत कथाओं से लिए गये हैं" । प्रस्तुत रचना में जो मिथक प्रयुक्त हुए हैं उनमें तीन प्रतीक प्रमुख हैं- ये हैं- भारतीय प्रतीक - हनुमान, यूनानी प्रतीक - सिसिफिस व प्रोमीथियस ।

हनुमान परमवीर और शक्तिशाली हैं पर उसकी शक्ति राम-भक्त से संयमित व लोकोपकारी है । हनुमान शान्ती व संजीवन के प्रतीक हैं । वे अहं विगलित, परम सेवक, परोपकारी व सार्थक-सृजनात्मक शक्ति के प्रतीक हैं । वे आस्था व मूल्यों के रुप में हैं ।

सिसिफिस निरर्थक श्रम-संघर्ष, अहं एवं नकारात्मक शक्ति का प्रतीक है क्योकि वह अहं व छल द्वारा शक्ति का दुरुपयोग करता है और अमर बनने की कामना करता हैं, लेकिन परिणामत: वह न केवल पराजित होता हैं अपितु संसार का भी विनाश करता है ।

तीसरा मिथकीय प्रयोग प्रोमीथियस के रूप में हुआ हैं । प्रोमीथियस एक आदर्श को लेकर यातना सहता है । वह मानव हितार्थ स्वर्गलोक से आग चुराकर मानवों के लिए सुलभ करवाता है। बच्चन ने इसके श्रम-संघर्ष व दण्ड को सार्थक बताया है ।

समग्रत: बच्चन के मिथकीय प्रतीकार्थ व्यापक मानव मूल्य, मानव धर्म एवं सांस्कृतिक चेतना को रुपायित करने वाले हैं । हनुमान के मिथकीय प्रतीक के जरिए तो बच्चन का भारतीय संस्कृति के मूल्यों के प्रति अनुराग, लगाव, विश्वास एवं आत्मीयता झलकती है ।

10.5.4 प्रतीक विधान

'दो चट्टानें' एक प्रतीकात्मक रचना है, जिसकी स्वीकारोक्ति स्वयं बच्चन ने कविता की भूमिका में की।

प्रतीक वास्तव में वे भावाभिव्यंजक तत्व होते हैं जो किसी वस्तु, व्यक्ति, गुण या भाव के विशेष वाहक होते हैं ।

'हनुमान' मूल्यवान श्रम और लोकोपकारी शक्ति के प्रतीक रुप में प्रस्तुत हुए हैं तो सिसिफिस निरर्थक और मूल्यहीन श्रम के प्रतीक के रुप में प्रस्तुत हुआ है । सिसिफस मूल्यहीन श्रम का उदहारण द्रष्टव्य हैं-

'.....और जीवन के सहज औ स्वस्थ क्रम को
तोड़ने का दण्ड
सिसिफस को मिला
प्लूटो तथा उसके त्रिगुण निर्णायकों से
एक अनगढ़/ संगमरमर की
बड़ी चट्टान को वह/ ठेलकर ले जाए
गिरि के दृंग धुर पर/ और जब पहुँचे वहाँ पर
लुढ़कती नीचे गिरे वह
और सिसिफस
फिर उसे ले जाय ऊपर

प्रस्तुत रचना की प्रतीकात्मक के विषय में डॉ. जय प्रकाश भाटी का मत उल्लेख्य है-

"..... कवि ने हनुमान और सिसिफस के प्रतीकों द्वारा मूल्यहीन श्रम और मूल्यवान श्रम की दो तस्वीरें खड़ी कर दी हैं । बच्चन इस कविता में प्राचीन एवं अर्वाचीन पीढ़ी में कोई तुलना नहीं की है और न ही उन्होंने सिसिफस और हनुमान का प्रयोग किसी को गिराने या उठाने के लिए किया

है । कविता यथार्थ बोध और कविता का प्रौढ़ व्यक्तित्व, ये 'दो चट्टानें' के प्रतीक हैं, जो अपनी समस्त दृढ़ता, सबलता और निर्ममता के साथ कविता में अंकित है । "

10.5.5 अप्रस्तुत योजना

अप्रस्तुत योजना से अभिप्राय काव्य में प्रयुक्त अलंकारों से हैं । अलंकार काव्य का आभूषण है । इससे काव्य का सौन्दर्य एवं महत्ता कई गुना अधिक बढ़ जाती है । अप्रस्तुत के पीछे उपमान कार्य करते हैं । प्रस्तुत (उपमेय) के लिए जो अप्रस्तुत (उपमान) प्रयुक्त होता है उसमें एक ओर कवि की कल्पना व प्रतिभा का उन्मेष होता है वहीं दूसरी ओर काव्य में चमत्कार व आकर्षण भी वर्धित होता है ।

बच्चन का काव्य अप्रस्तुत विधान की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है । कवि ने परम्परित उपमानों के साथ नवीन उपमान भी प्रयुक्त किए हैं । दो चट्टानें में नवीन प्रकृतिपरक उपमानों में नदियों की चमचमाती धारा के लिए सर्पगति भौंकने के लिए कम जल वाले बादलों का गरजना, केशों के लिए सन, कदलीवन के लिए हरितस्वर्ण आदि का प्रभावी प्रयोग हुआ है । इसी तरह सांस्कृतिक उपमानों में सिसिफस के सिर को देवों के समान उन्नत बताया है ।

'शीश उन्नत देव का - सा
स्वर्ण-श्रृंखल-कुंतलो का ताज पहने ।"

इसी तरह बच्चन ने दिव्य और आकर्षक के लिए "देव-पुर सा" कहा है, जो ठीक ही है । क्योंकि मनुष्य की कल्पनाओं में देवलोक ही सर्वाधिक दिव्य एवं मोहित करने वाले आकर्षण के रुप में हैं । इसी तरह समाधिस्थ के लिए "दीप-शिखा" सीता के उद्धार के लिए-लुप्त वेदश्रुति सी पत्नी का/ समुद्धार कर/ सती- साधी सीता को ले उपमान प्रयुक्त हुआ है ।

आलोच्य दीर्घ कविता में कतिपय उपमान दैनिक जीवन से भी गृहीत हैं । यथा -हनुमान द्वारा बचपन में रवि मण्डल को मुँह में रखने का उपमान-

प्रथम ग्रास में
बाल-गाल में
जो पूरा रवि मण्डल रख ले
बच्चे लॉलीपॉप जिस तरह रख लेते हैं ।

इसी तरह हनुमान द्वारा ब्रहमाण्ड को कंदुक समान उठाकर कच्चे घड़े सा तोड़ डालने की कल्पना भी कितनी प्रभावी है । अन्य उपमानों में पारा-सा वह शैल के सिर पर बंधा है, टॉर्च जैसी तीन जोड़ी आँख अपनी नील नम की हो सदा ताजा जवानी आदि उल्लेखनीय हैं । समग्रत: इन उपमानों से 'दो चट्टानों' में सद्यता, प्रभावोत्पादकता एवं सौंदर्यवर्धन हुआ है ।

10.5.6 शीर्षक की सार्थकता

शीर्षक या रचना का नामकरण संक्षिप्त, सार्थक, प्रभावी, व्यंजक, रचना के मूल भाव को अभिव्यक्त करने वाला, प्रतीकात्मक व आकर्षक होना चाहिए । कहना न होगा की आलोच्य रचना 'दो चट्टानें 'का शीर्षक भी एकदम सटीक, सार्थक, संक्षिप्त, उपयुक्त, व्यंजक एवं प्रभावी है । इसके

अतिरिक्त इस नामकरण में एक अतिरिक्त गुण यह भी है कि रचनाकार की अन्य काव्य रचनाओं के शीर्षक-एकान्त संगीत, त्रिभंगिमा चार खेमें चौसठ खूँटे रहे । इनमें दो का अभाव रहा था । इसलिए कविवर बच्चन ने दो नामाधार पर 'दो चट्टानें' शीर्षक रखा जबकि वे पूर्व में इसे 'सिसिफस बरक्स हनुमान' नाम दे चुके थे । लेकिन अन्तिम स्वीकृति 'दो चट्टानें' के रुप में रही । कवि ने संकलन की भूमिका में कहा भी है - "इसका नाम पहले मैं सिसिफस बरक्स हनुमान रखना चाहता था । इसकी अन्तिम और आकार में सबसे बड़ी कविता का शीर्षक भी यही था । शुरु शुरु में जिन्होंने नाम सुना, इनमें से बहुतो ने मुहँ फैला दिये- हनुमान तो हनुमान, यह सिसिफस क्या बला है । अपरिचित के प्रति आकर्षण भी हो सकता है, अवज्ञा भी । "अत: बच्चन ने नाम परिवर्तित कर 'दो चट्टानें' रख दिया हनुमान द्वारा गंधमादन पर्वत के रुप में बड़ी चट्टान उठाना व सिसिफस द्वारा मृत्यु को कैद करने के अपराध स्वरूप एक बड़ी चट्टान को पर्वत के शिखर तक ले जाकर लुढ़कने पर पुन: पुन: ऊपर ले जाने की ये दोनों घटनाएँ पूरी कविता की घटना के केन्द्र में है । प्रतीक रुप से ये दोनों चट्टानें क्रमश: हनुमान व सिसिफस का प्रतीक बनकर भारतीय व यूनानी संस्कृति का रुप भी रुपायित करती हैं । अत: स्पष्ट है कि 'दो चट्टानें' शीर्षक एकदम सार्थक, मर्मस्पर्शी, प्रतीकात्मक, प्रभावी एवं व्यंजक है ।

10.6 सारांश

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन से स्पष्ट है कि 'दो चट्टानें' न केवल बच्चन की रचनाओं में महत्वपूर्ण है अपितु लम्बी कविताओं के इतिहास में एवं सांस्कृतिक बोध की मूल्यवादी, सार्थक, प्रेरक एवं सामयिक सन्दर्भ की रचनाओं में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है । कविता में भावुकता के स्थान पर वैचारिकता एवं चिन्तन ने लिया है, जिसके माध्यम से कवि बच्चन दो संस्कृतियों की तुलना करते हुए मानवीय मूल्यों एवं जीवन में शान्ति, सुख एवं सम्पन्नता हेतु भारतीय संस्कृति में निहित अहंशून्यता त्याग परोपकार, शुचिता आदि को अपनाने का संदेश दिया है । आज की विषम स्थितियों में, निरर्थक भागमभाग एवं श्रमरत व्यक्ति के लिए कविता एक समग्र दृष्टि देते है । कविता का संदेश यही है कि भौतिक संस्कृति एवं शून्यता से हमारा उद्धार संभव नहीं है । अत: हमें हनुमान में अपनी आस्था रख कर उन्हीं के सदृश्य जीवन जीने का संकल्प लेना चाहिए ।

दीर्घ कविता काव्यरुप की रचना 'दो चट्टानें' सरल, प्रभावी एवं आमफहम भाषाशैली में भारत की अनेक पौराणिक कथा प्रसंगों का उल्लेख करती है । कवि की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का उन्मेष अप्रस्तुत योजना एवं रचना में निहित नव्य शैल्पिक उपादानों में देखा जा सकता है । समग्रत: यह प्रभावी, सफल एवं प्रेरणास्पद रचना है।

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'दो चट्टानें' दीर्घ कविता के प्रतिपाद्य का व्यापक विश्लेषण कीजिए ।
2. काव्यरुप की दृष्टि से प्रमाणित कीजिए कि 'दो चट्टानें' दीर्घ कविता है ।
3. आलोच्य कविता के आधार पर स्पष्ट कीजिए कि भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों से किस तरह श्रेष्ठ है ?

4. 'दो चट्टानें' में यद्यपि संस्कृतिक-पौराणिक-मिथकीय आख्यान है; तदपि इनमें सामयिक बोध लक्षित होता है । कथन के पक्ष में अपने मत दीजिए ।
5. 'दो चट्टानें' कविता का शैल्पिक विश्लेषण कीजिए ।
6. 'दो चट्टानें' कविता की भावगत विशेषताओं का निरूपण कीजिए ।
7. कविता के आधार पर हनुमान के चारित्रिक वैशिष्ट्य को प्रस्तुत कीजिए ।
8. 'दो चट्टानें' में प्रकारान्तर से रचनाकार का जो चिन्तन व्यक्त हुआ है, उसका क्रमिक अंकन कीजिए और स्पष्ट कीजिए कि क्या आप उससे सहमत/ असहमत हैं?
9. 'आज चहुँ ओर मूल्यों के विघटन का स्वर सुनाई पड़ता है ।' इस कथन के सन्दर्भ में प्रस्तुत कविता की भूमिका का सम्यक मूल्यांकन कीजिए ।
10. 'दो चट्टानें' कविता के माध्यम से बच्चन के काव्य शिल्प का मूल्यांकन कीजिए ।
11. 'दो चट्टानें' में आपको किस बिन्दु ने सर्वाधिक प्रभावित किया और क्यों? प्रमाण सहित स्पष्ट कीजिए ।

10.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1. डॉ. हरिवंशराय बच्चन; दो चट्टानें राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली ।
2. डॉ. मनोज गुप्ता; बच्चन का काव्य शिल्प, गौतम बुक कम्पनी, जयपुर, 2007
3. सीमा जैन; बच्चन कविता और जीवन के अन्त: सूत्र, ईशा ज्ञानदीप, नई दिल्ली, 2000
4. डॉ. श्यामसुन्दर घोष; बच्चन का परवर्ती काव्य, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1967
5. डॉ. प्रवीण शर्मा; बच्चन और उनका काव्य, अभिरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
6. डॉ. सुधाबहन कनुभाई पटेल; बच्चन जीवन और साहित्य, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1980
7. डॉ. जीवन प्रकाश जोशी; बच्चन, व्यक्ति और कृतित्व, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1968
8. रेणु मल्होत्रा; बच्चन का परवर्ती काव्य, अनुपम प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 1972

इकाई-11

कुआनो नदीं (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना) की व्याख्या एवं विवेचन

इकाई रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 कवि परिचय

11.2.1 जीवन परिचय

11.2.2 कृतित्व परिचय

11.3 'कुआनो नदी' कविता का परिचय

11.4 काव्य वाचन एवं संदर्भ सहित व्याख्या

11.5 शब्दावली

11.6 सारांश

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.8 संदर्भ ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप सर्वेश्वर दयाल सक्सेना द्वारा रचित 'कुआनो नदी' कविता का अध्ययन करेंगे । इस अध्ययन के पश्चात् आप -

- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के व्यक्तित्व एवं जीवन से परिचित हो सकेंगे ।
- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के रचना संसार को जान सकेंगे ।
- 'कुआनो नदी' कविता का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- कुआनो नदी' कविता की आलोचनात्मक व्याख्या कर सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना नई कविता के एक प्रमुख कवि हैं । हालांकि कविता के अतिरिक्त साहित्य की अन्य विधाओं में भी लेखन किया है लेकिन उन्हें ख्याति काव्य के क्षेत्र में अधिक मिली है । उनकी कविता में वस्तु और शिल्प - दोनों के स्तर पर नवीनता दृष्टिगोचर होती है । इसके साथ ही उनकी कविता जनजीवन के बेहद निकट रही है । उसमें समकालीन यथार्थ और विसंगतियाँ स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त हुई हैं । कुआनो नदी कविता ऐसी ही एक रचना है । तीन खण्डों में विभक्त यह लम्बी कविता हमारे अपने समय से साक्षात्कार कराती है । यह कविता सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के गहरे सामाजिक सरोकारों को भी इंगित करती है ।

11.2 कवि-परिचय

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं । उनका रचना संसार विस्तृत फलक लिए हुए है । आइये सर्वप्रथम उनका जीवन परिचय प्राप्त करें -

11.2.1 जीवन-परिचय

सर्वेश्वर का जन्म 15 सितम्बर 1927 को उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के पिकौरा नामक गाँव में हुआ था । इन्होंने आरम्भिक शिक्षा बस्ती के ऐग्लों संस्कृत हाई स्कूल से प्राप्त की । सन् 1946 ई. में सर्वेश्वर ने बी.ए. किया और सन् 1946 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एमए. (हिन्दी) किया । डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. रामशंकर शुक्ल रसाल तथा डॉ. रामकुमार वर्मा जैसे ख्याति प्राप्त विद्वान उनके शिक्षक रहे । इलाहाबाद के साहित्यिक वातावरण से वे इतना प्रभावित हुए कि वे वहीं रहना चाहते थे । इसलिए उन्होंने वही के चीफ एकाउंट के ऑफिस में कुछ वर्श तक क्लर्की की । इसी दौरान वे प्रसिद्ध समाजवादी विचारक राममनोहर लोहिया के विचारों से प्रभावित हुए । इलाहाबाद में 'परिमल' की गोश्ठियो से भी जुड़े और वे इसके संयोजक हो गये । सन् 1955 ई. में वे आकाशवाणी दिल्ली के समाचार विभाग में हिन्दी अनुवादक के रूप में नियुक्त हुए । इसके पश्चात् उनका लखनऊ, भोपाल और इन्दौर स्थानान्तरण हुआ । 1964 ई. में उन्होंने आकाशवाणी की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया । सितम्बर 1964 में उन्होंने 'दिनमान' में उपसंपादक का कार्य संभाला और 1967 में मुख्य संपादक बने । नवम्बर 1982 में वे बच्चों की पत्रिका 'पराग के संपादक' बने । 23 सितम्बर 1983 में दिल्ली मे उनका आकस्मिक निधन हो गया ।

सर्वेश्वर के जीवन में संघर्ष सदैव विद्यमान रहे । उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा है कि - "मेरा परिवार आर्थिक संघर्षो से जूझता आर्य-समाजी विचारों का परिवार था । बचपन आर्थिक तंगी, पारिवारिक कलह और अनाथ बच्चों के साथ बीता क्योंकि मेरा घर अनाथ आश्रम से सटा हुआ था । पिता जीविका कमाने के लिए जी-तोड़ मेहनत करते थे, जो भी सामने आ जाता था - दुकानदारी से लेकर रंगसाजी तक उन्होंने की । माँ स्कूल में पढ़ाती थी । मनोरंजन के नाम पर आर्य समाज के जलसे थे या गाँव के लोकगीत, नाटक आदि ।' सर्वेश्वर ने स्वयं जीविकोपार्जन के लिए विभिन्न नौकरियाँ की । उनकी धर्मपत्नी विमला का जल्दी ही निधन हो गया और उनकी दो पुत्रियाँ- विभा और शुभा बिना माँ के हो गयी जिन्हें बुआ ने पालकर बड़ा किया । सर्वेश्वर ने दूसरा विवाह नहीं किया ।

सर्वेश्वर का व्यक्तित्व विद्रोही था । वर्तमान व्यवस्था को देखकर उनके मन में विद्रोह की भावना पनपती थी । स्पष्टवादिता, भावुकता, निर्भयता एवं स्वाभिमान उनके व्यक्तित्व के अंग थे । ग्रामीण जन - जीवन से उनका गहरा लगाव था जो कभी कम नहीं हुआ ।

11.2.2 कृतित्व-परिचय

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना बहुमुखीप्रतिभा के धनी साहित्यकार थे । उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं - उपन्यास, कहानी, नाटक, यात्रा संस्मरण, पत्रकारिता आदि में लेखन किया हैं । हिन्दी साहित्य जगत में वे कहानीकार के रूप में आये । कविता लिखना उन्होंने सन् 1950 से शुरू किया । कविता के क्षेत्र में उन्होंने अपार ख्याति अर्जित की और नई कविता के एक महत्वपूर्ण कवि बन गये । उनकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार

उपन्यास

1. सूने चौखटे (1974)
2. सोया हुआ जल (1977)

कहानी संग्रह

1. कच्ची सड़क (1978)
2. अंधेरे पर अंधेरा (1980)
3. बदलता हुआ कोण (1981)

नाटक

1. बकरी (1974)
2. लड़ाई (1979)
3. हवालात (1979)
4. अब गरीबी हटाओ (1981)

बाल नाटक

1. भों भों खों खों (1975)
2. लाख की नाक (1974)
3. हाथ की पौं (1976)
4. अनाप-शनाप (1978)

कविता संग्रह

1. काठ की घंटियाँ (1959)
2. बाँस का पुल (1963)
3. एक सूनी नाव (1966)
4. गर्म हवाएँ (1969)
5. कुआनो नदी (1973)
6. जंगल का दर्द (1976)
7. खूँटियों पर टँगे लोग (1982)
8. कोई मेरे साथ चले (1985)

बाल कविताएँ

1. महंगू की टाई (1974)
2. बतूता का जूता (1975)
3. बिल्ली के बच्चे (1976)

यात्रा-संस्मरण

1. कुछ रंग कुछ गंध (1976)

पत्रकारिता

1. चरखे और चरचे (1986)

सम्पादित पुस्तकें

1. शमशेर (1971)

2. नेपाली कविताएँ (1981)

'खूँटियों पर टँगे लोग' (1982) कविता संग्रह को साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित किया गया।

11.3 'कुआनो नदी' कविता का परिचय

'कुआनो नदी' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की ही चर्चित कविता नहीं हैं बल्कि हिन्दी की लम्बी कविताओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है । यह कविता उनके पाँचवें काव्य संग्रह 'कुआनो नदी' में संग्रहीत है जिसका प्रकाशन सन् 1973 ई. में राजकमल प्रकाशन से हुआ। इसमें कुआनो नदी पर तीन कविताएँ हैं - 'कुआनो नदी', 'कुआनो नदी के पार', 'कुआनो नदी खतरे का निशान' । इनमें 'कुआनो नदी' 1970 में तथा शेष दो कुआनो नदी के पार तथा 'कुआनो नदी-खतरे का निशान' 1972 में लिखी गयीं । वास्तव में ये कविता के तीन चरण हैं । कुआनो नदी' का प्रतीक ग्रामीण संवेदना और संस्कृति तथा उसकी व्यथा को निरूपित करता है । इस कविता में तीन संस्कृतियों के दिग्दर्शन होते हैं- ग्राम्य संस्कृति, कस्बाई संस्कृति और नगरीय । पहले चरण में देश में फैली गरीबी का चित्रण है तथा ग्राम्य संवेदना और संस्कृति से साक्षात्कार कराती है । वहीं दूसरे चरण में देश में व्याप्त हिंसा के वातावरण तथा नगर संस्कृति के यथार्थ को चित्रित करती है । कविता के तीसरे चरण में सामाजिक परिवर्तन की आकुलता अर्थात् जनक्रांति का बोध होता है ।

यह कविता सर्वेश्वर की जन्मभूमि से जुड़ी हुई है । सर्वेश्वर ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि -"कुआनो नदी किसी भी गरीब देश की प्रतीक नदी हो सकती है पर बहती उत्तर प्रदेश में मेरी जन्मभूमि बस्ती (जिला) में है । इस नदी से राजधानी के वैभव में बैठकर भी मैं अपनी मिट्टी में चला जाता हूँ साधारण से अलग जो कुछ भी भौतिक रूप में मेरे पास है वह इस नदी के किनारे जाते ही उतर जाता है । मुझे अपना गरीब बचपन, गरीबी से घिरा बचपन याद आता है - जो सारे देश में आज भी वैसा ही है और मैं एक साधारण में बदल जाता हूँ ।"

'कुआनो नदी' कविता में गरीबी, भुखमरी का मार्मिक वर्णन है । आजादी के बाद भी देश के बहुत से हिस्से विकास से कोसों दूर हैं । अंग्रेजों द्वारा चौपट की गई अर्थव्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आया है । 'कुआनो नदी' का दर्द इन शब्दों में व्यक्त हुआ है -

'बहुत गरीब जिला है वह, बस्ती -
जहाँ मैंने इसे पहली बार देखा था ।
मेरे नाना इस नदी में कूद पड़े थे
और निकाल लिए गये थे
जिन्दगी से ऊब कर मर नहीं सके ।'

इस कविता में गरीबी का दर्द और सामाजिक - राजनीतिक व्यवस्था की विसंगतियों से भिन्न रूपों में साक्षात्कार होता है । इसमें आम आदमी की पीड़ा उभर कर आयी है । सर्वेश्वर ने पूरी लेखकीय ईमानदारी ओर जीवनानुभव के आधार पर इस कविता का सृजन किया है । इस कविता की सृजन प्रकिया के पीछे उनकी पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त हुई है - "मैं उस आम आदमी के साथ उसकी यातना में खड़ा हूँ । संवेदना के स्तर पर मैं ही वह आम आदमी हूँ जिसे लड़ाई का कोई खतरा दिखाई नहीं

देता । जो हिंसात्मक क्रांति का रास्ता दिखा रहे हैं उनकी संगठन क्षमता कितनी है पता नहीं । प्रस्तुत कविता लिखते समय यह सब मेरे मन में था । जब कलम मेरे हाथ में है तो उसे लेकर ही आम आदमी की लड़ाई में उसके साथ रहना चाहता हूँ । मैं किसी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं हूँ क्योंकि कोई भी राजनीतिक दल आम आदमी के साथ नहीं है, उसका नाम भले ही हो । वह अपनी लड़ाई में अकेला है । 'कुआनो नदी' में सर्वेश्वर ने युगीन यथार्थ का बोध कराया है । इस संदर्भ में उनका वक्तव्य है -' 'में अपनी कविता के द्वारा यदि अपने देश, अपनी दुनिया के आम आदमी की यातना प्रेषित कर सकूँ तो मैं संतुष्ट होऊंगा क्योंकि इसका अर्थ मेरे लिए इतना होगा कि इस शताब्दी में मैंने अपना होना प्रमाणित किया ।" 'कुआनो नदी' में साधारण लोगों की व्यथा साधारण भाषा शैली में व्यक्त हुई है जो जनसामान्य को सहज ही समझ में आती है ।

11.4 काव्य वाचन एवं संदर्भ सहित व्याख्या

व्याख्या खण्ड - 1

"फिर बाढ़ आ गयी होगी उस नदी में
पास का फुटहिया बाजार बह गया होगा,
पेड़ की शाखों में बँधे खटोले पर
बैठे होंगे बच्चे किसी काछी के
और नीचे कीचड़ में खड़े होगे चौपाये
पूँछ से मक्खियाँ उड़ाते । "

संदर्भ एवं प्रसंग-

प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की प्रसिद्ध कविता 'कुआनो नदी' से उद्धृत हैं। कुआनो नदी' में देश की गरीबी का मार्मिक अंकन है । कवि ने इन पंक्तियों में प्राकृतिक आपदाओं का सामना करते हुए निम्न वर्ग की दयनीय दशा को प्रस्तुत किया है ।

व्याख्या -

कवि को अपने गृह जनपद बस्ती में बहने वाली कुआनो नदी का भयंकर दृश्य आता है । वह सोचता है कि इस नदी में पुन: बाढ़ आयी होगी और इसके परिणामस्वरूप वहाँ का जन-जीवन अस्त - व्यस्त हो गया होगा । इस नदी के पास का छोटा-मोटा बाजार बह गया होगा अर्थात लोगों की छोटी-मोटी जरूरतों की पूर्ति करने वाला वह बाजार नष्ट हो गया होगा । कवि कहता है कि इस बाढ़ के कोप से बचने के लिए गरीबों के बच्चे पेड़ों की शाखाओं में बंधे खटोले में बैठे होंगे । कवि का संवेदनशील हृदय मानवेतर प्राणियों के लिए भी चिन्तित है । इसलिए वह आगे कहता है कि जानवर कीचड़ में खड़े होंगे ओर अपनी पूंछ से मक्खियाँ उड़ा रहे होंगे । वास्तव में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने बाढ़ ग्रस्त इलाकों की दुर्दशा का अंकन किया है और साथ ही यह व्यथा भी उभरकर आयी है कि इन प्राकृतिक आपदाओं से गरीब लोगों के बचाव के लिए कोई समुचित व्यवस्था नहीं है ।

विशेष-

1. इन पंक्तियों में बाढ़ की विभीषिका की ओर संकेत किया गया है ।
2. गरीब लोगों एवं पशुओं के प्रति गहन मानवीय संवेदना दृष्टिगोचर होती है ।

3. जनसाधारण में प्रचलित भाषा का प्रयोग कविता के कथ्य को धारदार बनाता है । उदाहरण के लिए - 'और नीचे कीचड़ में खड़े होंगे चौपाये'

व्याख्या खण्ड - 2

'बहुत गरीब जिला है वह, बस्ती -
जहाँ मैंने इसे पहली बार देखा था ।
मेरे नाना इस नदी में कूद पड़े थे
और निकाल लिए गये थे
जिन्दगी से ऊब कर मर नहीं सके ।
तट पर न रेत थी न सीपियाँ,
सख्त कँकरीली जमीन थी काई लगी,
कहीं-कहीं दलदल था, झाड़ियाँ थीं दूर तक
जिनमें सोते बुलबुलाते रहते थे
और चिड़ियाँ एक टहनी से दूसरी टहनी पर
शोर करती झूलती रहती थीं । '

संदर्भ एवं प्रसंग-

प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ नई कविता के प्रमुख कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की चर्चित कविता 'कुआनो नदी' से अवतरित हैं । इस कविता में गरीबी का मार्मिक एवं यथार्थपरक चित्रण है । अपने गृह जनपद बस्ती की दारूण दशा उन्हें बैचेन करती रहती है, इसकी पीड़ा इन पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई है ।

व्याख्या -

देश के बहुत से हिस्से ऐसे हैं जो विकास से कोसों दूर हैं और उनमें भी गांवों की दशा तो अधिक शोचनीय है । अपने गृह जनपद के संदर्भ में कवि ने उस स्थिति का भान कराते हुए कहा है कि बस्ती जिला बेहद गरीब है । कवि यहाँ साफ संकेत करता है कि गरीबी से संघर्ष पीढ़ियों से चला आ रहा है तभी तो उसके नाना आर्थिक संघर्षो से मजबूर होकर आत्महत्या करने के लिए मजबूर होकर नदी में कूद गये थे लेकिन दिन प्रतिदिन तड़प- तड़पकर मरने के लिए निकाल लिये गये । सर्वेश्वर दयाल ने नदी के आस - पास की खराब प्राकृतिक स्थिति का अंकन भी किया है । जिससे आर्थिक दुर्दशा की तस्वीर साफ होने में सहायता मिलती है । कुआनो नदी के तट पर न रेत थी न सीपियाँ अर्थात आर्थिक स्थिति बदहाल थी । यहाँ की जमीन सख्त और कंकीरीली तथा काई लगी है जहाँ कहीं दलदल है तो, कहीं दूर तक झाड़ियाँ मौजूद हैं । तराई इलाका है जिसमें पानी के सोते बुलबुलाते रहते हैं और चिड़ियाँ एक टहनी से दूसरी टहनी पर षोर करती झूलती रहती हैं अर्थात् आर्थिक विकास की गति अवरूद्ध है ।

विशेष-

1. कवि ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले की दयनीय आर्थिक स्थिति का यथार्थ अंकन किया है ।
2. इन पंक्तियों में पीढ़ियों से आर्थिक व्यवस्था से संघर्ष और लाचारी का आभास होता है ।

3. भाषा सहज एवं स्वाभाविक है ।

व्याख्या खण्ड - 3

"यह नदी मुर्दघाट के लिए मशहूर है ।
कुआनो -जाने का मतलब
किसी को फूँकने जाना है ।
मेरे पिता को हर शव-यात्रा में जाने का शौक था ।
अक्सर -वह आधी-आधी रात लौटते
और लकड़ियां गीली होने की शिकायत करते ।
माँ से कहते - 'कुछ लोग अभागे होते हैं
उनकी चिता ठीक से नहीं जलती'
और हर अभागे की यही आखिरी कहानी
मैं आज भी सुनता हूँ । '

संदर्भ एवं प्रसंग-

प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की प्रतिनिधि कविता कुआनो नदी से अवतरित हैं । इन पंक्तियों में कुआनो नदी के आस पास बसने वाले लोगों की त्रासदी का अंकन हुआ है ।

व्याख्या -

कवि त्रासदी एवं विवशता से युक्त परिदृश्य को बिम्बों में बाँधते हुए यह बतलाता है कि यह नदी मुर्दाघाट के लिए भी चर्चित है । कुआनो नदी जाने का मतलब है किसी को फूंकने जाना है । इस स्थिति को वह अपने पिता के हवाले से स्पष्ट करता है कि मेरे पिता जिन्हें हर शव यात्रा में जाने का शौक था अर्थात् सामाजिक सरोकारों के चलते हर शव यात्रा में जाते थें और आधी-आधी रात को लौटते थे और कहते थे कि शव जलाने की लकडियाँ गीली थीं । वह माँ से कहते कि कुछ अभागे ऐसे भी होते हैं जिनकी चिताएं ढंग से नहीं जलती । कवि का संकेत है कि गॉव की जिन्दगी में एक जड़ता घर कर गई है कि जिसका प्रभाव मुर्दा तक में दिखाई पड़ता है । इसके साथ ही कवि स्पष्ट करता है कि कुछ लोगों का जीवन इतना त्रासद होता है कि वे आजीवन अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करते है और ये मृत्यु के पश्चात् भी पीछा नहीं छोड़ता ।

विशेष -

1. इन पंक्तियों में मानव जीवन की त्रासदी का मार्मिक वर्णन है ।
2. 'कुआनो नदी' के आस-पास के कष्टदायक जीवन का चित्र उभरकर आया है ।
3. जनसामान्य में बोल-चाल की भाषा प्रयुक्त हुई है ।

व्याख्या खण्ड - 4

"यह नदी कगारे नहीं काटती
अपना पाट नहीं बदलती
जैसे बहती थी वैसे बहती है ।
आज भी इसके किनारों के गाँवों में
सिंघाड़ों के तालों में

बड़े-बड़े मटके औंधाए
मैं खटिकों को नंग-धड़ंग पानी में घुसे
सिंघाड़े तोड़ते देखता हूँ ।
और खटिकनों को तार-तार कपड़ों में
अपना पुष्ट युवा शरीर लिए
घर-घर हँसी और सिंघाड़े बेचते हुए
लोहारों को धौंकनी के सामने
घोड़े-सा मुँह लटकाए
खुरपी, कुदाल और नाल बनाते हुए
बढ़इयों को ऐनक का शीशा
सूत से कान में बाँधे
बँसखट के पाये गढ़ते हुए
और किसी बूढ़े फेरीवाले को
बिसातखाने का सामान गले में लटकाये
हर घर के सामने कमर झुकाए
झिक-झिक करते हुए । '

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता 'कुआनो नदी' से उद्धृत हैं । इन पंक्तियों में कुआनो नदी के आस-पास बसने वालों के जीवन का चित्रण किया है ।

व्याख्या -

कवि कहता है कि यह नदी किनारे नहीं काटती, अपना स्थान परिवर्तित नहीं करती जैसे बहती थी वैसे बहती है अर्थात् इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ । कवि यथास्थितिवाद की ओर इशारा करते हुए कह रहा है कि जैसे यह नदी अपरिवर्तित है वैसे ही इसके किनारे बसने वाले गरीब लोगों के जीवन में भी कोई बदलाव नहीं आया है । आज भी खटीकों को सिंघाड़ों के तालों में सिंघाड़े तोड़ते देखा जा सकता है और उनकी स्त्रियों को तार-तार कपड़ों में अपना पुष्ट युवा शरीर लिए घर-घर सिंघाडे बेचते हुए अर्थात् न तो उनके व्यवसाय में कोई परिवर्तन आया है और न ही उनकी गरीबी में । इसी तरह लोहारों को भट्टी के सामने खुरपी, कुदाल और नाल बनाते, बढ़इयों को ऐनक का शीशा सूत से कान में बांधे बेसखट के पाये बनाते हुए और बूढ़े फेरी वाले को बिसाता खाने का सामान गले में लटकाए घर-घर बेचते और झिकझिक करते देखा जा सकता है । कुल मिलाकर यह इलाका विकास से कोसों दूर है और यही के बाशिन्दों का जीवन जड़वत् है ।

विशेष -

1. श्रम करने वाले लोगों के अभावग्रस्त जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है ।
2. यथास्थितिवादी स्थिति की ओर इशारा किया गया है ।
3. भाषा प्रवाहमयी एवं जनजीवन के निकट हैं।

व्याख्या खण्ड - 5

"बरसात का पानी
आज भी गॉवों में भरता है
बिना जगत के कुओं के भीतर चला जाता है ।
आदमी और चौपाए
खरवा से घायल पैर की उँगलियाँ
और खुर लिए लंगड़ाते चलते हैं,
सुअर लोटते हैं,
पानी में बैठी औरतें खाना पकाती हैं
उनके चूल्हों में टीन की चादरें लगी होती हैं
नीचे पानी रहता है
ऊपर लकड़ियाँ धुआँ उगलती हैं
कभी-कभी लपट भी
जिससे अदहन खौल जाता है,
एक ओर कुत्ते हाँफते बैठे रहते हैं
और दूसरी ओर उनके बच्चे
जिनकी आंखे अँधेरे में जलती
मिट्टी के तेल की ढिबरियों-सी दिखायी देती हैं
फिर रात-भर अँधेरा छाया रहता है,
यह अँधेरा हर दूसरे महीने
भरों के घरों में आग लगने पर टूटता है
फूस के घर जलकर राख हो जाते हैं ।
भर-जो मजूरी पूरी न पड़ने पर चोरी करते हैं
और एक-दूसरे को दुश्मन मान
उनका घर जलाते रहते हैं
उनकी औरतें रात-दिन आपस में
झगड़ती हैं, गालियाँ देती हैं
अघुआती हैं, बेसुरी आवाज में रोती हैं
और बच्चे नाक बहाते नंगे इधर-उधर
हर खुले दरवाजे की ताक में घूमते हैं ।
और इन सबके बीच
कुआनो निर्लिप्त भाव से बहती रहती है
अपना पाट नहीं बदलती । "

सन्दर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत पंक्तियाँ नई कविता धारा के चर्चित कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की प्रसिद्ध कविता 'कुआनो नदी' से अवतरित हैं । इस अंश में कवि देश के उपेक्षित व साधनहीन वर्ग का चित्रण करण हुआ स्पष्ट करता है कि प्राकृतिक आपदाएँ किस प्रकार सर्वाधिक इस वर्ग को सालती हैं, और समाज साधन सम्पन्न धारा इस सब से निर्लिप्त रहती है ।

व्याख्या -

कवि दुःखद सत्य को स्वीकारते हुए कहता है कि समय और समाज इतना बदल जाने के बाद भी गाँव आज तक मूलभूत सुविधाओं के सुखद परिवर्तन से दूर हैं । आज भी बारिश के पानी से गाँव की जनता जल भराव की समस्या का सामना करती है । पीने के पानी के सीमित साधनों अर्थात् कुओं में बारिश का गंदा पानी भर जाता है । पानी की निकासी न होने से इकट्ठा पानी दूषित पानी होता है और उसमें निरन्तर पैर रहने से लोगों के पावों में घाव हो जाते हैं और वे लंगड़ा कर चलते हैं । औरतें मजबूर उसी भरे हुए पानी में बैठ कर सीली, अत्यधिक धुँआ देती लकड़ियों पर खाना बनाती हैं । यह दृश्य इतना भयावह है कि इसमें अभावग्रस्त मनुष्य पशु के स्तर तक पहुँच जाता है ।

आगे कवि अभाव के और गहराते प्रभाव को व्यक्त करते हुए कहता है कि इन गाँवों में लोगों का आर्थिक अभाव इतना विकट है कि वे रात्रि में प्रकाश के लिए मिट्टी के तेल की ढिबरियॉ तक नहीं जला सकते । केवल शाम को एकाध घंटे तक ही वे रोशनी में रहने में समर्थ हैं । उसके बाद अपने जीवन के अभावमय अन्धकार का सामना करना ही उनकी विवशता है । यही अभाव किस प्रकार मानव के मानवीय गुणों का हास कर देता है इसी को स्पष्ट करते हुए कवि कहता है कि उपेक्षित गरीब अभाव में जीते जीत मजदूरी पूरी न पड़ने पर मुँह बाए खडी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनुचित कार्य करने पर बाध्य हो जाते हैं, एक दूसरे का घर जलाते हैं, सोचने-समझने की शक्ति उनमें नहीं रह जाती, स्त्रियाँ झूठी मर्यादा को भूलकर गाली-गलोच करती हैं । बच्चे अपना बचपन भूल अपराध के मार्ग पर बढ़ने लगते हैं । चोरी की ताक में खुले दरवाजे टोहते हैं । किन्तु सबसे बड़ी विडम्बना यह कि एक तरफ यह उपेक्षित वर्ग पतन की ओर अग्रसर होता जाता है तो दूसरी तरफ साधन सम्पन्न समाज इस स्थिति से परिचित होते हुए भी निर्लिप्त बना रहता है, अपना चलन नहीं बदलता, अपनी गति-दिशा नहीं बदलता । संवेदनहीन सा बना रहता है ।

विशेष-

1. कवि ने इस प्रसंग में समाज के निम्न अभावग्रस्त वर्ग के जीवन का चित्रण किया है ।
2. कवि ने आम जन में प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है जिससे अभिव्यक्ति में सच्चाई और पैनापन आ गया है यथा-सूखा से घायल पैर, अदहन खौल जाता है ।
3. कवि के उपमान सर्वथा नवीन ओर भाव स्पष्ट करने में पूर्ण सक्षम है - 'मिटटी के तेल की ढिबरियॉ सी।

व्याख्या खण्ड - 6

"नाखून दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं
और जमीन उसी अनुपात में बंजर होती जा रही है
और नदी हर दिल में उसी रफ्तार से शांत

हर विवशता का उपहास-सा करती ।
अभी एक डॉगर बहता हुआ निकल गया
अभी एक आदमी बहता हुआ चला जायेगा
जिसकी लाश पर कौए बैठे होंगे
जिन्हें मैं अक्सर दिल्ली की इन सड़कों पर
उड़ता हुआ देखता हूँ
शायद ये हंस हों!
मेरी निगाह कुछ कमजोर हो गयी है । '

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की बहु चर्चित कविता 'कुआनो नदी' से उदधृत हैं । इन पंक्तियों में समकालीन व्यवस्था में व्याप्त शोषण एवं आम आदमी की विवशता को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है ।

व्याख्या -

कवि समकालीन यथार्थ का अंकन करते हुए कहता है कि शोषण करने वाली शक्तियाँ निरन्तर मजबूत होती जा रही हैं और उसी अनुपात में शोषण निरन्तर बढ़ता जा रहा है । इस शोषण के विरूद्ध आम आदमी में पीड़ा है लेकिन वह यह सहने के लिए विवश है । इसी के परिणामस्वरूप वह मूक है । कवि कहता है कि जिस तरह नदी में बहती लाश पर कौए बैठे होते हैं उसी तरह आम आदमी का शोषण करने के लिए शोषक ऑख गड़ाये रहते हैं । इन शोषकों के नाखूनों से मनुष्य तो मनुष्य, जानवर भी सुरक्षित नहीं हैं । इन शोषकों के चंगुल से निकलना सहज नहीं है, समुची मानवता इनसे त्रस्त है । कवि आगे कहता है कि 'उड़ता हुआ देखता हूँ शायद ये हंस हों!' अर्थात् स्थितियों में बदलाव की आशा है लेकिन अनिश्चय की स्थिति है ।

विशेष -

1. व्यवस्था में व्याप्त शोषण और उसे सहने की विवशता का स्पष्ट स्वर है ।
2. नदी के माध्यम से वर्तमान परिवेश यथार्थ -रूप में अंकित हुआ है ।
3. भाषा विम्बात्मक सहज एवं अनुभूतिमय है ।

व्याख्या खण्ड - 7

" मौन रहो और प्रतीक्षा करो
मौन रहो और प्रतीक्षा करो । '
यह मंत्र दोहराता-दोहराता
मैं नाव से उतरता हूँ
और बिना उसकी ओर देखे
तेजी से इन इमारतों की बगल से गुजर जाता हूँ
जिन पर 'सत्यमेव जयते' को खरोंच कर
लिखा हुआ है : सब चलता है
दिल्ली की इन सड़कों पर । "

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की चर्चित लम्बी कविता कुआनो नदी से अवतरित हैं । इन पंक्तियों में कवि ने आज की चुनौतियों से ऑख बचाने, मध्यवर्ग के पलायनवादी चरित्र का उद्‌घाटन किया जो किसी और से क्रांति की पहल की अपेक्षा रखता हुआ मौन रहकर प्रतीक्षा करता रहता है ।

व्याख्या -

कवि कहता है कि मैं नाविक की दशा देखकर भी उसे अनदेखा कर गुजर जाता हूँ । यहाँ कवि 'मैं' के माध्यम से आम मध्यवर्गीय व्यक्ति का चरित्र उद्‌घाटित करते हुए कहता है कि ऐसा व्यक्ति समाज की नग्न सच्चाई को देखकर उसका सामना करने व प्रतिरोध करने की अपेक्षा पलायन का रास्ता अपनाता है । कवि स्वीकारता है कि मैं बिना उसकी ओर देखे तेजी से इन इमारतों की बगल से गुजरता हूँ । ये इमारतें जो जनता का भविष्य निर्माण करती है, जहाँ सत्य की रक्षा की घोषणा की जाती है, वे ही इमारतें आज शोषण व भ्रष्टाचार का केन्द्र बन गयी हैं । यहाँ सत्ता के गलियारों में सब चलता है अर्थात् इन स्थलों पर भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि यहाँ पर सब सम्भव है ।

विशेष-

1. प्रस्तुत अंश में कवि प्रयोगवादी प्रवृति के अनुरूप 'मैं' शैली में अभिव्यक्ति करता है और 'मैं' के माध्यम से आम मध्यवर्गीय पलायनवादी चरित्र को स्पष्ट करता है ।
2. सत्ता के केन्द्रों, जनता के भाग्य विधायक स्थलों पर आज भ्रष्टाचार व्याप्त है, यही कवि की चिन्ता का केन्द्र है ।
3. अभिव्यक्ति को सहज सर्वग्राह्य बनाने के लिए कवि ने भाषा का अत्यन्त सरल रूप प्रयोग किया है ।

व्याख्या खण्ड - 8

"मैं भागता हूँ और देखता हूँ
यह खेतिहर मजदूर भूख से मर गया,
यह चौपाये के साथ बाढ़ में बह गया
यह सरकारी बाग की रखवाली करता था
लू में टपक गया,
यह एक छोटे- से रोजगार के सहारे
जिन्दगी काट ले जाना चाहता था
पर जाने क्यों रेल से कट गया । "

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत पंक्तियॉ नई कविता धारा के प्रमुख हस्ताक्षर सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की चर्चित कविता 'कुआनो नदी के पार' से अवतरित हैं । इन पंक्तियों में कवि जीवन संघर्ष में असफल निर्धन वर्ग के जीवन की तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत करता है ।

व्याख्या -

कवि निर्धन वर्ग के जीवन की सच्चाई देख कर द्रवित हो उठता है और उसका सामना न कर पाने की स्थिति में भागता है लेकिन आगे भी उसे यही दिखाई देता है । वह देखता है कि एक खेतिहर मजदूर अभाव में भूख से मर गया तो दूसरा बाढ़ का सामना न कर पाने के कारण पशु के साथ ही, पशु की तरह निरीह और साधनहीन अवस्था में बाढ़ में बह गया । तीसरा सरकारी बाग की रखवाली करते-करते लू से मर गया तो एक अन्य छोटे से रोजगार के भरोसे जिन्दगी जी लेने की आशा में सच्चाई का सामना अधिक दिनों तक नहीं कर सका और रेल से कटकर जीवन संघर्ष से छूट गया । अर्थात् आज आम आदमी के जीवन का कोई मूल्य नहीं रह गया । वह पशुवत् जीवन व्यतीत करता है ।

विशेष-

1. आम निर्धन जन के प्रति कवि की पीडा उपरोक्त पंक्तियों में व्यक्त हुई है ।
2. कवि का शब्द चयन अभिव्यक्ति को अधिक संवेद्य बनाता है । आम व्यक्ति के निर्मूल्य जीवन का खत्म हो जाना भी कोई महत्व की बात नहीं । उसी भाव को व्यक्त करने के लिए कवि ने आम जन में प्रचलित भाषा का प्रयोग किया है - 'लू में टपक गया ।

व्याख्या खण्ड - 9

"मैं अधजले मकानों के पास रूक जाता हूँ
नारे लगाते जुलूस तेजी से निकल जाते हैं,
शब्द दम तोड़ती मछलियों की तरह
उलट कर अर्थहीन हो जाते हैं
उनमें और पथराई पुतलियों में
कोई अंतर नहीं दीखता । "

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता 'कुआनो नदी के पार' से उद्धुत हैं । इन पंक्तियों में वर्तमान व्यवस्था और राजनीतिक आन्दोलनों पर व्यंग्य किया गया है ।

व्याख्या -

कवि समकालीन राजनीतिक परिदृश्य पर विचार करते हुए कहता है कि मैं अधजले मकानों के पास रूक जाता हूँ अर्थात् व्यवस्था मे सुधार के ईमानदार प्रयास नहीं हो रहे हैं । परिवर्तन के लिए लगाये जाने वाले नारे एवं जुलूस अर्थहीन हो गये हैं अर्थात् सार्थकता खो चुके हैं । कवि इन नारों की तुलना पथराई हुई पुतलियों से करता है । एक तरह से सामाजिक सरोकार समाप्त हो गये हैं । जन जागरण के क्रियाकलाप निस्तेज हो गये हैं।

विशेष-

1. कवि ने समकालीन राजनीतिक वातावरण और गतिविधियों का यथार्थ अंकन किया है ।
2. भाषा स्पष्ट एवं जनजीवन से जुड़ी हुई है ।
3. नवीन उपमानों का प्रयोग हुआ है - 'दम तोड़ती मछलियों की तरह' ।

व्याख्या खण्ड 10

"इस नदी में

न जाने कितनी बार बाढ़ आयी है
रगों में खून खौला है
पर हर बार अँगीठियों से तमतमाए चेहरों पर
रोटियाँ ही सेंकी गयी हैं
पानी कभी खतरे का निशान पार नहीं कर पाया
हर बार पछाड़ खा-खाकर शांत हो गया है,
एकाध पुश्ते टूटे हैं
एकाध गाँव डूबे हैं -
नक्सलबाड़ी, श्रीकाकुलम, मुसहरी,
पानी कछार में फैल
सूखी धरती और सूखे दिलों में जज हो गया है ।
इनसान उस पेड़ की तरह खड़ा रहा है
जिससे बांध कर निरपराधों को
गोली मारी गयी हो ।
कितना आसान है पेड के लिए
बिना किसी खरोंच के अपने को बचा ले जाना । '

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत काव्यांश सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की प्रसिद्ध कविता 'कुआनो नदी - खतरे का निशान' से ली गई है । इस अंश में कवि कुआनो नदी को व्यक्ति - समाज का प्रतीक मानता हुआ यह स्पष्ट करता है कि समाज उद्वेलित अवश्य होता है किन्तु सदैव वह समस्त बन्धन तोड़, क्रांति का उदघोष नहीं कर पाता ।

व्याख्या -

कवि कहता है कि इस नदी रूपी समाज में न जाने कितनी बार अन्याय के विरूद्ध आन्दोलन हुए। लोगों का खून न जाने कितनी बार उस अन्याय, शोषण व अत्याचार को नष्ट कर देने के लिए खौला है किन्तु विडम्बना है कि जनता के इस भावुक उन्माद से सत्ताधारियों अथवा सत्ता के आकांक्षियों नें हर बार अपना स्वार्थ साधा । इन स्वार्थी तत्वों ने हर बार अंगीठियों की तरह सुलगती जन भावनाओं पर अपने स्वार्थ की रोटियाँ सेकीं । यही कारण है कि ये जन-आन्दोलन क्रांति में परिवर्तित नहीं हो सके । हर बार नदी की बाढ़ के पानी की तरह उफनती भावनाओं को दबा दिया गया । कवि कुछ उदाहरण देकर स्पष्ट करता है कि इस कम में नक्सलवाडी, श्रीकाकुलम, मुसहरी जैसे कुछ गाँवों में अवश्य विद्रोह हुआ, आन्दोलन हुआ किन्तु ये आन्दोलन अधिक विस्तार नहीं पा सके । आन्दोलन यहीं तक सीमित रह गया । व्यक्ति की आत्मसंतोशी, पलायनवादी एवं तटस्थ प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए कवि कहता है कि जिस प्रकार बाढ़ का पानी कछार में फैल कर सूखी धरती में जब्त हो जाता है, वैसे ही अभाव और उपेक्षा झेलते सामान्य व्यक्ति के सूखे दिलों में क्रांति का यह उद्घोश कोई स्पंदन नहीं जगाता और वहीं जब्त हो जाता है । न केवल यही बल्कि इंसान इतना संवेदनहीन हो गया है कि वह जड़ पेड़ की तरह अन्याय का मूक साक्षी मात्र बना रहता है । व्यक्ति की इस संवेदनहीन

प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए कवि कहता है कि जिस प्रकार जड़ वृक्ष की कोई जवाबदेही नहीं होती, उसी प्रकार इंसान के लिए समस्त उत्तरदायित्वों से निरपेक्ष व तटस्थ रहना कितना आसान है ।

विशेष -

1. इन पंक्तियों में यह स्पष्ट किया गया है कि जन आन्दोलन हमेशा सफल नहीं होते । क्रांति में बदलकर आमूलचूल परिवर्तन करने में ये आन्दोलन सदैव समर्थ नहीं होते वरन् स्वार्थी तत्वों द्वारा लाभ उठा कर दमित कर दिये जाते हैं ।
2. कवि स्पष्ट करता है कि जीवन संघर्ष में निरन्तर अभाव झेलते, अन्याय सहते सूखे हृदयों में क्रांति की भावना कोई उथल पुथल नहीं मचा पाती ।
3. वर्तमान समय में संकीर्ण होते जा रहे मानव की निरपेक्ष, उदासीन व स्वयं को किसी भी प्रकार बचा लेने की प्रवृत्ति का चित्रण कवि ने किया है ।
4. अभिव्यक्ति को सहज संप्रेश्य बनाने के लिए कवि ने प्रतीक और बिम्ब का प्रयोग किया है ।
5. नदी यहाँ समाज व जन समूह का प्रतीक है तो बाढ़ आन्दोलनों का । व्यक्ति की स्वार्थी व निरपेक्ष वृति को और स्पष्ट करने के लिए कवि ने जड़ पेड़ का बिम्ब दिया है ।

11.5 शब्दावली

रफ्तार	–	गति
प्रतीक्षा	–	इन्तजार
सृजन	–	निर्माण, रचना
आकस्मिक	–	अचानक
बदहाल	–	बुरी स्थिति
विवशता	–	मजबूरी
शौक	–	रूचि
निस्तेज	–	प्रभावहीन
बाशिन्दे	–	निवासी
शोषण	–	अन्याय
जलसे	–	कार्यक्रम

11.6 सारांश

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने नई कविता को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । उनका जीवन संघर्षमय रहा । उन्हें जीविका के लिए कई नौकरियाँ करनी पड़ी लेकिन साहित्य से आजीवन जुड़े रहे । साहित्य की विभिन्न विधाओं - कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि में लेखन किया । महानगर में रहकर भी वे लोकजीवन से जुड़े रहे । इसके साथ ही अपने समकालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर पैनी निगाह थी । ' कुआनो नदी' कविता इसका प्रमाण है । इस कविता में समाज में व्याप्त विसंगतियों की तस्वीर उभर कर आयी है । देश के अभावग्रस्त लोगों के जीवन का मार्मिक अंकन हुआ है । इस कविता की भाषा भी अपने कथ्य के अनुरूप जनजीवन से सम्बद्ध है ।

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए ।
2. 'कुआनो नदी' कविता का परिचय दीजिए ।
3. निम्नलिखित पंक्तियों की ससंदर्भ व्याख्या कीजिए -

यह नदी कगारे नहीं काटती
अपना पाट नहीं बदलती
जैसे बहती थी वैसे बहती है ।
आज भी इसके किनारों के गाँवों में
सिंघाड़ों के तालों में
बड़े-बड़े मटके औंधाए
मैं खटिकों को नंग-धड़ंग पानी में घुसे -
सिंघाड़े तोड़ते देखता हूँ ।

11.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; कुआनो नदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
2. कृष्ण दत्त पालीवाल; सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, साहित्य अकादमी, दिल्ली ।
3. कृष्ण दत्त पालीवाल; सर्वेश्वर और उनकी कविता, लिपि प्रकाशन, दिल्ली ।
4. हरि चरण शर्मा सर्वेश्वर का काव्य : संवेदना और संप्रेषण, पंचशील प्रकाशन, जयपुर ।
5. डॉ. मंजु त्रिपाठी; सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और उनका काव्य संसार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ।
6. कल्पना अग्रवाल; सर्वेश्वर दयाल सक्सेना व्यक्ति और साहित्य, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर ।

इकाई-12

कुआनो नदी (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना) कविता का अनुभूति एवं अभिव्यंजनात्मक पक्ष

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 'कुआनो नदी' कविता का अनुभूति पक्ष

12.2.1 अभावग्रस्त जीवन की प्रति संवेदना

12.2.2 विसंगतियों के प्रति आक्रोश

12.2.3 समकालीन परिवेश से साक्षात्कार

12.2.4 लोक संस्कृति से गहरा जुड़ाव

12.2.5 मूल्यों के क्षरण के प्रति चिन्ता

12.3 'कुआनो नदी' कविता का अभिव्यंजनात्मक पक्ष

12.3.1 काव्य रूप

12.3.2 काव्य भाषा.

12.3.3 प्रतीक विधान

12.3.4 बिम्ब प्रयोग

12.3.5 उपमान

12.4 शब्दावली

12.5 सारांश

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.7 संदर्भ ग्रंथ

12.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप सर्वेश्वर दयाल सक्सेना द्वारा रचित कुआनो नदी कविता का अध्ययन करेंगे इस अध्ययन के पश्चात् आप -

- 'कुआनो नदी' कविता के अनुभूति पक्ष को समझ सकेंगे ।
- 'कुआनो नदी' कविता के अभिव्यक्ति पक्ष से परिचित हो सकेंगे ।
- 'कुआनो नदी' कविता की समीक्षा कर सकेंगे ।
- 'कुआनो नदी' कविता के वैशिष्ट्य को जान सकेंगे ।

12.1 प्रस्तावना

सर्वेश्वर बहुमुखी प्रतिभा से युक्त रचनाकार थे । वे स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं । 'कुआनो नदी' कविता सर्वेश्वर की प्रतिनिधि कविता है । इस लम्बी कविता में

हमारा अपना युग सम्पूर्ण जटिलताओं के साथ साकार हो उठा है । इस कविता में कवि ने गहन संवेदना का परिचय देते हुए पीड़ा, विवशता, आक्रोश के स्वरों को शब्दबद्ध किया है । कविता में स्वार्थपरता, मूल्यों के क्षरण के प्रति कवि की चिन्ता साफ-साफ व्यक्त हुई है । कथ्य के साथ-साथ शिल्प के वैशिष्ट्य के लिए भी कुआनो नदी कविता चर्चित रही है । आइये इसके अनुभूति पक्ष पर विचार करें-

12.2 कुआनो नदी कविता का अनुभूति पक्ष

कुआनो नदी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की एक सशक्त एवं प्रभावशाली कविता है । इसमें भारतीय जन-जीवन के यथार्थ का उसकी तमाम जटिलताओं के साथ अंकन हुआ । वास्तव में यह कविता सर्वेश्वर दयाल की गहन अनुभूति की परिचायक है ।

12.2.1 अभावग्रस्त जीवन की प्रति संवेदना

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपने रचना संसार में गरीबों के प्रति गहन मानवीय संवेदना का परिचय दिया है । 'कुआनो नदी' कविता में गरीबों की दुर्दशा का विस्तार से अंकन हुआ है । देश की आजादी के बाद भी बहुत से हिस्से आर्थिक बदहाली का शिकार हैं, लोग आत्महत्या करने के लिए विवश हैं और मरने में सफल न होने पर त्रासद जीवन जीने के लिए मजबूर हैं । कविता में इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए अपने गृह जनपद बस्ती की दशा का अंकन इन शब्दों में किया है-

'बहुत गरीब जिला है वह, बस्ती -
जहाँ मैंने इसे पहली बार देखा था ।
मेरे नाना इस नदी में कूद पड़े थे
और निकाल लिए गये थे
जिन्दगी से ऊब कर मर नहीं सके ।
तट पर न रेत थी न सीपियाँ
सख्त कंकरीली जमीन थी काई लगी,
कहीं-कहीं दलदल था, झाड़ियाँ थीं दूर तक
जिनमें सोते बुलबुलाते रहते थे
और चिड़ियॉ एक टहनी से दूसरी टहनी पर
शोर करती झूलती रहती थीं । '

यह विडम्बना है कि इस देश में बहुत से लोग अथक श्रम करने के बावजूद गरीबी का जीवन जी रहे हैं । अभावों में जिन्दगी बसर कर रहे हैं । परिवर्तन का कोई प्रभाव उनके जीवन पर दिखाई नहीं पड़ता । पीढ़ियों से जिस तरह का जीवन जीते आ रहे हैं आज भी उसी तरह जीवन व्यतीत कर रहे हैं । कवि उनके इस अभावग्रस्त जीवन को इन शब्दों में अभिव्यक्त करता है -

"आज भी इसके किनारों के गॉवों में
सिंघाडों के तालों में
बड़े-बड़े मटके औंधाए
मैं खटिकों को नंग-धड़ंग पानी में घुसे
सिंघाड़े तोड़ते देखता हूँ ।

और खटिकनों को तार-तार कपड़ों में
अपना पुष्ट युवा शरीर लिए
घर-घर हँसी और सिंघाड़े बेचते हुए,
लोहारों को धौंकनी के सामने
घोड़े-सा मुँह लटकाए
खुरपी, कुदाल और नाल बनाते हुए,
बढ़इयों को ऐनक का शीशा
सूत से कान में बाँधे
बसखट के पाये गढ़ते हुए
और किसी बूढ़े फेरीवाले को
बिसातखाने का सामान गले में लटकाये
हर घर के सामने कमर झुकाए
झिक-झिक करते हुए। '

गरीब लोग अत्यन्त शोचनीय दशा में जीवन-यापन कर रहे है । इनके लिए न रहने की समुचित व्यवस्था है और न पीने के लिए स्वच्छ पानी, आधुनिक मानवीय सुख-सुविधाओं से कोसों दूर है । इनकी जिन्दगी और पशु की जिन्दगी में कोई बुनियादी अन्तर नहीं है । गरीबों की यह दयनीय दशा कवि की गहन मानवीय अनुभूति का हिस्सा बन जाती है । इस स्थिति का खाका कवि ने इस तरह खींचा है -

"बरसात का पानी
आज भी गाँवों में भरता है
बिना जगत के कुओं के भीतर चला जाता है ।
आदमी और चौपाए
खरवा से घायल पैर की उँगलियाँ
और खुर लिए लँगड़ाते चलते है,
सुअर लोटते हैं,
पानी में बैठी औरतें खाना पकाती है
उनके चूल्हों में टीन की चादरें लगी होती हैं
नीचे पानी रहता है '

इस व्यवस्था में गरीब आदमी की जिन्दगी की कोई कीमत नहीं रह गयी है । वह चौतरफा शोषण का शिकार है । सर्वेश्वर ने इस कटु सत्य को महसूस किया है और 'कुआनो नदी' कविता में यत्र-तत्र इस तथ्य का उद्‌घाटन किया है-

“यह हरिजन था इसे जिन्दा जला दिया गया
यह अनपढ़ गरीब था
इसे देवी की बलि चढ़ा दिया गया,
यह आस्थावान धर्मगुरूओं की कोठरी में मरा”

छोटे-मोटे व्यवसाय करने वालों की भी लगभग यही दशा है -

"मैं भागता हूँ और देखता हूँ
यह खेतिहर मजदूर भूख से मर गया,
यह चौपाये के साथ बाढ़ में बह गया,
यह सरकारी बाग की रखवाली करता था
लू में टपक गया,
यह एक छोटे- से रोजगार के सहारे
जिन्दगी काट ले जाना चाहता था
पर जाने क्यों रेल से कट गया । "

'कुआनो नदी' कविता में गरीब व्यक्ति की त्रासदी, व्यवस्था का खोखलापन बखूबी मुखरित हुआ है और कवि ने शब्दों के माध्यम से इस पीड़ा को- अभिव्यक्त किया है ।

12.2.2 विसंगतियों के प्रति आक्रोश

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य में विसंगतियों के प्रति विद्रोह की भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । कुआनो नदी कविता में भी सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विशमताओं के स्पष्ट संकेत मिलते हैं और इन्हें देखकर कवि का संवेदनशील हृदय पीड़ा से भर जाता है । कवि इस तथ्य से भलीभांति परिचित है कि प्राकृतिक आपदाओं का शिकार सबसे अधिक जनसामान्य ही होता है । इस सत्य की ओर कवि संकेत कविता के आरम्भ में ही कर देता है -

"पेड़ की शाखों से बंधे खटोले पर
बैठे होंगे बच्चे किसी काछी के ।"

दयनीय आर्थिक दशा मनुष्य को अन्दर तक तोड़ कर रख देती है । उसे जीवन की कोई किरण दिखाई नहीं देती । कवि की पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त हुई है -

'मेरे नाना इस नदी में कूद पड़े थे
और निकाल लिए गये थे
जिन्दगी से ऊब कर मर नहीं सके । '

देश में शोषण की रफ्तार दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है । यह विडम्बना ही है कि एक मनुष्य अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए दूसरे मनुष्य का शोषण करता है ओर इस स्थिति को सहने एवं देखने के लिए हम विवश हैं । कवि का विद्रोही हृदय स्पष्ट स्वरों में कह उठता है -

"नाखून दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं
और जमीन उसी अनुपात में बंजर होती जा रही है
और नदी हर दिल में उसी रफ्तार से शांत
हर विवशता का उपहास-सा करती '

विसंगतियों के परिणामस्वरूप लूट खसोट की प्रवृत्ति बढ़ रही है, अपराध बढ़ते जा रहे हैं, लोग एक दूसरे के दुश्मन हो रहे हैं, समाज में झगडे बढ़ रहे हैं । कवि इस वास्तविकता से अवगत कराते हुए कहता है कि

"भर-जो मजूरी पूरी न पड़ने पर चोरी करते हैं
और एक-दूसरे को दुश्मन मान
उनका घर जलाते रहते हैं
उनकी औरतें रात-दिन आपस में
झगड़ती हैं, गालियाँ देती हैं"

इन्ही विसंगतियों के चलते हिंसा का वातावरण बन रहा है । लोग अनुचित कार्य कर रहे हैं । उनके अन्दर कानून व्यवस्था का भय समाप्त हो गया है । यह स्थिति किसी भी सभ्य समाज एवं व्यवस्था के लिए घातक है । कवि ने इस स्थिति को चित्रित करते हुए लिखा है -

"इसके हाथ में पत्थर है
जिसे वह पुलिस पर फेंक रहा था
यह बूढ़ा अपनी सूखती फसल के लिए
रात मे बरहा काट रहा था
यह जवान जब कुछ नहीं बना
छर्रो की बंदूक लिये हवेलियाँ लूटने की
सोच रहा था ।"

व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों के प्रति कवि चिन्तित है । इसके परिणामस्वरूप उपजी हताशा, आक्रोश एवं दुष्परिणामों की ओर स्पष्ट संकेत करता है ।

12.2.3 समकालीन परिवेश से साक्षात्कार

कुआनोनदी में समकालीन वातावरण अपने सम्पूर्ण यथार्थ के साथ प्रस्तुत हुआ है । वास्तव में समकालीन परिवेश के प्रति कवि अत्यन्त जागरूक है । पूरी कविता हमें अपने समय के कटु यथार्थ से परिचित कराती है । ग्राम्य जीवन, पिछड़े इलाकों, विसंगतियों, भ्रष्टाचार, राजनीतिक स्वार्थपरता, बदहाली, आक्रोश, पीड़ा, विवशता आदि चलचित्र की भांति हमारी आंखों के सामने साक्षात् हो जाते हैं । कवि देश में बहुत से हिस्सों में व्याप्त गरीबी की स्पष्ट घोषणा करता है-

“बहुत गरीब जिला है वह, बस्ती -
जहाँ मैंने इसे पहली बार देखा था,"
तथा
"बहुत गरीब है यह धरती
जहॉ यह बहती है ।”
हमारे समाज में अनैतिक एवं अमानवीय कृत्य हो रहे हैं ।
"आवारा औरतें सिगरेट पीती
गुनगुनाती लिपटती
अपने ग्राहकों के साथ घूमती हैं ।
रात में अक्सर कत्ल होते हैं । '

समाज में शोषण निरन्तर बढ़ता जा रहा है । इस शोषण को मूक होकर देखने एवं सहन करने के लिए विवश हैं-

"नाखून दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं
और जमीन उसी अनुपात में बंजर होती जा रही है
और नदी हर दिल में उसी रफ्तार से शांत
हर विवशता का उपहास-सा करती"

समकालीन वातावरण में विसंगतियों एवं स्वार्थलिप्सा के परिणामस्वरूप लोगों के सपने टूट रहे हैं । बेरोजगारी युवाओं में हताशा एवं विद्रोह के भाव भर रही है । लोग गलत कार्यो की ओर अग्रसर हो रहे हैं ।निर्दोश मारे जा रहे हैं । इन तथ्यों का कुआनो नदी में पूरी बेबाकी के साथ अंकन हुआ है ।

"यह एक किराये का जुलूस था
तमाशा देखते देखते
अपनी जरूरतों पर सोचने लगा था
गोली चलने पर भागना भूल गया '

जन आन्दोलन निरूद्देश्य हो गये हैं । सामाजिक एवं राजनीतिक क्रिया-कलाप निरर्थक हो गये हैं । इस स्थिति की ओर संकेत करते हुए कवि ने लिखी है कि -

"मैं अधजले मकानों के पास रूक जाता हूँ
नारे लगाते जुलूस तेजी से निकल जाते हैं,
शब्द दम तोड़ती मछलियों की तरह
उलट कर अर्थहीन हो जाते हैं
उनमें और पथराई पुतलियों में
कोई अंतर नहीं दीखता । "

कवि अपने परिवेश के प्रति बेहद सजग है । हर सामाजिक राजनीतिक घटना पर उसकी नजर है । लोगों के अन्दर उत्पन्न होने वाले आक्रोश और उसके परिणामस्वरूप हुए छुट-पुट आंदोलनों का चित्रण किया है -

"पानी खतरे के निशान पार नहीं कर पाया
सूखी धरती और सूखे दिलों में जज्ब हो गया है । '

12.2.4 लोक संस्कृति से गहरा जुड़ाव

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना महानगर में रहकर भी अपने लोक को भुला नहीं सके । कुआनो नदी का कथ्य एवं शिल्प इसी का उदाहरण है । ग्राम्य जीवन का एक दृश्य देखिए -

"सड़क पर अधिकतर बैलगाड़ियाँ चलती है
कभी कभी कोई इक्का भी ।
परदा बांधे, औरतों बच्चों को बैठाए डगमगाता ।
और फिर एक साइकिल धूल से भरी हुई ।

भेड़ बकरियों के गल्ले ।
नये खरीद रंगे सीगों वाले बैल घटिया बजाते ।
जिनकी आवाज धीरे धीरे दूर होती जाती है । '

गाँवों में बसने वाले लोगों के सामने अनेक समस्यायें है । अधिकांश आबादी अभावों में जीती है लेकिन इसके बावजूद लोक संस्कृति के तत्व उनमें मौजूद है । प्रत्येक अवसर के लिए उनके पास गीत हैं जो उनकी जिन्दगी को और संस्कृति को जीवन्त बनाते हैं । 'कुआनो नदी' कविता में इस तथ्य की ओर संकेत किया है -

"मैं उन खेतों में ले जाऊँगा
जहाँ काँसे की चूड़िया खनकाती
औरतें मँह अंधेरे दौरियां चलाती है ।
निहाई और बोआई के गीत गाती हैं ।
और कटी हुई फसलों के बीच
पीली धोती अनवासे
एक सांवली लड़की दौड़ती हुई दिखाई देती है । '

ग्रामीण जीवन और उनके व्यवसाय से संबंधित चित्र कुआनो नदी में बखूबी उभरकर आये हैं । ये हमें जहाँ ग्रामीण जीवन की जटिलता से साक्षात्कार कराते हैं वहीं हमें हमारे लोक में विचरण कराते हैं । कविता में सिघाड़े तोड़ते खटीक और खटीकिनें, काम करते हुए लोहार और बढ़ई आदि का वर्णन इसका प्रमाण है । ग्राम्य जीवन से संबंधित एक दृश्य और देखिए -

"पुल पर दही के मटके लिए एक एक कर अहीरों को
जाते देखता हूँ
वे सब शहर में दही बेचकर गाँव को लौटते हैं
कभी कभी किसी के सिर पर लकड़ियों के बोझ भी होते हैं
या गठरियाँ, खरीदे सौदे-सुलफ की
उनकी परछाइयाँ शीत हरे जल पर अच्छी लगती है '

यही नहीं 'कुआनो नदी' की भाषा भी लोक के रंग में रंगी हुई है । वास्तव में कुआनो नदी कविता में लोक संस्कृति सजीव हो उठी है ।

12.2.5 मूल्यों के क्षरण के प्रति चिन्ता

समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक धरातल पर हो रहे मूल्यों के क्षरण के प्रति कवि की चिन्ताएँ कविता में साफ दृष्टिगोचर होती हैं और यह स्वाभाविक भी है कि सर्वेश्वर जैसा सामाजिक प्रतिबद्धता का कवि अपने समय के सच से कैसे आंखे चुरा सकता है । देश की आजादी के बाद जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तेजी से मूल्यों का विघटन हुआ है । स्वार्थलिप्सा ने मानवीय संवेदना को बुरी तरह प्रभावित किया है । नैतिक मूल्यों का तेजी से ह्रास हुआ है । इस व्यवस्था में अनैतिक कृत्य बढ़ते जा रहे हैं । कवि कुआनो नदी के संदर्भ से इस तथ्य की ओर संकेत करता है -

"आवारा औरतें सिगरेट पीती
गुनगुनाती लिपटती

अपने ग्राहकों के साथ घूमती है ।
रात में अक्सर कत्ल होते हैं ।
लाशें कई कई दिनों की पायी जाती हैं ।
किसी स्त्री का फेंका हुआ नया जन्मा बच्चा
कभी जिन्दा, कभी मरा मिल जाता है । "

महानगरों और सत्ता के केन्द्रों में तो मूल्यों की खुलेआम अवहेलना की जा रही है और दिलचस्प तथ्य यह है कि ऐसा करते हुए हमें कोई ग्लानि नहीं होती । यह स्थिति मानवता के लिए निश्चित रूप से घातक है । कवि ने इस कड़वी सच्चाई को इन शब्दों में व्यक्त किया है -

"तेजी से इन इमारतों की बगल से गुजर जाता हूँ ।
जिन पर सत्यमेव जयते को खरोंच कर
लिखा हुआ है सब चलता है दिल्ली की सड़कों पर ।"

मूल्यों के क्षरण के इस युग में आम आदमी सबसे अधिक प्रभावित हुआ है । उसे हर जगह समस्याओं का सामना करना पड़ता है । सिद्धांत थोथे हो गये हैं, वास्तविकता उनके ठीक विपरीत है । इस मूल्यहीनता से हमारे शिक्षण संस्थान तक नहीं बच पाये हैं । कवि की बैचेनी और पीड़ा इन शब्दों में मुखर हो उठी है -

"क्यों हम आदमी को
आदमी की तरह नहीं देख पाते?
क्यों ये सब फाइलों में मरे पड़े हैं?
क्यों ये स्कूलों, और कॉलेजों में,
क्यों ये बड़े-बड़े दफतरों में,
ऊची-ऊंची इमारतों में
क्यों ये सत्ता की होड़ में
क्यों ये एक एक पाई की जोड़ तोड़ में
क्यों ये थोथे सिद्धांतों के नीचे दब कर मर गये
यदि बच रहे
तो फूली लाश की तरह उबर गये?"

यहाँ तक कि मूल्यहीनता के चलते आम आदमी की भावनाओं से जमकर खिलवाड़ की गई है । उनके ताप पर स्वार्थ की रोटियाँ सेंकी गई हैं कवि ने इस स्थिति को इन शब्दों में व्यक्त किया है -

'इन नदी में न जाने कितनी बार बाढ़ आयी है
रगों में खून खौला है
पर हर बार अंगीठियों से तमतमाते चेहरों पर
रोटियाँ ही सेंकी गयी है
पानी खतरे के निशान पार नहीं कर पाया '

कुआनो नदी कविता में समकालीन परिवेश में व्याप्त सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों, मूल्यहीनता के प्रति कवि की पीड़ा, आक्रोश एवं विवशता बखूबी दिखाई पड़ती है ।

12.3 'कुआनो नदी' कविता का अभिव्यक्ति पक्ष

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना नई कविता की महत्वपूर्ण उपलब्धि कहे जा सकते हैं । उन्होने अपने काव्य के माध्यम से नई कविता को नवीन भाव-बोध और नवीन संवेदनाएँ प्रदान कीं और इनकी अभिव्यक्ति के लिए शिल्प भी नूतनता के साथ प्रयोग किया ।

12.3.1 काव्य रूप

कुआनो नदी सर्वेश्वर की प्रमुख कविता है । यह तीन खण्डों में विभक्त एक लम्बी कविता है । नई कविता के दौर में कई लम्बी कविताएँ लिखी गई लेकिन 'कुआनो नदी' का काव्य-रूप अन्य लम्बी कविताओं से भिन्न है । कवि ने इसमें पुराने प्रबन्ध शिल्प को छोड़कर चिंतनात्मक प्रबन्ध शिल्प को प्रयुक्त किया है ।यह लम्बी कविता तीन खण्डों में विभक्त की गई है- 1. कुआनो नदी 2. कुआनो नदी के पार 3. कुआनो नदी-खतरे का निशान । खण्डों में विभक्त होने के बावजूद कविता टूटती नहीं इसमें एकसूत्रता बनी रहती है और प्रत्येक खण्ड में विचार क्रमश: विकसित होता है । कविता में कई शैलियाँ प्रयोग की गई है यथा - फैंटेसी, व्यंग्य कथा, आत्म कथन आदि।

सामाजिक मूल्य क्षरण पर व्यंग्य करता हुआ कवि लिखता है -

"जिन पर सत्यमेव जयते को खरोंच कर
लिखा हुआ है सब चलता है
दिल्ली की सड़कों पर ।"

सामाजिक विसंगति उथल-पुथल और उससे उपजे आक्रोश को कवि ने फैंटेसी के माध्यम से व्यक्त किया है।

"घर के पिछवाड़े बंधी
गांधी जी की बकरी मिमियाती है
और कहीं गोली चलने की आवाज आती है
यह संकेत है बाहर आने का"

आत्म मंथन और आलोड़न में कवि आत्म कथन का सहारा लेता है-

"क्या आधी जिन्दगी
मैंने यही पहुँचने के लिए सिर्फ की?
मैं सोचता हूँ और भागता हूँ
मैं भागता हूँ और सोचता हूँ । '

कविता में कवि ने 'कसाव और संप्रेषणीयता' के प्रभाव को बनाए रखने के लिए नाटकीयता का भी सफल प्रयोग किया है -

"मैं मेज हिलाकर देखता हूँ
कि कुर्सियों पर टिकी
चारपाई का रखा शब्दों का संदूक

हिल तो नहीं रहा है ।
मैं किताबों का गट्ठर उठाता हूँ
संविधान की पुस्तक
सरककर गिर पड़ती है
जिल्द से अलग हो जाती है ।"

इसी प्रकार नदी का पानी चढ़ना जन-क्रांति का प्रतीक बन जाता है । यह उत्तेजना पाठक को उत्तेजित कर देती है -

"कहाँ हो, ओ क्रांति के सूत्रधार
पानी चढ़ रहा है, खून फैल रहा है
बहुत करीब आ गया है खतरे का निशान ।"

12.3.2 काव्य भाषा

कवि की अनुभूति को संप्रेषित करने का माध्यम भाषा है । कुआनो नदी गहन चिन्तन एवं गहरे भाव बोध की कविता है ऐसे में कविता की भाषा का महत्व और बढ़ जाता है । कविता की भाषा पाठक से आत्मीय रिश्ता कायम करती हुई अनुभूति की हर परत को उघाड़ कर रख देती है । इस प्रक्रिया में कहीं तत्सम और परिष्कृत शब्द प्रयुक्त हुए हैं तो कहीं अंग्रेजी, उर्दू के, कहीं दैनिक जीवन के तो कहीं चिर परिचित शब्द भी नये अर्थ के वाहक बन कर प्रयुक्त हुए हैं-

"मैं अधजले मकानों के पास रूक जाता हूँ
नारे लगाते जुलूस तेजी से निकल जाते हैं ।"

कुआनो नदी कविता में परिवेश के अनुसार ही शब्दावली प्रयुक्त हुई है जिससे वातावरण सजीव हो उठा है और अभिव्यक्ति भाव प्रवण हो उठी है यथा -

"पुल पर दही के मटके लिए
एक एक कर अहीरों को जाते देखता हूँ
वे सब शहर में दही बेचकर गाँव लौटते होते हैं
कभी-कभी किसी के सिर पर लड़कियों के बोझ भी होते हैं
या गठरियां, खरीदे सौदे-सुलुफ कीं
तथा -
"लोहारों को धौंकनी के सामने
घोड़े सा मुँह लटकाये
खुरपी, कुदाल और नाल बनाते हुए
बढ़इयों की ऐनक का शीशा
सूत से कान में बॉधे
बंसखट के पाये गढ़ते हुए । '

सर्वेश्वर ने कविता में लोक-भाषा को भी पर्याप्त व्यंजना प्रधान, बिम्ब प्रधान और वक्रतापूर्ण बनाकर प्रस्तुत किया है । कविता में प्रयुक्त भाषा में वक्रता और व्यंजकता अत्यंत गहरी है । सीधे

और आम बोलचाल में प्रयुक्त शब्दों द्वारा कवि ने गहरी संवदेनाएँ व्यक्त की हैं । इसी के प्रभाव स्वरूप कवि की भाषा में व्यंग्य का चमत्कार उत्पन्न हो गया है -

"क्यों हर हाथ टूटा है
क्यों हर पैर कटा हुआ है
क्यों हर चेहरा मोम का है
क्यों हर दिमाग फूडे से पटा हुआ है
यों यहाँ कोई जिन्दा नहीं है?
X X X X X X
मैं एक मक्खी की तरह
खुद अपने ऊपर भिनभिनाने लगता हूँ ।"

कवि मामूली शब्दों का सहारा लेकर गहरे संकेत देता है । कविता में कवि का वैचारिक पक्ष अत्यंत प्रबल है इस कारण भाषा में आधुनिक कविता की प्रमुख विशेषता गद्यात्मकता भी दृष्टिगत होती है-

"बहुत गरीब जिला है यह बस्ती-
जहाँ मैंने इसे पहली बार देखा था
मेरे नाना इस नदी में कूद पड़े थे
और निकाल लिये गये थे
जिन्दगी से ऊब कर मर नहीं सके ।"

कहा जा सकता है कि 'कुआनो नदी' में प्रयुक्त भाषा की विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. आम बोलचाल की जनभाषा
2. सांकेतिकता
3. कथन की वक्रता
4. सूक्तिमयता
5. गद्यात्मकता

12.3.3 प्रतीक विधान

अनुभूति को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने, सशक्त एवं गर्भित रूप देने में प्रतीक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । क्योंकि नवीन अनुभवों और विचारों को पुराने प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करना सहज होता है । प्रतीक किसी अदृश्य या अप्रस्तुत के निमित्त प्रस्तुत किए गए प्रत्यक्ष संकेत हैं । सर्वेश्वर के काव्य में प्रयुक्त प्रतीक उनके अनुभवों के शाब्दिक प्रतिरूप हैं । कवि ने अपने आस-पास के परिवेश से ही प्रतीक लिए हैं । कुआनो नदी में सर्वेश्वर ने ज्यादातर उन प्रतीकों को अपनाया है जो भूख, गरीबी, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता, शोषण, व्यभिचार, विद्रोह, क्रांति और आक्रोश को व्यक्त करते हैं साथ ही पीड़ा, ऊब और अवसाद की भी अभिव्यक्ति करते हैं । कुआनो नदी में कवि की सांस्कृतिक चेतना और मूल्यान्देशण की प्रवृति उनके सांस्कृतिक प्रतीकों में व्यक्त हुई है । कुआनो नदी ऐसा ही एक प्रतीक है । नदी संस्कृति का, कीचड़ विकृतियों का, पाट संस्कृति के स्वरूप

का प्रतीक बन कर कविता में प्रयुक्त हुए हैं । नदी में आने वाली बाढ़ सांस्कृतिक चेतना में सभ्यता के व्यर्थ किन्तु चमकदार, आकर्षक उपकरणों का आ जाना है जो क्रांति को संकेतित करते हैं । कविता में आया 'कौआ', शोषण का प्रतीक है, जो हंस बनकर शोषण करता है । इसी प्रकार -

"मछलियाँ, जोंक, पनियल सांप,
सबके अलग-अलग ढंग है पानी में चलने के
मैं आज भी उनका गवाह हूँ । '

ये मछलियाँ, जोंक और पनियल सांप, सब मनुष्य के ही विविध रूप हैं । सर्वेश्वर अपने परिवेश की विसंगतियों के प्रति चिन्तित हैं । समाज में एक बहुत बड़ा वर्ग गरीब और वंचित है निम्न पंक्तियों में कवि ने प्रतीकात्मकता के माध्यम से इस वर्ग के ही गरीबी, बेबसी, बैचेनी और अपमानित जीवन को व्यक्त किया है-

"यह हरिजन था इसे जिन्दा जला दिया गया
वह अनपढ़ गरीब था
इसे देवी की बलि चढ़ा दिया गया ।
यह आस्थावान धर्मगुरूओं की कोठरी में मरा
यह अनजानी ऊंचाईयां छूना चाहता था
छत की कड़ी से झूल गया । '

इन पंक्तियों में हरिजन, अनपढ़, गरीब, आस्थावान, धर्मगुरू सब विक्षोभ, अपमान, निर्धनता और असहायता का प्रतीकार्थ रखते हैं । 'धर्म गुरूओं की कोठरी धर्म के मठाधीशों और रूढ़ियों का प्रतीक है ।

समाज की असंगति देखकर कवि का मन व्याकुल हो उठता है और वैचारिक व्यथानुभव की स्थिति में प्रतीकों के माध्यम से ही पराधीनता, विवशता, अवसरवादिता और विकृति को व्यक्त करता है -

"क्यों हर हाथ टूटा है
क्यों हर पैर कटा हुआ है
क्यों हर चेहरा मोम का है
क्यों हर दिमाग कूडे से पटा हुआ है । '

टूटा हाथ व कटा पैर विवशता के प्रतीक हैं । कविता में प्रतीक संप्रेषण का सशक्त माध्यम बन कर आए हैं । ये प्रतीक दुरूह और उलझाने वाले नहीं हैं वरन् संदर्भ से जुड़कर गहरी और सार्थक व्यंजना देने वाले हैं ।

12.3.4 बिम्ब प्रयोग

बिम्ब अप्रस्तुत वस्तु का काल्पनिक रूप है, जिसके द्वारा कवि साकार तथा निराकार पदार्थो और मानस क्रियाओं को प्रत्यक्ष एवं इन्द्रिय ग्राह्य बनाता है । सर्वेश्वर की कविता में बिम्बों का विशेष महत्व है । क्योंकि नई कविता जीवन के ग्रहण और प्रेषण की कविता है । अत: वह बिम्ब को अनिवार्य उपादान के रूप में स्वीकार करती है । सर्वेश्वर का काव्य भी इसी कारण बिम्ब प्रधान है ।

कुआनो नदी शीर्षक कविता में कवि ने अत्यन्त सूक्ष्म एवं मौलिक बिम्बों का प्रयोग किया है ।

कुआनो नदी अपने समय का साक्ष्य प्रस्तुत करती है । कविता में संस्कृति, सभ्यता, परिवेशव्यापी जड़ता, यांत्रिकता, व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार आदि स्थितियों को बिम्बों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है । सामयिक यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले बिम्बों की संख्या कविता में काफी है ।

"फिर बाढ़ आ गयी होगी उस नदी में
पास का फुटहिया बाजार वह गया होगा
पेडों की शाखाओं में बंधे खटोले पर
बैठे होंगे बच्चे किसी काछी के
और नीचे कीचड़ में खड़े होंगे चौपाये
पूंछ से मक्खियाँ उड़ाते ।"

ये अलंकरण विहीन स्थिर बिम्ब है जिसमें गत्यात्मकता नहीं है । बिम्बात्मक प्रभाव होते हुए भी ये 'स्केच' अधिक लगते हैं ऐसे अन्य उदाहरण भी कविता में अन्यत्र मिल जाते हैं-

"आज भी इसके किनारों के गाँवों में
सिंघाड़ों के तालों में
बडे-बड़े मटके औंधाए
मैं खटिकों को नंग-धडंग पानी में घुसे
सिंघाड़े तोड़ते देखता हूँ ।"

आधुनिक जीवन अत्यंत परिवर्तनशील है युग का यथार्थ प्रतिपल बदलता रहता है । हर रोज जीवन किसी नई चुनौती का सामना करता है । हर दिन कोई न कोई त्रासदी घटित होती है कवि इसे महसूस करता है और यही सामाजिक यथार्थ बिम्बों में बंधकर सामने आता है-

"यह बच्चा है
इसका कटा हुआ धड़
बस्ता लिए स्कूल के फाटक पर पड़ा है
इसके हाथ में पत्थर है
जिसे वह पुलिस पर फेंक रहा था
यह जवान जब कुछ नहीं बना
छर्रो की बन्दूक लिए हवेलियाँ लूटने की सोच रहा था ।"

प्रस्तुत बिम्ब में समकालीन यथार्थ पूरी तरह व्यक्त हुआ है । बिम्ब क्रांतिधर्मी के आक्रोश को प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करता है । वस्तु बिम्ब के अतिरिक्त ऐन्द्रिय बिम्ब भी कविता में पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं । ऐन्द्रिय बिम्ब का उदाहरण दृष्टव्य है-

अभी भी मैं उसी लग्गी की चुभन
अपनी पसलियों पर महसूस करता हूँ
और एक सूखे चीमड़ कंकाल का रूखा झुर्रियों वाला हाथ
मेरे गालों से छू जाता है । '

इसी प्रकार ध्वनि बिम्ब भी कविता की अभिव्यक्ति में सहायक हुए हैं-

'जबकि मेरे पिता जाँघ तक धोती उठाये
पानी को हकोलते आते हैं
कलल-कल, कलल-कल"

इसी प्रकार

जब चढ़ जाती है लतर
झाँझर टट्टर पर
गिरगिट खड़खड़ाता रेंगता है '

कविता में आए घ्राण बिम्ब वातावरण को सजीव करने में सफल हुए हैं-

"लेकिन तट के कीचड़ में नाव
धीरे-धीरे जाकर फॅस जाती है ।
फिर एक बदबू सी उठती है
और वह नमक और तेल लगी अपनी
रोटी चुपचाप खाने लगता है । '

यह संकेत हैं कि कविता में बिम्बों की एक लम्बी श्रृंखला मिलती है । और ये बिम्ब हृदय पर गहन प्रभाव छोड़ने में सक्षम हैं ।

12.3.5 उपमान

नयी कविताओं की घोषणा थी कि - "ये उपमान मैले हो गये हैं । देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच ।" सर्वेश्वर भी इससे प्रभावित हैं और इस कारण उनके काव्य में परम्परागत पुराने उपमानों का त्याग कर नवीन उपमानों का प्रयोग मिलता है । 'कुआनो नदी' में कवि ने कई नए किन्तु सार्थक उपमान प्रयुक्त किये हैं जिससे 'अभिव्यक्ति धारदार और पैनी हो गयी है यथा-कवि काम में दत्तचित्त, संघर्षरत लुहारों के मुँह की तुलना घोडे से करता हुआ कहता है

"लोहारों की धौंकनी के सामने
घोड़े सा मुँह लटकाए

गरीब बच्चों की पनियाली, धुंधली ऑखों की तुलना करता हुआ कवि सर्वथा नवीन और सटीक उपमान देता -

"जिनकी ऑखें अंधेरे में जलती
मिट्टी के तेल की ढिबरियों सी दिखाई देती हैं ।"

इसी प्रकार

'ईश्वर के हाथ की तरह
वृक्ष खड़े हैं मुँह लटकाये भावहीन ।'

कवि संवेदनहीन स्पंदनरहित जीवन के तिर 'ठण्डी खुरपी' का उपमान प्रयोग करता है -

"क्यारियों की नम भुरभुरी मिट्टी में पड़ी
ठंडी खुरपी सी जिन्दगी को । "

शहरी जीवन में अस्तित्व संकट को झेलता व्यक्ति कवि को मक्खी की तरह प्रतीत होता है -

'मैं एक मक्खी की तरह
खुद अपने ऊपर भिनभिनाने लगता हूँ ।"

वर्तमान समय में व्यक्ति स्वार्थी व आत्म केन्द्रित होता जा रहा है वह हर घटना-दुर्घटना का मूक साक्षी मात्र है जैसे जड़ पेड -

"इन्सान उस पेड़ की तरह खड़ा रहा है
जिससे बांधकर निरपराधों को
गोली मारी गयी हो । "

इसी प्रकार कवि संघर्ष झेलते लड़कों की तुलना कछुओं से करता है -

"मुझे धुएँ से भरे चायघरो में बैठे
मरियल हकलाते छोकरे याद आते हैं
जैसे बाढ़ में तैरते कछुए
जिनकी पीठ सख्त हो ।

12.4 शब्दावली

दुरूह	–	कठिन
दुर्दशा	–	बुरी स्थिति
परिकृत	–	सुधरा हुआ
चिर-परिचित	–	जाना पहचाना
अदृश्य	–	दिखाई न देना
निर्धनता	–	गरीबी
विक्षोभ	–	उद्विग्नता

12.5 सारांश

'कुआनों नदी' लम्बी कविता की परम्परा में एक महत्वपूर्ण कविता है । इसमें कवि की गहन अनुभूति का परिचय मिलता है । इस कविता में भारतीय जन-जीवन एवं व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों का सटीक अंकन हुआ है । आम आदमी की दुर्दशा का स्पष्ट आभास भी मिलता है । कविता में लोक जीवन और संस्कृति का अंकन इसे सजीव बनाता है । कविता का अभिव्यक्ति पक्ष भी नवीनता और लोक का पुट लिए हुए है । वास्तव में इस कविता में स्वतन्त्रता के बाद के भारत की तस्वीर उभरकर आयी है ।

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'कुआनो नदी' कवि में लोक-जीवन साकार हो उठा है ।' इस कथन की विवेचना कीजिए ।
2. 'कुआनो नदी' कविता में समकालीन वातावरण का यथार्थ अंकन हुआ है । ' इस कथन की समीक्षा कीजिए ।
3. 'कुआनो नदी' कविता के अनुभूति पक्ष की विवेचना कीजिए ।

4. 'कुआनों नदी' कविता के अभिव्यक्ति पक्ष पर प्रकाश डालिए ।
5. 'कुआनो नदी' कविता की समीक्षा कीजिए ।

12.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; कुआनो नदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
2. कृष्ण दत्त पालीवाल 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना', साहित्य अकादमी, दिल्ली ।
3. कृष्ण दत्त पालीवाल; सर्वेश्वर और उनकी कवितालिपि प्रकाशन, दिल्ली ।
4. हरि चरण शर्मा; सर्वेश्वर का काव्य; संवेदना और संप्रेषण,पंचशील प्रकाशन जयपुर ।
5. डॉ. मंजु त्रिपाठी; सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और उनका काव्य संसार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ।
6. कल्पना अग्रवाल; सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : व्यक्ति और साहित्य, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर।

इकाई - 13

नरेश मेहता व्यक्तित्व और कृतित्व

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 कवि का जीवन एवं व्यक्तित्व

13.2.1 जन्म, परिवार और शिक्षा''

13.2.2 संघर्षपूर्ण जीवनक्रम

13.2.3 व्यक्तित्व की रेखाएँ

13.2.3.1 असाधारणता

13.2.3.2 जिजीविषा

13.2.3.3 अन्तर्मुखी और भावुक

13.2.3.4 निर्भीकमना

13.2.3.5 संयम, धैर्य, दृढ़ता

13.2.3.6 आस्तिक और उत्सवप्रिय

13.2.3.7 भारतीय संस्कृति के पोषक

13.2.3.8 मानवीय शक्ति में विश्वास

13.3 कृतित्व परिचय

13.3.1 दूसरे सप्तक में संकलित कविताएँ

13.3.2 वनपाखी सुनो

13.3.3 बोलने दो चीड़ को

13.3.4 मेरा समर्पित एकान्त

13.3.5 उत्सवा

13.3.6 तुम मेरा मौन हो

13.3.7 अरण्या

13.3.8 आखिर समुद्र से तात्पर्य

13.3.9 पिछले दिनों नंगे पैरों

13.3.10 देखना एक दिन

13.3.11 पुरुष

13.3.12 संशय की एक रात

13.3.13 महाप्रस्थान

13.3.14 प्रवाद पर्व

13.3.15 शबरी

13.3.16 प्रार्थना पुरुष

13.4 सारांश

13.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.6 संदर्भ ग्रंथ

13.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य छात्रों को नरेश मेहता के पाठ्यक्रम में प्रस्तावित काव्य 'प्रवाद पर्व' का अध्ययन करने से पूर्व उनके जीवन एवं कृतित्व से अवगत कराना है । इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप -

- नरेश मेहता से परिचित हो सकेंगे । वे यह जान सकेंगे ।
- कवि की रचना-प्रक्रिया में स्थिर जीवन-मूल्यों एवं सांस्कृतिक तत्वों को जान सकेंगे ।
- 'प्रवाद पर्व' को समझ सकेंगे ।

13.1 प्रस्तावना

श्री नरेश मेहता नयी कविता के विशिष्ट कवि हैं । उन्हें नयी कविता का कीर्ति पुरूष कहा गया है । उल्लेखनीय है कि कवि के रूप में उनकी पहचान 'दूसरा सप्तक' में संकलित कविताओं के माध्यम से सामने आयी । सप्तक परम्परा में जितने भी कवि आये, उनमें से आधे से अधिक कवि ऐसे है, जो कवि के रूप में अपनी पहचान नहीं बना पाये, किन्तु नरेश मेहता ने 'दूसरा सप्तक' की कविताओं के माध्यम से ही नये कवियों में अपनी विशिष्ट पहचान बना ली । नयी कविता के क्षेत्र में नरेश मेहता की विशिष्ट पहचान को जानने या समझने के लिए उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझना अत्यन्त आवश्यक है ।

13.2 कवि का जीवन एवं व्यक्तित्व

नरेश मेहता नयी कविता के विशिष्ट कवि हैं, वे कीर्ति पुरुष है । नयी कविता में नरेश मेहता की अपनी अलग पहचान है और वह पहचान ऐसी है, जिसे हम किसी एक शब्द द्वारा अभिव्यक्त नहीं कर सकते हैं । नरेश मेहता की विशिष्ट पहचान को जानने के लिए या समझने के लिए उनके व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित होना आवश्यक है । नरेश जी का व्यक्तित्व जिस संघर्ष और अभावों के बीच विकसित हुआ, उसने भी उनके मन में अपनी संस्कृति के प्रति अपने प्राचीन ग्रंथों के प्रति एक प्रकार की निष्ठा जाग्रत कर दी । यही कारण है कि उनके काव्य में एक ओर प्रकृति की अनाघ्रात छवियाँ हैं तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति, दर्शन,चिन्तन और उदात्त जीवन-मूल्यों से जुड़ी हुई अभिव्यक्तियाँ हैं । ऐसे रचनाकार के जीवन, परिवार, परिवेश और जीवन-क्रम का अध्ययन करने के पश्चात् ही उनके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं का विवेचन किया जा सकता है ।

13.2.1 जन्म, परिवार और शिक्षा

नरेश मेहता का जन्म 15 फरवरी, 1924 को मालवा के एक अंचल शाजापुर में परम आस्तिक ब्राह्मण पण्डित बिहारीलाल शुक्ल के घर में हुआ। नरेश मेहता ढाई वर्ष की अवस्था में ही मातृ-सुख से वंचित हो गये । इनके पिता के तीन विवाह हुए । पहली पत्नी सन्तानरहित रहीं, दूसरी पत्नी से एक पुत्री ने जन्म लिया । यही पुत्री श्रीमती शांति जोशी के नाम से विख्यात हुई और तीसरी पत्नी से नरेश मेहता का जन्म हुआ। तीन-तीन पत्नियों और पुत्री शांति की मृत्यु के आघात को नरेश मेहता के पिता सहन नहीं कर सके । परिणामस्वरूप संसार के प्रति उनके मन में विरक्ति उत्पन्न हो गयी । नरेश मेहता उस समय अबोध बालक थे । इनके पिता ने इनके प्रति अपना पूर्ण दायित्व नहीं निभाया । ऐसी विषम स्थिति में नरेश मेहता का बचपन इनके चाचा पण्डित शंकरलाल शुक्ल के स्नेहपूर्ण संरक्षण में ही व्यतीत हुआ। माँ की अकाल मृत्यु, पिता का वैराग्यपूर्ण जीवन और चाचा का संरक्षण प्राप्त करते हुए ऐसे विषम परिवेश में नरेश के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ। नरेश मेहता के पिता परम वैष्णव थे और उन्होंने राममार्गी पंथ में विधिवत दीक्षा भी ली थी । पिता का संस्कार पुत्र में भी आया । यही कारण था कि वैष्णव भावना नरेश जी की कविताओं में स्पष्टत: देखी जा सकती है । बीस वर्ष की अल्पायु में ही शांति दीदी की मृत्यु हो गयी । इन सब स्थितियों से नरेश मेहता के मन में एक हताशा का भाव उत्पन्न हो गया । ये एकान्त प्रिय होते चले गये और धीरे-धीरे संघर्षो को सहन करते हुए इनका जो व्यक्तित्व बना, उसे हम इनकी रचनाओं में भी देख सकते हैं । नरेश ने इस विषय में स्वयं दूसरे सप्तक में लिखा है कि "अन्तर्मुखी किशोर को न परिवार का गणित समझ में आया और न ही स्कूल का । दोनों के गणित से उन्हें घृणा हो गयी जिसने उनके व्यक्तित्व में कड़वाहट भर दी और वह कड़वाहट नरेश के जीवन का अंग बन गयी । नरेश जी की छठी कक्षा तक की शिक्षा चाचा के यहाँ 'धार' में हुई फिर आगे की पढ़ाई के लिए वे बुआ के यहाँ नरसिंहगढ़ गये । वहाँ रहकर उन्होंने मैट्रिक पास की । इसके बाद. इण्डरमीडिएट की पढ़ाई उन्होंने उज्जैन में पूरी की । उन्होंने पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त ऐसी तमाम पुस्तकों का भी अध्ययन किया जिनसे तत्कालीन आंदोलन की जानकारी मिलती थी । काशी विद्यापीठ में उन्होंने स्नातक (बी.ए.) की परीक्षा पास की । स्नातक कक्षाओं में उनके विषय राजनीतिशास्त्र, प्राचीन इतिहास और हिन्दी साहित्य थे, जो उनके आगे के जीवनक्रम में महत्वपूर्ण रहे । सन् 1942 के स्वतन्त्रता आदोलन में वे पूर्ण सक्रिय रहे और सन् 1946 में हिन्दी साहित्य में बनारस विश्वविद्यालय से एमए. करने के पश्चात् उन्होंने बनारस छोड़ दिया । पढ़ाई एवं खर्च के लिए पिता की ओर से मिलने वाली बीस रुपये की निश्चित राशि से महीने भर का खर्च न चल पाता था, लेकिन इसके बावजूद अपने को असहाय घोषित कर दूसरों से सहायता प्राप्त करने का मार्ग उनके स्वाभिमानी स्वभाव के विरूद्ध था । परिणामत: अभाव, यातना और फाकों के दौर से भी उन्हें गुजरना पड़ा, फिर भी उन्होंने किसी से सहायता की याचना नहीं की । यहाँ तक कि अपने चाचा को भी अपनी स्थिति से अवगत कराना उचित नहीं समझा । इस संदर्भ में नरेश मेहता के काशी-जीवन का यह प्रसंग न केवल महत्वपूर्ण है, अपितु उनके स्वभाव को भी दर्शाता है-घर जाना था । पास में किराये के पैसे नहीं थे । मांगना स्वभाव में नहीं था । एक रास्ता सूझा। कुंजगली में कुछ सुरुचि-सम्पन्न व्यापारियों को कविता सुनाकर चालीस रुपये पारिश्रमिक

के रूप में प्राप्त किए और उसी से घर गये । यह निश्चित है कि काशी के विद्यार्थी जीवन की स्मृतियाँ अधिक सुखद नहीं रहीं । शिक्षा प्राप्त करके नरेश जी ने राजनीति में प्रवेश किया तथा उन्होंने राजनीति और साहित्य को पर्याय माना । सबसे पहले तो उन्होंने आकाशवाणी में नौकरी की और साथ-साथ लेखन भी चलता रहा ।

13.2.2 संघर्षपूर्ण जीवनक्रम

नरेश मेहता ने जो जीवन जिया, वह अनेक प्रकार के संघर्षो, संकटों और अभावों से घिरा हुआ था । इस प्रकार का जीवन जिस रचनाकार का रहा हो, उसके व्यक्तित्व की रूपरेखा स्वत: ही निर्मित होती जाती है । सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि नरेश मेहता ने अभावों में काफी समय बिताया, किन्तु अभावों में रहते हुए भी उन्होंने कभी इस बात की चिन्ता नहीं की कि वे अभावग्रस्त हैं । उन्होंने अर्थाभाव को ही एक प्रकार से भाव की भाँति ग्रहण किया । परिणामस्वरूप उनका व्यक्तित्व दृढ़ तो होता ही गया, साथ ही साथ साधारण होते हुए भी असाधारण होता गया । नरेश जी के जीवन में धन का अभाव तो था ही, स्नेह का अभाव भी था । इसके साथ ही माता-पिता से मिली उपेक्षा और पीड़ा का भाव भी था, जिसने उनके व्यक्तित्व को धीरे-धीरे निर्भीक भी बनाया और साहसी भी । जिन परिस्थितियों में नरेश मेहता का प्रारम्भिक विकास हुआ, वे अभावग्रस्त तो थीं ही, विविधता लिए हुए भी थीं । ये स्थितियाँ नरेश जैसे व्यक्तित्व के लिए तीखी भी थीं । इन्हीं परिस्थितियों में नरेश मेहता का व्यक्तित्व क्रमश: विराट बनता चला गया । ठीक है, जिस व्यक्ति ने मातृ-सुख नहीं भोगा, पिता द्वारा दी गयी उपेक्षा को सहन किया, अपनी सर्वाधिक स्नेहमयी बहन को खोकर जो वेदना सही, फिर भी वह निरन्तर आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील रहा, वह व्यक्तित्व मामूली नहीं हो सकता है । इसीलिए नरेश मेहता अपनी साधारणता में भी क्रमश: असाधारण बनते चले गये । अभाव इतने अधिक थे कि स्वाभिमानी नरेश अपने अभावों की पूर्ति के लिए किसी से भी कुछ भी माँगने को तैयार नहीं होते थे । रामकमल राय के प्रति उन्होंने जो कहा, वह उनके अभावग्रस्त जीवन संघर्षपूर्ण जीवनक्रम और व्यक्तित्व की ओर संकेत करता है । कहने का अभिप्राय यह है कि नरेश मेहता का जीवन संघर्षपूर्ण होने के साथ-साथ अभावों से भी परिपूर्ण रहा । यह एक कटु सत्य है कि जो व्यक्ति अभावों और कष्टों में जीवन जीता है, वह अपने व्यक्तित्व को संकल्पनिष्ठ, कर्मनिष्ठ और विशिष्ट बनाता हुआ सहज से विशिष्ट की ओर बढ़ता जाता है । कहने की आवश्यकता नहीं कि नरेश मेहता का व्यक्तित्व ऐसा ही था ।

13.2.3 व्यक्तित्व की रेखाएँ

नरेश मेहता के व्यक्तित्व को हम उनकी पारिवारिक स्थितियों से प्राप्त संस्कारों से निर्मित और परिवेश जनित प्रभावों से निर्मित व्यक्तित्व कह सकते हैं । वास्तव में उनका व्यक्तित्व कृतियों के माध्यम से स्पष्ट होता है, क्योंकि वे एक संवेदनशील कवि हैं और उनकी सर्जना स्पष्टत: उनके व्यक्तित्व को रेखांकित करती है । नरेश मेहता के व्यक्तित्व की रेखाओं को निम्नांकित रूप में अभिव्यक्ति दी जा सकती हैं:-

13.2.3.1 असाधारणता

बाहर से साधारण दिखाई देने वाला नरेश जी का व्यक्तित्व अत्यन्त असाधारण था । इसके कई कारण हैं । पहला कारण तो कवि नरेश का अपना स्वभाव रहा है । वे अपने स्वभाववश सांसारिकता से यथासम्भव अपने को अलग करते हुए काव्य-साधना करते रहे हैं । दूसरे, नरेश मेहता शनै: शनै: अपनी सर्जना को उस परिवेश से जोड़ते रहे हैं जिससे जुडने की कल्पना दूसरे कवियों के मन में नहीं रही । विराट से जुड़ने के क्रम में उनकी अपनी रुचि, अपने संस्कार प्रमुख रहे हैं । प्रकृतिपरक कविताओं के द्वारा नरेश मेहता ने संस्कृति की खोज की है और नयी शिल्प-योजना के द्वारा उन्होंने संध्या, दिवा, रात्रि, मेघ, बसन्त तथा उषा आदि का चित्रण: किया है । उनकी उषस् सम्बन्धी कविताएँ प्रकृति के माध्यम से एक अलग व्यक्तित्व प्रस्तुत करती हैं । उषस् कविता में प्राची के दिक्पाल इन्द्र द्वारा सोने का आलोक छिटकाया गया है । इस अवसर पर विहग-शिशु रूपी गन्धर्वो के मुख से मधु श्लोक फूटते हैं तथा धरित्री अनेक मन्त्रों से उषा के रथ का आह्वान करती है । भिक्षु-भिक्षुणी, मोमबत्तियाँ, शिलालेख, उत्सव, सामगान व वैदिक वातावरण की शब्दावली से नरेश मेहता ने अनेक सांस्कृतिक बिम्बों की सृष्टि की है । ये सारे प्रतीक देश की प्राचीन संस्कृति से जुड़े हैं । नरेश मेहता मानव के उन्नयन के उद्गाता तथा मानववादी कवि हैं । उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में वैयक्तिक संदर्भ देखे जा सकते है । कवि की अपनी पृथ्वी, परिस्थिति, स्थान या पुरजन तक ही सीमित नहीं, उसमें पीड़ा को भी स्थान मिला है । सामान्यत: पीड़ा जीवन को निष्क्रियता से जोड़ती है, किन्तु पीड़ा सब कुछ सहकर कुछ कर गुजरने की भावना रखती है । नरेश जी अपनी पतझर की संध्या को उत्सव बनाने की परिस्थितियाँ आसानी से प्राप्त नहीं करते । उन्होंने लिखा है- "क्योंकि मैं इसे उत्सव नहीं कह सकता, मेरे पास एक उदास संध्या थी, लेकिन किसी के पास उत्सव नहीं था । यह संकल्प और परिस्थिति का द्वंद है । विकास की दृष्टि से द्वन्द्व विलीन हो जाता है क्योंकि कवि की अनुभूति विराट का साक्षात्कार है । धीरे- धीरे परिस्थितियों का बंधन टूट जाता है और पूरे संसार में एक ही संगीत सुनाई देने लगता है ।' कवि का अन्त: और बाहय व्यक्तित्व एक विरोधाभास में जीने वाला व्यक्तित्व है जो एकान्त में कोलाहल और कोलाहल में निर्जनता की कामना करता है । 'तुम मेरा मौन हो' में कवि ने अभिव्यक्ति को महत्व दिया है, मौन इसका आधार है । यहाँ कवि का मत है कि जो अभिव्यक्त हो गया, वह समाप्त हो गया । कवि मौन रहकर भी सब कुछ व्यक्त करता है । इस प्रकार कवि नरेश मेहता अपनी आत्मसत्ता को उस विराट सत्ता की अनुभूति में लीन कर रहे हैं जहाँ सब मंगलमय, गरिमामय एवं विराटमय है।

13.2.3.2 जिजीविषा

नरेश मेहता संघर्षक्रान्त जीवन से धीरे-धीरे हताश होने लगे और यह लगने लगा कि उनके भाग्य में कुछ नहीं है । वे तो एक गहरा संकल्प लेकर ही अपने जीवन को आगे बढ़ा सकते हैं । इस स्थिति में भी उन्होंने अपने आन्तरिक उल्लास को कभी भी स्पष्ट नहीं होने दिया । वे साहित्यकारों से मिलते थे, तो पूरे उल्लास के साथ । निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती आदि से उनका परिचय बेहद आत्मीयतापूर्ण रहा । दिल्ली में मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मनोहर श्याम जोशी, सुरेश अवस्थी और नेमिचन्द्र जैन से भी उनकी पर्याप्त घनिष्ठता रही और इन सबसे मिलते हुए उन्होंने कभी भी अपनी

हताशा को व्यक्त नहीं किया । उनके समझ सदैव वे आन्तरिक उल्लास लेकर मिलते रहे । उनके आन्तरिक उल्लास प्रत्येक क्षण उनके साथ बना रहता था । स्पष्ट ही इस उल्लास को हम उनकी कविताओं में भी देख सकते हैं । नरेश मेहता के व्यक्तित्व में निश्छलता की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी । जो उनके मन में चल रहा होता था, वे उसे बिना किसी लाग-लपेट के अपने आत्मीय व्यक्तियों के समक्ष व्यक्त कर देते थे । यह भी नहीं सोचते थे कि उनके द्वारा कही जाने वाली बातों का दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ेगा । किसी भी बात को छिपाकर रखना वे नहीं जानते थे । महिमा मेहता ने एक उदाहरण दिया है कि उनकी शादी के एक-दो दिन बाद ही वे दिल्ली में किसी एम्बेसी पार्टी में गये । वहाँ उन्होंने खूब मौज-मस्ती की, अंग्रेजी शराब का सुरूर अनुभव करते हुए जब लौटे, तब भाभी को हँस-हँसकर पार्टी के किस्से सुना रहे थे । इन्हें इस बात कतई चिन्ता नहीं थी कि इनकी नव विवाहिता पत्नी भी सारे किस्से सुन रही है । मैंने उस दिन पार्टी की सारी हँसी-मजाक सब कुछ ध्यान से सुने थे और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची थी कि बावजूद इन सारी बातों के इस व्यक्ति में विवेक है, संयम है और निश्छलता का अतिरेक । अगर निश्छलता न होती तो कुछ काट-छाँटकर बात को प्रस्तुत किया जाता ।

13.2.3.3 अन्तर्मुखी और भावुक

नरेश जी अन्तर्मुखी और भावुक मनस्थिति के व्यक्ति थे । महिमा जी ने अपनी कृति उत्सव-पुरुष श्री नरेश मेहता में उनकी भावुकता का पुरजोर शब्दों में जिक्र किया है । उन्होंने कई उदाहरण भी दिये हैं और लिखा है कि "नरेश जी को बचपन में आनन्द, रस, ऊर्जा-संरक्षण तथा पारिवारिकता जो कुछ भी मिली, इन्हीं चाचा-चाची के सान्निध्य में मिली और जिसका श्रेय वे हमेशा दोनों भाभियों को देते रहे । बाद के दिनों में शाजापुर आने-जाने पर मुझे एक बात समझ में आयी कि रस वहाँ नहीं था, इनमें था, इनकी स्थिति उस मधुमक्खी जैसी थी जो अपनी शक्ति और सामर्थ्य से फूल से रस लेकर इतना मीठा शहद बना लेती है । '

13.2.3.4 निर्भीकमना

नरेश मेहता निर्भीक स्वभाव के थे और आत्मस्वातंत्र्य को बराबर बनाये रखते थे । वे विचारक होने के कारण भी निर्भीक थे और यही वैचारिकता उनके व्यक्तित्व में स्वातंत्र्य बोध को निरन्तर विकसित करती रही । वे तो यह मानकर चलते थे कि प्रत्येक व्यक्ति में सब कुछ बनने की सम्भावना होती है । नरेश मेहता निर्भीक व्यक्तित्व के धनी थे । वे मानते थे कि निर्भीकता को उद्दण्डता नहीं कहा जा सकता है, वह आत्मविश्वास से जन्म लेती है । यही कारण था कि उनके व्यक्तित्व में गहरा आत्मविश्वास था, स्पष्टवादिता थी, निर्भीकता थी और वे अपनी ही शर्तो पर जीने में विश्वास रखते थे ।

13.2.3.5 संयम, धैर्य और दृढ़ता

जब व्यक्ति निर्भीक हो जाता है, तब उसके व्यक्तित्व में संयम, विवेक, धैर्य और दृढता तथा सहन करने की शक्ति भी बहुत आ जाती है । महिमा मेहता का यह कथन नरेश मेहता के व्यक्तित्व को उद्घाटित करता है- "निर्भयता के अतिरिक्त नरेश मेहता के चरित्र की विशेषता थी-

उनका संयम, विवेक, धैर्य और प्रतीक्षा । संयम और विवेक उनके लेखन में भी देखा जा सकता है और जीवन में भी विवेक ने तो उनके जीवन में कई बार गिरने से बचाया, नहीं तो जिन विषम परिस्थितियों का उन पर दबाव था, डूबने में कोई कसर बाकी नहीं थी । नरेश जी में संयम और धैर्य तो गजब का था । जब सोच लेते थे कि यह काम नहीं करना है या गलत समझौता नहीं करना है तो फिर चाहे जो कुछ हो जाये, नहीं ही करना है । बड़े से बड़े लालच भी इनके संयम को डिगाने में समर्थ नहीं हो पाता था । यह उनके व्यक्तित्व की उल्लेख्य विशेषता थी ।

13.2.3.6 आस्तिक और उत्सवप्रिय

नरेश मेहता के व्यक्तित्व की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वे आस्तिक थे और साथ ही साथ उत्सवप्रिय भी थे । सुबह नहाकर गायत्री मंत्र का जाप और सोने से पहले ध्यान उनका नित्य नियम था । साल में तीन बार व्रत रखते थे- जन्माष्टमी, शिवरात्रि और दुर्गाष्टमी । नवरात्रि में नौ दिन दुर्गा सप्तशती का पाठ करते हुए हवन करते थे । पूर्णाहुति के दिन पड़ौस के ज्योतिषी के यहाँ होने वाली पूर्णाहुति के हवन में नंगे बदन, धोती पहनकर घण्टों बैठे रहते और हवन में भाग लेते । श्री महिमा मेहता ने उन्हें उत्सव पुरुष कहा है । उनकी कृति उत्सव भी इसी विशेषण की ओर इशारा करती है । सभी त्यौहारों को वे बड़े उत्साह से मनाते थे । जन्माष्टमी की झाँकी सजाना, दीवाली पर पटाखे चलाना, दशहरे पर इलाहाबाद में लाखों लोगों की भीड़ को देखकर खुश होना और वहीं खड़े होकर सारे दृष्य को निहारना उनकी उत्सवप्रियत का ही प्रमाण था । प्रकृति भी उन्हें एक उत्सव जैसी ही लगती थी । उनकी कविताएँ इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करती है कि उन्हें सब कुछ उत्सवित होता प्रतीत होता था ।

13.2.3.7 भारतीय संस्कृति के पोषक

नरेश मेहता का साहित्य इस बात को प्रमाणित करता है कि वे भारतीय संस्कृति के उन्नायक और पोषक के रूप में सदैव स्मरण किये जायेंगे । उन्हें जो संस्कार प्राप्त हुए थे और जो वैष्णवता प्राप्त हुई थी, उससे उनका व्यक्तित्व बना और इसी कारण उनका रुझान सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति निरन्तर बढ़ता गया । वैष्णव होने के कारण ही पूजा, व्रत, उपवास और न पूर्ण ब्राहमण के संस्कार उनके व्यक्तित्व में देखने को मिलते हैं । नरेश जी ने अपने जीवन में तपश्चर्या को पूरा महत्व दिया।

13.2.3.8 मानवीय शक्ति में विश्वास

नरेश मेहता मानव और उसकी शक्ति में विश्वास करने वाले व्यक्ति थे । वे मनुष्य को सामान्य न मानकर सृष्टि की सर्वोत्तम रचना मानते थे । प्रकृति का आमन्त्रण वे स्वीकार करते थे और उस आमन्त्रण में उन्हे एक उदात्त कल्याणकारी संसार दृष्टिगोचर होता था । वे यह मानते थे कि सृष्टि के केन्द्र में मनुष्य है । अत: मनुष्य को पहचानना, उसे श्रेष्ठ मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करना अत्यन्त आवश्यक है । वास्तव में नरेश मेहता की निष्ठा और उनकी भावगत दृष्टि उच्चतम धरातल पर पहुँचकर बार-बार मानव-प्रेम और मनुष्य की महत्ता को व्यक्त करने में लगी रहती थी । वे यह मानकर चलते थे कि सृष्टि में सर्वत्र मनुष्य ही महत्वपूर्ण है, मनुष्य को सर्वोपरि मानते

हुए वे धीरे-धीरे मानवता के पक्षधर हो गये थे । मानवतावादी इस चेतना को उनके काव्य में स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है ।

13.3 कृतित्व परिचय

नरेश मेहता द्वारा रचित साहित्य हमारे समक्ष कविता, प्रबन्धकाव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी, एकांकी और विचारात्मक रूपों में उपलब्ध है । इनकी साहित्य-सर्जना इस प्रकार है- दूसरा सप्तक में संकलित कविताएँ वनपाखी सुनो, बोलने दो चीड़ को, मेरा समर्पित एकान्त, उत्सवा, तुम मेरा मौन हो, अरण्या, आखिर समुद्र से तात्पर्य, देखना एक दिन, पिछले दिनों नंगे पैरों, संशय की एक रात, महाप्रस्थान, प्रवाद पर्व, शबरी, प्रार्थना-पुरुष, प्रदक्षिणा अपने समय की । इनके उपन्यास हैं- डूबते मस्तूल, यह पथ बंधु था, धूमकेतु एक श्रुति, नदी यषस्वी है, दो एकान्त, प्रथम फागुन, पुन: एक युधिष्ठिर और उत्तरकथा, जलसागर, तथापि, एक समर्पित महिला और बन्ध छवि । 'सुबह के घण्टे' और 'खण्डित यात्राएँ' इनके चर्चित नाटक हैं तथा 'सनोवरव के फूल' और 'पिछली रात की बर्फ' एकांकी हैं । वैचारिक निबन्धों के रूप में लिखित कृति 'काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व' है । इसके साथ ही इन्होंने 'वाग्देवी' और 'गाँधी गाथा' जैसी कृतियों का सम्पादन भी किया है । उनकी काव्य-कृतियों का परिचयात्मक विवरण यहाँ दिया जा रहा है-

13.3.1 दूसरे सप्तक में संकलित कविताएँ

नरेश मेहता दूसरे सप्तक के पाँचवें कवि हैं । इस सप्तक में श्री मेहता की दस कविताएँ संकलित हैं, जिनमें 'चाहता मन', 'किरण धेनुएँ', 'अश्व की वल्गा', 'उषस् 1' 'उषस् 4 ', किरणमयी उषस्', जनगरवा चरैवेती, समय देवता आदि के नाम उल्लेखनीय है । श्री मेहता की पहली कविता में प्रयोगवादियों का वास्तविक जीवन साम्य भी है । एक ओर तो इस कविता में प्रकृति का आलंकारिक एवं मानवीकृत रूप है तो दूसरी ओर प्रेम का सहज, निश्छल और विश्वसनीय रूप भी अभिव्यक्ति पा सका है । 'किरण धेनुएँ' प्रातःकाल का सुन्दर रूपक है । 'उषस्' कविता में कवि ने लोकजीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हुए ग्राम्य जीवन के चित्र को भी साकार कर दिया है । उषस् 1 से उषस् 4 तथा ' उषस् अश्व की वल्गा' प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में अपना रचतन्त्र स्थान रखती हैं । इन कविताओं में लोकजीवन से प्राप्त बिम्बों के सहारे प्रकृति भावपूर्ण चित्रण किया गया है । 'जनगरवा चरैवेती' में मनुष्य को गतिशील रहने का संदेश दिया गया है । दूसरा सप्तक में संकलित 'समय देवता' कविता नरेश मेहता की सबसे लम्बी कविता है । समय देवता में पृथ्वी के विविध देशों की प्रकृति-छवियों का मार्मिक अंकन हुआ है । यहाँ समर्थ, तटस्थ और सही द्रष्टा के रूप में कवि ने समय का परिचय दिया है । श्री मेहता की भाषा नवीनता और क्लासीकल तत्वों के मेल से बनी है । इसमें एक ओर कवि द्वारा प्रयुक्त संस्कृत शब्दावली के दर्शन होते हैं तो दूसरी ओर व्यावहारिक बोलचाल के शब्द भी हैं, वे भावाभिव्यक्ति के लिए नये शब्दों को गढ़ने की भी अद्भुत क्षमता रखते है ।

13.3.2 वनपाखी सुनो

नरेश मेहता का प्रथम प्रकाशित काव्य संग्रह 'वनपंखी सुनो' है । इसका प्रकाशन सन् 1957 में हुआ । इस स्वतन्त्र काव्य-संकलन में 27 कविताओं को स्थान प्राप्त हुआ है, जो प्रकृतिप्रधान अधिक हैं । प्रकृति के विविध रूप अपनी विभिन्न छवियों के साथ कवि की इस संग्रह की कविताओं में देखे जा सकते है । कुछेक कविताओं में प्रकृति के साथ कवि ने अपना तादात्म्य भी स्थापित किया है और इसी क्रम में अपनी रोमानी भावना को भी अभिव्यक्ति दे दी है । इस संग्रह में 'प्रार्थना' शीर्षक से दो कविताएँ संकलित हैं । पहली प्रार्थना में कवि अपने मन में पीड़ा का वरण करता दिखाई देता है और लगता है जैसे वह पीड़ा को सहने के लिए प्रार्थना कर रहा हो । दूसरी कविता में नरेश जी का जनवादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है । प्रकृति-सौंदर्य की दृष्टि से 'मालवी फागुन', 'मेघ पाहुन द्वारे', 'पीले फूल कन्हेर के' और 'मेघ से पहले' जैसी कविताओं को विशेष स्थान प्राप्त है । यहाँ प्रकृति का उपयोग अलंकरण के रूप में किया गया है । प्रकृति के संदर्भो के बीच प्रेमजनित पीड़ा और उससे सम्बन्धित पराजय भाव की विवृत्ति भी कतिपय कविताओं में देखने को मिलती है । ऐसी ही प्रेमजनित वासना का आभास 'ज्वार गया जलयान गये' कविता में भी देखने को मिलता है । आधुनिक जीवन की विषमताएँ और असंगतियाँ जिनसे आधुनिक जनमानस त्रस्त और संतप्त है, कवि के मानस को भी उद्वेलित करती हैं । कवि ने नूतन उपमानों के सहारे वर्षा-भीगे शहर का सूक्ष्म वर्णन किया है । साँझ के झुरमुट में मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय घरों से उठते हुए धुएँ के गुबारों और तरकारियों की गंध पूरे दृश्य को साकार कर देती है । भाषिक धरातल पर जहाँ कवि तत्सम शब्दावली का प्रयोग करता है, वहीं उस पर बंगला का प्रभाव भी स्पष्ट है, 'पुन: भिक्षु' कविता इसका प्रमाण है ।

13.3.3 बोलने दो चीड़ को

'बोलने दो चीड़ को' नरेश मेहता की कविताओं का 1961 में प्रकाशित काव्य-संग्रह है । इसमें भी 27 कविताओं को स्थान प्राप्त हुआ है । इसमें प्रकृति, सौंदर्य, शब्द-शिल्प और स्वस्थ सामाजिकता की ओर भी कवि का इशारा गया है । कहीं-कहीं व्यंग्य भी देखने को मिलते हैं । 'चाहता मन', 'कम लवन', 'बोलने दो चीड़ को, 'एक क्षमा याचना', दिनान्त की राजभेंट', 'रक्त हस्ताक्षर' और 'अनुनय' आदि कविताएँ नयी कविता की श्रेष्ठ कविताऐं हैं । इस संग्रह में भाषा का सौंदर्य अपनी बंकिम छवियों के साथ उपस्थित है । वास्तव में नरेश मेहता की ये कविताएँ आधुनिक जीवन की विसंगतियों को व्यक्त करते हुए भी एक पवित्र धूपबत्ती की गंध को सर्वत्र वितरित करती हैं । 'बोलने दो चीड़ को' संग्रह में प्रकृति-सौंदर्य, हर्ष, उल्लास और रंगीनी के चित्र प्रस्तुत करने के साथ-साथ नरेश जी ने मनुष्य की विवशता, उसकी निराशा, उसकी आस्था और उसके संकल्प को भी यत्र-तत्र संकेतित किया है । इस प्रकार की आस्था संग्रह की 'किन्तु मैं नहीं लडूंगा ही' कविता में देखी जा सकती है । 'संदर्भ भटकी यात्राएँ' शीर्षक कविता में प्रकृति का सहारा लेकर नरेश जी ने भटकती और विवश जिन्दगी का चित्र प्रस्तुत किया है । जिन्दगी का भटकाव मनुष्य को पूरी तरह अकेला कर जाता है । उस स्थिति में वह नहीं सोच पाता कि क्या करे, क्या सोचे और जीवन की दिशा को किस प्रकार निश्चित करे । इस स्थिति को नरेश मेहता ने 'ज्वार भाटे द्वारा किनारे पर बिखरी हुई सीपियों' के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है । इस संग्रह में कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं जो प्रगतिशील चेतना की भूमि पर

लिखी गयी हैं । इनमें आज के वैषम्य का विरोध है और 'यदि मैं मेयर होता' तथा 'बूढ़े मसूढ़ों का जुलूस' जैसी कविताओं में मानवीय विवशता और व्यंग्य को देखा जा सकता है । इन कविताओं में जो व्यंग्यबोध उभरा है, वह जीवन की विषमताओं और विडम्बनाओं से जुड़ा हुआ है ।

13.3.4 मेरा समर्पित एकान्त

नरेश मेहता की काव्य-यात्रा के तीसरे सोपान पर उनकी कृति 'मेरा समर्पित एकान्त' को स्थान प्राप्त है । इसमें संगृहीत कविताएँ 1961 और 1962 से भी सम्बद्ध हैं और संग्रह के प्रथम खण्ड में 19 और द्वितीय खण्ड में 'समय देवता' जैसी लम्बी कविता को स्थान प्राप्त हुआ है । यहाँ कवि की सांस्कृतिक चेतना अभिव्यक्त हुई है । कविताओं का परिवेश न केवल भक्ति भावपूर्ण है, अपितु आध्यात्मिक भी है । इसलिए यह काव्य-संग्रह कवि की निजता को, उसके अकेलेपन के बोध के साथ व्यक्त करता हुआ भी समष्टि चेतना से जुड़ा हुआ है और इस चेतना में कवि का सांस्कृतिक बोध पूरी भक्ति भावना और आध्यात्मिकता के साथ क्रमश: आकार पाता गया है । इतिहास के दावेदार में साहित्य के क्षेत्र की उस राजनीति के विषय में कहा गया है जो अवसर का लाभ उठाकर आकाश में स्वयं का अस्तित्व रखना चाहते हैं । इसमें कवि ने नेपोलियन मुद्रा तथा विजयी सिकन्दर जैसे ऐतिहासिक उपनाम रखे हैं । विजयी सिकन्दर में गर्व संतुष्टि का भाव है और नेपोलियन मुद्रा में विजय का भाव, यानि कि हम आज झूठी शान-शौकत पर गर्व और संतोष का अनुभव कर प्रसन्न मन से जीवन बिता रहे हैं ।इस कविता में कई प्राकृतिक अप्रस्तुत भी कवि ने लिए हैं, जैसे दूब तथा फूल आदि । 'प्रार्थना' में वरेण्य पिता से पथ में 'विनय दूर्वा' बनने का वर्चस्व मांगना, 'एक कथा में पतंग का हठात् वज्र बनकर जागरण बुझाना दीप को प्रभुमय करना तथा औ तप: पार में दुख को व्यक्ति से बड़ मानना और व्यक्ति को प्रभु के समक्ष खड़ा करना व्यक्ति के महत्व को स्पष्ट करता है । 'मेरा समर्पित एकान्त' काव्य संग्रह में कवि ने इतिहास का वर्णन किया है, मानवीय दुख का, एकान्त का तथा मानवीय जीवन की अनुभूतियों का वर्णन किया है, लेकिन वह प्रकृति से मुँह नहीं मोड़ सका है । एक संध्या वर्ष में कवि ने प्रकृति के माध्यम से मानव-जीवन की प्रतीक्षा के बोध का वर्णन किया है जिसमें शब्दों का ऐसा प्रवाह है जो आत्मा को सरसता प्रदान करते हैं । इसमें कवि का भावबोध और शिल्पबोध दोनों ही कवि की स्वस्थ प्रयोगशीलता को स्पष्ट करते हैं । यहाँ चित्रित समस्याओं में -प्रमुख हैं- मानव की स्थिति और नियति की समस्या, लघु और जनसाधारण की समस्या तथा उपेक्षित नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व की समस्या आदि ।.

13.3.5 उत्सवा

नरेश मेहता की काव्य-यात्रा में उत्सवा का विशेष महत्व है । 'उत्सवा' के अन्तर्गत नरेश मेहता ने प्रकृति से अद्वैत भाव स्थापित कर लिया है । विभिन्न अवयवों- वृक्ष, वनस्पति, दूर्वादल, झरना तथा ओस-बिन्दु आदि के द्वारा किया है । सम्पूर्ण कृति में कवि सर्वत्र मनुष्य और सृष्टि में मंगल की कामना करता है । 'धूप कृष्णा' कविता के अन्तर्गत प्रकृति का वर्णन यों तो आलम्बन रूप में किया गया है, किन्तु यह वर्णन भी सामान्य न होकर विशिष्ट, उदात्त और नये बोध से जोड़ने वाला है । उत्सवा कृति के अन्तर्गत पृथ्वी, आकाश, वृक्ष, पुष्प, धूप, उत्सव, सूर्योदय, नक्षत्र आदि

सभी के माध्यम से मंगल कामना की गयी है । 'वृक्षबोध' शीर्षक कवित में नरेश जी प्रकृति के बहाने यह संदेश देना चाहते हैं कि प्रकृति के अनन्त समर्पण और निवेदन का भाव अगर मनुष्य में आ जाये तो इस पृथ्वी का जीवन सार्थक हो सकता है । 'उत्सवा' काव्य संग्रह में कवि का मानसिक धरातल एक ऐसे वृक्ष की भाँति सामने आता है । उत्सवा, की इन कविताओं की तुलना शेषेन्द्र शर्मा ने मधुछन्दस्, वाल्मीकि तथा कालिदास से की है । अत: उत्सवा की कविताएँ कवि की वैष्णवी दृष्टि का परिणाम है । एक ऐसी वैष्णवी दृष्टि, जो वैदिक और उपनिशदीय प्रकृति को नये बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से काव्यात्मक साक्षात्कार कराती हैं ।

13.3.6 तुम मेरा मौन हो

प्रस्तुत संग्रह में कवि नरेश मेहता की 47 कविताओं को स्थान प्राप्त हुआ है । इन कविताओं में कवि की उत्सवधर्मी चेतना तो व्यक्त हुई ही है, साथ ही साथ काव्य-चेतना का एक नया आयाम भी खुलता दिखाई देता है । इन कविताओं में कवि को प्रिया की उपस्थिति सुगन्धि की भाँति महसूस होती है । परम्परित मधुर भाव से सराबोर 'तुम मेरा मौन हो' की कविताएँ गीत गोविन्दम् की मसृणता, 'श्रीमद्भागवत' की भागवती संवेदना एवं वैष्णव भाव की सम्पूर्ण रागात्मकता को संकेतित, सम्प्रेषित करती हैं । जहाँ प्रिया का बैठना ही गुलाल एवं देखना ही वाद्यता की पराकाष्ठा है । ये स्मरण व मुद्राओं की कविताएँ है । 'धूप की भाषा', 'भंगिमा' ऐसी ही कविताएँ हैं । 'नेत्रवांषी' असीम संगीतात्मकता को स्वरित करती है । 'नेत्रभाषा' वाले फूलों को देखना एक विशिष्ट प्रसंग बन जाता है । 'चला प्रिय' वानस्पतिकता के एकान्त को निवेदित अस्तित्व का गायन है । जहाँ व्यक्ति के विज्ञापन बनने का विरोध किया गया है ।

13.3.7 अरण्या

'अरण्या' 33 कविताओं का संग्रह है । इसका प्रकाशन सन् 1985 में हुआ। संग्रह की कविताओं में एक प्रकार का आरण्यक भाव है । निजी विराटता की खोज से उद्भूत ये कविताएँ मनुष्य को कविता के माध्यम से मन्त्र देवता बना लेना चाहती हैं । ये कविताएँ मनुष्य की पहचान की कविताएँ हैं । इनमें अजनबीपन और अकेलापन नहीं है, अरण्य से सब कुछ समेटकर कवि वापस धरती पर आता है, क्योंकि पृथ्वी का उत्सव और मनुष्य की कविता बनना ही आधुनिक युग की सबसे बड़ी घटना है । धूप, हवाएँ, अग्नियाँ, आकाश, जल कविताओं के मुख्य केन्द्र हैं । 'वृक्षत्व, 'काव्य-कपिला', 'मातृदेवी', 'पुराष यात्रा' संग्रह की विशेष कविताओं में गिनी जा सकती हैं । 'पुरुष यात्रा' कविता में प्रारम्भ से अन्त तक निःसर्ग की कृपाओं का चेतन भाषा में सम्बोधन है । 'भूतिका', 'महायोनि', 'मातृदेवी', 'पार्थिव भी पृथिवी भी' भी स्पष्ट रूप से धरती को सम्बोधित की गयी कविताएँ हैं । 'कालवृक्ष' शीर्षक कविता में पृथ्वी का उत्सव व्यंजित हुआ है । जब शब्द विराट हो जाता है, तब उसका अर्थ भी विराट होकर कविता को उच्च शिखरों की ओर ले जाता है । इस संग्रह के माध्यम से कवि ने यह प्रतिपादित किया है कि प्रकृति बोध मनुष्य को विराटता से भर देता है ।

13.3.8 आखिर समुद्र से तात्पर्य

प्रस्तुत संग्रह में नरेश जी की 51 कविताओं को स्थान प्राप्त हुआ है । इस संग्रह की कविताएँ कवि मानस के रचनात्मक विकास को व्यक्त करती चलती हैं । इन कविताओं में व्यक्त अनुभूति मानव-जीवन की सहज क्रियाओं और मस्तिष्क की स्वाभाविक प्रक्रियाओं से जुड़ी हुई हैं । प्रकृति पर जो कविताएँ लिखी गयी हैं, उनमें मानव की मन: स्थिति और प्रकृति के साथ मानव के सम्बन्ध को निरूपित किया गया है । प्रकृति की उदात्तता भी कविताओं में व्यक्त हुई है । 'वृक्ष भी', 'आकाश भी', 'चित्र भी', 'कविता भी' कुछ ऐसी ही रचनाएँ है जिनमें प्रकृति की उदात्तता लक्षित की जा सकती है । कुछ कविताओं में आत्मनिवेदन और विनय का भाव है । 'कृपा करो' एक ऐसी ही कविता है । 'वृक्षत्व', 'प्रयोजन', 'चन्द्रोदय', 'भ्रम' आदि ऐसी कविताएँ हैं जो प्रकृति से सम्बन्धित तो हैं, पर साथ ही साथ मानवीय सम्बन्धों की जीवन्तता, उत्साही जीवन की उमंगों, आत्मीयता और मानव-मन की सशंकित स्थितियों को व्यक्त करती हैं । 'केवल वही' कविता एक ऐसी कविता है जिसमें वैष्णवता की तथा रत्न में आत्मराम बोध का प्रस्तुतीकरण है । 'आधी रात' में प्रकृति के माध्यम से मानवीय पीड़ा को व्यक्त किया गया है । सामाजिक बोध को प्रमुख रूप से 'तपस्विता' कविता में देखा जा सकता हैं । स्व से प्रारम्भ होकर व्यापक सामाजिकता पर समाप्त होने वाली इस काव्य-यात्रा का केन्द्र मनुष्य है । शक्ति के रूप में दह व्यक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण कविता है । मानवीय मूल्यों का विघटन एवं व्यंग्य लिए हुए भी कतिपय कविताओं को हम संग्रह में देख सकते हैं । 'गुमशुदा' और 'अखण्ड रामायण' में मानवीय सम्बन्धों का थोथापन एवं कथ्य व कार्य का अन्तर्विरोध व्यंग्यात्मक शिल्प में व्यक्त हुआ है । 'अन्ततः', 'कृतज्ञता', 'अर्थ' और 'क्या होगा' व 'रोज शाम' जैसी कविताओं में मानव का स्वभाव, समाज की व्यवस्था का अव्यवस्थाओं पर व्यंग्य तथा आडम्बरपूर्ण जीवन पर क्रोध करते हुए संस्कृति की विषिष्टता का अहसास कराया गया है । 'शक्ति के रूप', 'परिभाषा', 'भोगार्चन, 'सशंकित', 'स्वभाव' और 'पताका' छोटी कविताएँ हैं । सागर से सम्बन्धित कविताओं में 'सागर-तट', 'चिरंजीविता', 'बुद्ध', 'सागर-भाषा' और 'आखिर समुद्र से तात्पर्य' प्रमुख हैं । इन कविताओं में कवि नरेश मेहता ने सागर के विविध रूपों को अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

13.3.9 पिछले दिनों नंगे पैरों

सन् 1989 में प्रकाशित 'पिछले दिनों नंगे पैरों' काव्य संग्रह की कविताएँ चार खण्डों में विभक्त हैं । इन चार खण्डों में क्रमश: 11,18,2 व एक कविताएँ संकलित हैं । इस प्रकार इसमें कुल 32 कविताओं को स्थान प्राप्त हुआ है । प्रथम खण्ड की कविताओं में कवि प्रकृति के प्रति रागात्मक सम्बन्ध लेकर सामने आया है । द्वितीय खण्ड मे कवि मध्यकालीन इतिहास की अमानवीय पर नंगे पैरों यात्रा करता हुआ पाठक को भी उसकी यात्रा कराने के लिए लालायित दिखाई देता है । कवि का दृष्टिकोण ऐतिहासिकता में समकालीनता का समावेश भी कराने में सफल हुआ है । तीसरा खण्ड देश और काल से असम्पश्क्त एक उदात्त अवधूत व्यक्तित्व की निरपेक्ष सत्ता है । चतुर्थ खण्ड में कवि की सृजन-प्रतिभा का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है । कृति के फ्लैप पर छपी ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं- "इस संग्रह में इतिहास-पुरुषों और शक्तियों को नहीं, बल्कि उस काल को अमानवीय ऐतिहासिकता

का विषय बनाया गया है जो हमारी आँखों के सामने से एक वृत्तचित्र की भाँति क्रमिक रूप से घटित होती हैं । '

13.3.10 देखना एक दिन

प्रस्तुत काव्य संग्रह मे 75 कविताएँ हैं । इस संग्रह में अधिकांश कविताएँ लघु कविताएँ है- 'चिड़िया', 'एक स्थिति', 'स्पर्श', 'माधुरी', 'भीगना धूप का', 'शाम', एक शब्द-चित्र', 'टिटहरी', 'अलगूँज़ा, 'धूप', 'समझ', 'आयाम' जैसी प्रकृतिपरक कविताएँ कहीं-कहीं नितान्त नवीन बिम्बों व प्रतीकों के माध्यम से प्राकृतिक वैभव के सरस चित्र प्रस्तुत करती हैं । 'हमारे बीच', 'पता नहीं', 'सम्भ्रम', 'अनुनय', 'विलयन ज्वार, 'आना', 'अन्तर', 'सम्बन्ध' कविताओं में कवि ने जनता व नेता के सम्बन्धों पर व्यंग्य किया है । 'नदी और भाषा' कविता में प्रकृति के व अभिव्यक्ति के सामरस्य को व्यक्त किया है । वही है वह, 'उस दिन', 'दाता' जैसी कविताएँ मूल्यों के महाभाव से समन्वित हैं । 'सुझाव', 'संज्ञा से सर्वनाम', 'किस किसको', 'अग्निबीज', 'मण्डेला के प्रति श्रद्धा सुमन है' तथा 'काली कविता' रंगभेद के विरूद्ध चल रहे संघर्ष के स्वर को सशक्त बनाती है । इस संग्रह में कविताएँ लघु आकार के अन्दर गहन भावानुभूति व्यक्त करती हैं ।

13.3.11 पुरुष

नरेश मेहता ने 'महाप्रस्थान' से कुछ समय पूर्व ब्रहमाण्ड पर काव्य लिखने की योजना बनाई थी, किन्तु वे पूरा नहीं लिख पाये । उनकी मृत्यु के पश्चात् सन् 2005 में 'पुरुष' (काव्य खण्ड) शीर्षक से उनकी ब्रहमाण्ड विषयक चिन्तना का काव्यमय रूप भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ । वास्तव में, यह काव्य ब्रहमाण्ड विषयक उनके चिन्तन और उससे जुड़ी हुई मनोभावनाओं का उद्घाटन करता है । नरेश जी ने मनुष्य को सृष्टि का नगण्य प्राणी न मानकर महत्तम प्राणी स्वीकार किया है । नरेश जी ने इस काव्य-खण्ड में अपनी दार्शनिक और औपनिशदिक् चिन्तना का निष्कर्ष प्रस्तुत किया है । प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध तथा ब्रह्म और जीव की स्थिति व ब्रहमाण्ड में मनुष्य की महत्ता को प्रतिपादित करने वाला यह काव्य उनके विशिष्ट चिन्तन का प्रतीक बनकर आया है ।

13.3.12 संशय की एक रात

नरेश मेहता ने 'संशय की एक रात' में राम को आदर्श और रामत्व वाले रूप से पूर्ण एक प्रश्नाकुल और विवेकी मानव के रूप में रूपायित किया है । इस खण्ड काव्य की समस्या युद्ध की समस्या है । इस कृति में रामायण के सेतु बन्ध के प्रसंग को आधार बनाया गया है । इस प्रकार नरेश मेहता ने एक पौराणिक आख्यान को लेकर समकालीन परिवेश में विकसित आधुनिक बोध को अभिव्यक्ति दी है । एक प्रश्नाकुल राजकुमार के रूप में राम के व्यक्तित्व को यहाँ नवीन रेखाओं से प्रस्तुत किया गया है और वे आधुनिक मानव की भाँति युद्ध, मानवता आदि के विषय में सोचते-विचारते हैं । वे स्वयं किसी निर्णय पर नहीं पहुँचते है । यही स्थिति आधुनिक मानव की है । आज के मनुष्य के पास प्रश्न तो अनन्त हैं, किन्तु उन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है । राम के माध्यम से कवि ने आधुनिक मानव की संशय ग्रसित चेतना को उजागर करने का प्रयास किया है

। यहाँ पर कवि नरेश मेहता ने राम-राज्य को आधार नहीं बनाया है, बल्कि लोकतंत्र को आधार बनाया है ।

13.3.13 महाप्रस्थान

नरेश मेहता द्वारा लिखित महाप्रस्थान सन् 1975 में प्रकाशित प्रबन्धकाव्य है । इसमें प्रमुखत: तीन बड़े सर्ग हैं- यात्रा पर्व, स्वाहा पर्व और स्वर्ग पर्व । प्रथम पर्व का आरम्भ हिमानी प्रकृति और उससे सम्बन्धित वातावरण से होता है । इस वातावरण को प्रस्तुत करने में कवि ने पूर्ण मनोयोग से काम लिया है । यह एक ऐसी स्थिति है, जहाँ पहुँचकर सामूहिकता वैयक्तिकता में परिणत हो जाती है । अन्तिम सर्ग में केवल धर्मराज युधिष्ठिर ही स्वान के साथ दिखाई देते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रबन्ध काव्य का समूचा कथ्य युद्ध के केन्द्र-बिन्दु पर अवस्थित है । राजनैतिक और धार्मिक सभी दृष्टियों से सार्थक प्रतीत होती है । इसका मूल महाभारतीय पुराख्यानक होते हुए भी वर्तमान परिवेश के संदर्भो से जुड़ा हुआ है । आज हम जिन समस्याओं को झेल रहे है, उनमें कुछ चिरन्तन समस्याएँ भी हैं और ऐसी समस्याओं के प्रति कवि की दृष्टि बड़ी सजग रही है । 'महाप्रस्थान' के माध्यम से नरेश मेहता ने जिन समस्याओं को उठाया है, उनमें विशेष रूप से युद्ध की समस्या, मानव-नियति की समस्या तथा राज्य-व्यवस्था की समस्या आदि हैं । कृति के अन्तर्गत रचनाकार ने यह प्रतिपादित भी किया है कि राजनीति विषकन्या की आत्मजा होती है, क्योंकि सत्ताधारी उदार हृदय हो ही नहीं सकते हैं । वह शड्यंत्रों और कुचक्रों द्वारा अपना आधिपत्य बनाये रखने के लिए निर्मम आचरण करते है ।

13.3.14 प्रवाद पर्व

नरेश मेहता का काव्य-संग्रह 'प्रवाद पर्व' सन् 1977 में प्रकाशित हुआ। सीता का निष्कासन इस कृति के केन्द्र में है । जब राम रावण का वध करके अयोध्या लौटते हैं, तब अयोध्या का एक धोबी सीता की चरित्र-मर्यादा पर उँगली उठाता है । शासक वर्ग इसे अनुचित मानता है, किन्तु राम की दृष्टि में यह उचित है । राम की यह मान्यता है कि लोकतंत्र में सभी को अपनी बात कहने का अधिकार है । बस, इसी बिन्दु पर नरेश मेहता ने 'प्रवाद पर्व' की रचना कर डाली है । प्रवाद पर्व पाँच सर्गो में विभक्त एक ऐसा प्रबन्धकाव्य हैं जिसमें कवि ने राजपुरुष, राज्य और सामान्य जन के निकट सम्बन्धों को स्पष्ट किया है । इसके अन्तर्गत नरेश मेहता ने अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर जोर दिया है । उनका प्रतिपादन यह है कि एक साधारण जन की अभिव्यक्ति को भी पूरा महत्व मिलना चाहिए । दूसरी बात है शासक की तटस्थ और अनासक्त मनःस्थिति ।

13.3.15 शबरी

नरेश मेहता द्वारा रचित यह काव्य सन् 1977 में प्रकाशित हुआ। इसमें पाँच छोटे-छोटे सर्ग हैं - त्रेता, पम्पासर, तपस्या, परीक्षा और दर्शन । शबरी की कथा त्रेतायुग की एक दीन-हीन नारी की आत्मिक एवं आध्यात्मिक संघर्ष की कथा है । वह साधना की परावस्था से ही राम का सान्निध्य प्राप्त करती है । नरेश मेहता ने शबरी के माध्यम से वर्गमुक्त होने की परम्परा को प्रतिपादित किया है । आज हम जिस समाज में रह रहे हैं, उसमें भी वर्ण व्यवस्था प्रधान है । वर्गमुक्त होने की हमारी

सबसे बड़ी समस्या है- सामाजिक वर्ण-व्यवस्था और वैयक्तिक कर्म-विधान में एकता की चेष्टा, किन्तु आज वर्ग-व्यवस्था वाली व्यवस्था को श्रम-विधान द्वारा निरन्तर सुलझाने की चेष्टा की जा रही है । शबरी अपनी निम्नवर्गीयता को कर्म-दृष्टि के द्वारा वैचारिक ऊर्ध्वता में परिणत करती है । समाज में किसी का व्यक्तिगत मत नहीं चलता है, अत: शबरी को अनेक कठिनाइयों को सामना करना पड़ता है और वह अपनी उसी लगन के साथ अपने कर्म-पथ पर बराबर अग्रसर रहती है । परिणामत: राम स्वयं उसको दर्शन देने उसकी कुटिया में आते हैं । शबरी काव्य का स्वर आशावादी है । शबरी काव्य की मूल संवेदना यह है कि कोई भी वर्ण-व्यवस्था से ऊपर उठकर स्वत्व को प्राप्त कर सकता है । इस चरित्र के सहारे कवि ने यह संकेत दिया है कि अपने चैतन्य की रक्षा के निमित्त सामूहिक जड़ता और अंधता को तोड़ना अत्यन्त आवश्यक है । वर्ग-विषमता और वर्ग-व्यवस्था के समाज में यह एक चिरन्तन प्रश्न है जो वाल्मीकि के सामने भी था और अधुनिक कवि नरेश मेहता के सामने भी है ।

13.3.16 प्रार्थना पुरुष

नरेश मेहता द्वारा लिखित प्रबन्ध काव्यों में 'प्रार्थना पुरुष' को भी स्थान प्राप्त है । इस काव्य का प्रकाशन सन् 1985 में हुआ था । इस प्रबन्ध काव्य में नरेश जी किसी विशेष उद्देश्य से प्रेरित होकर गांधी जी के जीवन की प्रमुख घटनाओं का सहारा लेते हुए उनके सिद्धान्तों को रेखांकित भी कर रहे हैं और उनकी महत्ता भी प्रतिपादित कर रहे हैं । 'प्रार्थना पुरुष' कवि मेहता द्वारा लिखित 'गांधी गाथा' है । प्रस्तुत कृति एक प्रकार से गांधी जी के जीवन की पद्यबद्ध कथा ही है ।

13.4 सारांश

उपर्युक्त विवेचनोपरान्त संक्षेप में कहा जा सकता है कि नरेश मेहता का व्यक्तित्व उनके कृतित्व में अभिव्यक्त हुआ है । उन्हें जो परिवेश मिला और जीवन में जिन स्थितियों से वे गुजरे, उन स्थितियों ने कवि को प्रकृति-प्रेमी, रोमानी भावबोध का कवि तो बनाया ही, दृढ़ निष्ठा, संकल्प क्षमता, सांस्कृतिक बोध, उदार धर्म दृष्टि और व्यक्ति और समाज में सामंजस्य स्थापित करने वाला उदात्त कवि भी बनाया । नरेश मेहता का सम्पूर्ण सृजन इन्हीं विचारों से ओतप्रोत है । उनका सम्पूर्ण मुक्तक काव्य यदि नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में विशिष्ट बन पड़ा है तो प्रबन्ध-सृजन पौराणिक कथानकों के आधार पर समकालीन संदर्भो में अनेक समस्याओं को समाधान करता हुआ हमारे लिए प्रासंगिक और उपयोगी बना हुआ है । निश्चय ही नरेश मेहता का काव्य-सृजन हमें प्रेरक और उपयोगी प्रतीत होता है । उनका शिल्प उनके कथ्य के अनुरूप रहा है ।

13.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नरेश मेहता के जीवन एवं व्यक्तित्व के निर्णायक तत्त्वों पर प्रकाश डालिए ।
2. नरेश मेहता की 'दूसरे सप्तक' में संकलित कविताओं पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।
3. नरेश मेहता के काव्य-संग्रहों पर परिचयात्मक लेख लिखिए ।
4. नरेश मेहता के द्वारा रचित खण्डकाव्यों पर उनकी मूल संवेदना को उद्घाटित करते हुए एक लेख लिखिए ।

13.6 संदर्भ ग्रंथ

1. नरेश मेहता; दूसरा सप्तक ।
2. डॉ. रामकमल राय; कविता की ऊर्ध्वयात्रा ।
3. श्रीराम वर्मा; संशय की एक रात : अभिव्यक्ति का स्वरूप ।
4. डॉ. विष्णु प्रभा शास्त्री; नरेश मेहता की वैष्णव काव्य-यात्रा ।
5. महिमा मेहता; उत्सवप्रिय श्री नरेश मेहता ।
6. डॉ. प्रभाकर शर्मा; नरेश मेहता का काव्य विमर्श और मूल्यांकन ।

इकाई 14

प्रवाद पर्व (नरेश महेता) खण्डकाव्य के संकलित अंशों की व्याख्या एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 काव्य परिचय
14.3 काव्य वाचन
14.4 प्रसंग सहित व्याख्या
14.5 सारांश
14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
14.7 संदर्भ ग्रंथ

14.0 उद्देश्य

नरेश मेहता द्वारा रचित और पाठ्यक्रम में निर्धारित कविताओं की व्याख्या विवेचना के माध्यम से आप-

- 'प्रवाद पर्व' में व्यक्त विषय-वस्तु का विश्लेषणात्मक परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- महत्वपूर्ण पद्यावतरणों के शैल्पिक सौंदर्य से परिचित होते हुए नरेश मेहता के भाषा-शिल्पी के रूप को जान सकेंगे
- पद्यावतरणों की व्याख्या के माध्यम से कवि की भावुकता, सहज सम्प्रेषणीयता के साथ-साथ उसकी वैचारिक मनोभूमि से परिचित हो सकेंगे ।

14.1 प्रस्तावना

छायावादोत्तर विकसित काव्यधाराओं में नयी कविता को जितना मान-सम्मान प्राप्त हुआ, उतना ही नये कवियों में नरेश मेहता को प्राप्त हुआ है । यही कारण है कि श्री नरेश मेहता नयी कविता के विशिष्ट कवि हैं । उन्हें नयी कविता का कीर्ति पुरुष कहा गया है । उल्लेखनीय है कि कवि के रूप में उनकी पहचान 'दूसरा सप्तक' में संकलित कविताओं के माध्यम से सामने आयी । सप्तक परम्परा में जितने भी कवि आये, उनमें से आधे से अधिक कवि ऐसे हैं, जो कवि के रूप में अपनी पहचान नहीं बना पाये, किन्तु नरेश मेहता ने 'दूसरा सप्तक' की कविताओं के माध्यम से ही नये कवियों में अपनी विशिष्ट पहचान बना ली । नयी कविता के क्षेत्र में नरेश मेहता की विशिष्ट पहचान को जानने या समझने के लिए उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझना अत्यन्त आवष्यक है । नरेश मेहता का काव्य-सृजन प्रारम्भ से अन्त तक सांस्कृतिक बोध से परिपूर्ण है और उनके खण्ड-काव्यों में भी उनका सांस्कृतिक और नवीन चिन्तन देखने को मिलता है । 'प्रवाद पर्व, 'संशय

की एक रात', 'महाप्रस्थान' जैसी प्रबन्धात्मक कृतियों में उनके इस प्रकार के चिन्तन को देखा जा सकता है ।

14.2 काव्य-वाचन

(1)

राम, क्या यही है मनुष्य का प्रारब्ध? कि
कर्म
निर्मम कर्म
केवल असंग कर्म करता ही चला जाए?
भले ही वह कर्म
धारदार अस्त्र की भाँति
न केवल देह
बल्कि
उसके व्यक्तित्व को
रागात्मिकताओं को भी काट कर रख दे ।
क्या यही है मनुष्य का प्रारब्ध?
क्या इसीलिए मनुष्य
देश और काल के विपरीत चुम्बकताओं में
जीवन भर
एक प्रत्यंचा-सा तना हुआ
कर्म के बाणों को वहन करने के लिए
पात्र या अपात्र
दिशा या अदिशा में सन्धान करने के लिए
केवल साधन है?
मनुष्य
क्या केवल साधन है?
क्या केवल माध्यम है?

(2)

दिशा
चाहे वह यम की हो
या इन्द्र की -
जिसे प्राप्त करने के लिए
अनन्तकाल से सप्तर्षि
यात्रा-तपस्या में लीन हैं,
परन्तु
दिशाएँ

उत्तर की प्रतीक्षा में
स्वयं प्रश्न बनीं
आकाश और ब्रह्माण्ड थामे खड़ी-खड़ी
वृद्ध हो रही हैं
और उत्तर-
स्वयं प्रश्न बना
एकान्त गरुड़ सा
अपर ब्रह्माण्डों के पार
व्योमसिद्ध भाव से चला जा रहा है ।

(3)

पूरे समय
अपने व्यक्तित्व में
यह अग्निपर्व
यह आवाहोत्सव धारण किए रहना
अपने को
प्रतिहवन-कुण्ड बना लेना है राम!
छूब की अनामता से लेकर
अनन्त आयामी
मानवीय प्रज्ञा तक -
अग्नि, जल, वायु
जन्म-मृत्यु के
सदाशिव और पाशुपत श्लोकों में
यह कैसा लीलामय अभिषेक
सम्पन्न हो रहा है ।
यही है वह
रुद्रपाठ
जो सृष्टि के
मन्वन्तर-स्वरूप में
अहोरात्र उच्चरित है ।

(4)

ज्वारों के कषाघात सहते
योजनों विस्तार में फैले
सागरों
समुद्रों को कभी देखा है?
यह कैसी वैश्वानरी विवशता है
जो वनस्पतियों से लेकर

दीपों की एकान्तता
वनों की अगाधता
आकाश की अगम्यताओं तक
अनासक्त भाव से व्याप्त है ।
सारे के सारे
विनम्र तथा उग्र वर्चस्व
संकल्प जलों की भाँति
नदियों, प्रपातों के रूप में
इस महाकाली
कर्म-शिवा का अभिषेक कर रहे है ।

(5)

इतिहास
खड्ग से नहीं
मानवीय उदात्तता से लिखा जाना चाहिए ।
क्या होगा
इतिहास को इतना दास बनाकर कि
वह राजभित्तियों पर चित्रित तथा
शिलालेखों पर उत्कीर्णित
हमारी चारण-गाथा लगे,
और जीवन्तता के अभाव में
उन चित्रों, शिलालेखों को
काल
अपने में लीन कर
इतिहासहीन कर दे ।

(6)

नहीं राम!
इतिहास को भी वनस्पतियों की भाँति
सम्पूर्ण भेदिनी को
शोभा और गन्ध होने दो,
उसे मानवीय अभिव्यक्ति का
औपनिषदिक पद दो,
व्यक्ति मात्र को
इतिहास में परिधानित होने दो,
लगे कि
इतिहास-
मानवीय विष्णु की कण्ठश्री

वैजयन्ती है ।

(7)

भरत: न्याय समदर्शी होता है प्रभु!
राम: केवल समदर्शी ही नहीं
उसे तत्त्वदर्शी भी होने दो ।
राजभवनों और राजपुरुषों से ऊपर
राज्य और न्याय को
प्रतिष्ठापित होने दो भरत!
यदि ये तत्वदर्शी नहीं होते
तो एक दिन
निश्चय ही ये भय के प्रतीक बन जाएँगे,
और
तब कौन इसमें
प्रजा बनकर रहना चाहेगा?
राज्य को सामूहिक आकांक्षा का
प्रतीक बनने दो भरत!
प्रजा के भी अधिकार होते हैं ।

(8)

लक्ष्मण: राज्य ऐसे नहीं चला करते ।
राम: तो भय से भी नहीं चला करते लक्ष्मण!
गूंगेपन से कहीं श्रेयस् है
वाचालता!
जिस दिन
मनुष्य अभिव्यक्तिहीन हो जाएगा
वह सबसे अधिक
दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा ।
कैसा ही इतिहास-पुरुष क्यों न हो
लक्ष्मण!
सामाजिक भाषा हीनता
अभिव्यक्ति की इतिहासहीनता का सामना
नहीं कर सकता
लक्ष्मण! नहीं कर सकता ।

(9)

समुद्रघोष की भाँति
जब वह बोलता था, तो
आज्ञापालन करती

दिशाएँ प्रतिध्वनित होती थी ।
पूरे साम्राज्य
देश और काल के मन्वन्तरीय फलक में
केवल उसी के पास
वाणी
भाषा और
आदेश थे,
जबकि
शेष चराचर के पास
केवल झुके मस्तक
और आज्ञा सुनते कान थे ।
स्वयं ब्रह्मा
जिसे वेदपाठ सुनाया करते थे
ऐसे विद्याधर अधिपति
रुद्रप्रिय
रावण से बड़ा इतिहास-पुरुष कोई था लक्ष्मण?

(10)

और
तब इस प्रचण्डता के विरुद्ध
एक अनाम साधारणजन की तर्जनी सा
असहमति में
अपने ही एक बन्धु का हाथ उठता है लक्ष्मण!
लगा कि जैसे
धरती को फोड़कर
कोई पुरालेख निकल आया हो
जिसे देख-बाँच कर
शक्ति
पीली पड़ जाए ।
परन्तु शक्ति-मानवता या बंधुभाव कुछ नहीं मानती,
वह तो
आधिपत्य का प्रवाह होती है
जो अपनी अन्धी समतलता में
हिल्लोलितं रहती है ।

(11)

क्या
इतिहास को हमने

वैयक्तिकता के लिए माध्यम बनाया था?
नहीं
नहीं लक्ष्मण!
अनाम लोगों और
भयातुर,
प्रताड़ित प्रजा ने
अपने स्वत्व
स्वाधीनता, अभिव्यक्ति और
जीवन-मूल्यों तथा आदर्शों के लिए
प्राणार्पण किया था,
एक चक्रवर्ती के विरुद्ध
साधारणता ने
युद्ध का आवाहन किया था ।

(12)

यह धूप का महोत्सव
दाक्षिणात्य चन्दनगंधी हवाएँ
गन्धमादन की पुष्पीय विपुलता
वानस्पतिकता का उदार
विपुल परिवार आकाश-गंगा से लेकर
ग्राम्य-गंगा तक की यह
सम्पूर्ण विराट-विनम्र
सृष्टि-
किसके माध्यम से बोलती है लक्ष्मण?
कौन है सृष्टि की बाँषी-भाषा?
बन्धु!
मनुष्य
एक मात्र मनुष्य ही
सृष्टि की जिह्वा है ।

(13)

व्याकरण और अर्थ-गन्ध से युक्त भाषा-
देश और काल को
वहन तथा अभिव्यक्त करने वाली
गायत्री स्वरूप
महाशक्ति
भाषा-
केवल मनुष्य के ही पास है ।

चाहे वह देवभाषा हो या
माटी-भाषा,
मनुष्य का भाषाहीन हो जाना
सृष्टि का ईश्वरहीन हो जाना होगा लक्ष्मण!
ये सारे मन्त्र
ये सारे काव्य
ये पुराण, ये उपनिषद
ये इतिहास, ये उपाख्यान
सब सम्बोधनहीन हो जाएँगे ।
जह्वाहीन हो जाएँगे लक्ष्मण!
जड़ता
सम्बोधनहीनता ही तो है ।

(14)

इतना कि
वह वैयक्तिक क्षणों में
एक सामाजिक समस्या लगे
और सामाजिक अवसरों पर
वैयक्तिक मुद्रा!
राम: क्या मैं ऐसा लगता हूँ?
सीता: भले ही नहीं ।
परन्तु
प्रत्येक स्थिति का
अपना एक एकांत
एक निजत्व.....

(15)

हम प्रत्येक बार
अथाह
अशान्त समुद्रों को चीर क्षत-विक्षत
ज्यों ही शान्त तट पर
पहुँचने को होते हैं कि
एक घटना
एक व्यक्ति
फिर हमें तूफानों के उबलते
उफनतेपन में फेंक जाता है,
और हम
जल की विशाल हिल्लोलता में

विवश नारिकेल से
डूबने-उतराने लगते हैं ।
हमारा सारा व्यक्तित्व
सारा पुरुषार्थ
कैसा दिषाहारा हो जाता है सीता!
उस उतने बड़े यात्रा-पुरुषार्थ
और
यज्ञ-अरणियों की भाँति
एक-एक कर तुलते गये
मानवीय-उद्यम की व्यर्थता
जब आपके सामने
फिर नया संघर्ष खोल दे
तब आप क्या करेंगे?
कोई क्या करेगा?

(16)

हम
इतिहास की केवल वनस्पतियाँ भर हैं
हमारे चलने से सीता
थोड़ी-सी धरती सुन्दर हो उठती है,
हम
सम्भवत: एक छोटी-सी सुगन्ध वहन कर सकते हैं
इस,
इससे अधिक कुछ नहीं!
प्रयास कितना ही कर लें
परन्तु इससे अधिक
इतिहास-पुरुष भी नहीं ।
कैसा है पुरुषार्थ
आगत्य सीमा ही है सीता!
और यह महालीला
यह महारास
यह विधान
यह खेल
यह प्रारब्ध-
अनन्त देवगंगाओं के पार भी
असीम है

अक्षत है ।

(17)

सप्तपदी के बाद
तुम्हारे ये रक्त अलक्तक चरण
इक्ष्वाकुओं के राजभवन के
संगमरमरी सुगन्धित दालानों में नहीं
वरन
निषाद गुह और राक्षसों से भरे
असुरक्षित
अगम अरण्यों की ओर बढ़ेंगे?
चीनांशुक वल्कल में परिणत हो जाएगा
और हम
अपने राजसी कुल-गोत्र को
खण्डित यज्ञोपवीत की भाँति उतार
साधारण अनामता धारण कर
नितान्त पृथ्वीपुत्र कर दिये जाएँगे ।
हमारे वैवाहिक जीवन का
यह कैसा राजसी समारम्भ था प्रिये!

(18)

स्वेच्छा से वरण कर लिये जाने पर
निष्कासन
उपेक्षा, अवमानना
सब तपस्या हो जाते हैं सीता!
पर
इससे उनकी प्रकृति
या परिणाम नहीं बदल जाते ।
हमारे सबकी शक्ति
केवल संदर्भ की शक्ति है सीता!
संदर्भ की पहचान खोकर
हमारे पास
केवल साधारणता बचती है ।
एक सीमा तक ही
पृथिवी उर्ध्वगामी हो सकती है
और उर्ध्व वैराट्य
कितना ही विनम्र
आसक्त, कृपावान

क्यों न हो जाए
क्षितिज पर पहुँचकर
फिर असंग
अनासक्त
नील आकाश हो जाने के लिए बाध्य है ।
पृथिवी की नियति ही है कि
उस पर
पदचिह्नों के अधूरे आलेख
विस्मृत गाथाएँ और
आख्या नहीं आख्यान लिखे हों
चाहे वह मात्र दुख के ही क्यों न हों ।
जबकि आकाश
पक्षियों को लौटा कर
सारे मेघवस्त्रों को उतार
सम्बन्धहीन
अनागरिक संन्यासी की भूमिका में
शोभा पाता है ।

(20)

हम सब इतिहास-दग्ध
इसीलिए तो हुए कि
हमारे राष्ट्र का वर्चस्व अक्षुण्ण रहे ।
तब
केवल सीता की अग्नि-परीक्षा के लिए
यह आत्म-प्रवंचना क्यों?
यह ऐतिहासिक क्षमा-प्रार्थना किसलिए?
किसी भी क्षण
किसी के भी द्वार पर
कैसी ही परीक्षा के लिए
क्या राष्ट्र और इतिहास
दस्तक देने नहीं खड़े होते हैं?
क्या युद्ध
राष्ट्र और इतिहास के लिए दी गयी
समाज की
ऐसी ही अग्नि-परीक्षा नहीं होती?
तब
इन क्षमा-प्रार्थनाओं का क्या औचित्य है?

(21)

एक निष्णात त्रासदी
जिसके गौण पात्र
स्थान, संदर्भ बदल गये हैं
परन्तु
मुख्य पात्र
वही तीनों हैं-
राम, सीता और लक्ष्मण!
किस महोत्सव के अवसर पर
किस प्रयोजन पर
यह त्रासदी खेली जा रही है
कोई नहीं जानता राम!!
कोई नहीं!!

14.3 काव्य-परिचय

'प्रवाद पर्व' श्री नरेश मेहता द्वारा राम-कथा प्रसंग पर आधारित एक प्रबन्ध काव्य है । यह काव्य सन् 1977 में प्रकाशित हुआ । इसमें कवि ने राम-कथा के माध्यम से पूर्ण कौशल के साथ अपने युगीन परिवेश और उससे उत्पन्न स्थितियों और समस्याओं का निरूपण किया है । इस कृति की कथा का मूल केन्द्र सीता का निष्कासन है । जब राम रावण का वध करके अयोध्या लौटते हैं, तब अयोध्या का एक धोबी सीता की चरित्र-मर्यादा पर उँगली उठाता है । शासक-वर्ग इसे अनुचित मानता है, किन्तु राम की दृष्टि में यह उचित है । राम की मान्यता है कि लोकतंत्र में सभी को अपना मत व्यक्त करने का अधिकार है । यह राजतंत्र की समस्या को लेकर लिखा गया काव्य है । यह काव्य पाँच भागों में विभक्त है- इतिहास और प्रतिइतिहास, प्रतिइतिहास और तन्त्र, शक्ति:एक सम्बन्ध, एक साक्षात्, प्रतिइतिहास और निर्णय और निर्वेद विदा आदि । इसमें कवि ने राजपुरुष, राज्य और सामान्य जन के निकट सम्बन्धों को स्पष्ट किया है । इसके अन्तर्गत कवि ने अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर जोर दिया है । प्रवाद पर्व एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें यह प्रतिपादित किया है कि एक साधारण जन की अभिव्यक्ति को भी पूरा महत्व मिलना चाहिए तथा शासक को तटस्थ एवं अनासक्त मनःस्थिति से युक्त होना चाहिए । उन्होंने यह व्यक्त कर दिया है कि न्याय और कानून से ऊपर कोई नहीं हो सकता है । यहाँ कवि ने सीता के चरित्र को मानवीय आदर्शों और इतिहास-पुरुष की कर्तव्यशीलता के प्रति समर्पित बताते हुए सीता की संस्कारशीलता को भारतीय स्थिति के अनुरूप दृढ़ करने का भी प्रयास किया है । इसमें हम आपातकाल का सामयिक संदर्भ और सत्ता के तानाशाही रूप का भी यथार्थ अंकन देख सकते हैं । अमियचन्द पटेल ने इस संदर्भ में लिखा है कि "कवि युगबोध और समसामयिक परिस्थितियों से जूझता हुआ मानवीय चेतना के विकास को प्रज्ञा-प्रतीक राम के माध्यम से व्यक्त करने में पूरी तरह समर्थ हुआ है ।"

14.4 प्रसंग सहित व्याख्या

अवतरण 1 :

क्या यही है मनुष्य का प्रारब्ध? कि
कर्म
निर्मम कर्म
केवल असंग कर्म करता ही चला जाए?
भले ही वह कर्म
धारदार अस्त्र की भाँति
न केवल देह
बल्कि
उसके व्यक्तित्व को
रागात्मिकताओं को भी काट कर रख दे ।

शब्दार्थ-

प्रारब्ध =भाग्य । निर्मम = कठोरतापूर्वक । असंग = अनासक्त । रागात्मिकताओं = उसकी आत्मा का तार-तार करना ।

प्रसंग-

प्रस्तुत पद्यावतरण श्री नरेश मेहता द्वारा रचित खण्डकाव्य 'प्रवाद पर्व' का प्रथम अवतरण है । प्रस्तुत काव्य में कवि ने लंका-विजय के उपरान्त अयोध्या लौटने पर एक धोबी के द्वारा उठाये गये सीता की पवित्रता विषयक प्रश्न को आधार बनाया है तथा इसके माध्यम से समकालीन राजनीतिक प्रश्नों को उठाया गया है । राम अयोध्या के राजभवन के एक कक्ष में शारदीया रात्रि के प्रथम प्रहर में उद्विग्न भाव से टहल रहे हैं । उन्हें ज्ञात हो चुका है कि उनके राज्य के एक धोबी जैसे साधारण नागरिक ने सीता की पवित्रता का प्रश्न उठाया है । यद्यपि सीता की अग्नि-परीक्षा हो चुकी थी, तथापि राम के लिए एक साधारण जन का मत भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है । वे प्रजातांत्रिक मूल्यों के संरक्षक हैं तथा इसी विषय पर कुछ उद्विग्न मन से विचार कर रहे हैं । उन्हें चिन्तन के दौरान यह अनुभव होता है कि मनुष्य का कार्य केवल अनासक्त कर्म करना है, उसके भाग्य का विधाता तो कोई और है ।

व्याख्या-

कवि कहते हैं कि राम धोबी के द्वारा सीता की पवित्रता को लेकर चिन्तनशील हैं । वे चिन्तन करते-करते कुछ दार्शनिक हो जाते हैं और सोचने लगते हैं कि मनुष्य के स्वयं के हाथ में कुछ भी नहीं है । उसकी समस्त स्थितियाँ-परिस्थितियाँ तथा भाग्य स्वयं विधि के द्वारा निर्धारित किया जाता है । मनुष्य के स्वयं के हाथ में तो केवल कर्म करना ही होता है । यह सोचते-सोचते राम के हृदय में सहसा एक प्रश्न उठता है कि क्या यही मनुष्य का भाग्य है कि वह संसार की सभी स्थितियों, परिस्थितियों और मनुष्य के प्रति आसक्तिरहित होकर केवल कठोरतापूर्ण कर्म करता रहे । उसका केवल कर्म पर ही अधिकार है । वह न तो उस कर्म की पृष्ठभूमि तैयार कर सकता है और न ही उसके फल के विषय में सोच सकता है । इतना ही नहीं, उसे तो अपने उस कर्म के प्रति भी आसक्ति

का भाव रखने का अधिकार नहीं है । कर्म चाहे कोमल हो या कठोर, उसे उस कर्म को सम्पादित करने के लिए विवश होना ही पड़ता है । भले ही उस कर्म की कठोरता एक तीक्ष्ण धार वाले अस्त्र की तरह न केवल उसके शरीर को, बल्कि उसकी आत्मा को भी काटकर रख दे । अभिप्राय यह है कि वह कर्म भले ही इतना कठोर हो कि मनुष्य की आत्मा को अर्थात् उसकी भावात्मकता को ही लहूलुहान कर दे, फिर भी उसे वह कर्म करने के लिए विवश होना ही पड़ता है । कवि कहते हैं कि यही मनुष्य का भाग्य है ।

कवि कहते हैं कि इसी के वशीभूत होकर प्रत्येक मनुष्य को जीवन भर देश और काल की परस्पर विपरीत परिस्थितियों को उसी प्रकार भोगना पड़ता है जिस प्रकार एक प्रत्यंचा हमेशा तनी रहती है, जिससे कि वह बाणों को सरलता एवं सफलता के साथ धारण कर दे, उसी प्रकार मनुष्य भी विपरीत परिस्थितियों के बीच कसा रहता है ताकि कठोर कर्मो को भी सफलतापूर्वक संपादित कर सके । कवि कहते हैं कि मनुष्य पात्र या अपात्र के विषय में नहीं सोचता न ही उसे यह सोचना होता है कि वह जो कर्म कर रहा है, उसकी दिशा उचित है या अनुचित? उसका कर्म सफल है या असफल? वह तो मात्र कर्म करने का एक माध्यम अथवा साधन मात्र है । उसके स्वयं के हाथ में कर्म-सम्पादन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।

टिप्पणी-

(1) प्रस्तुत पद्यावतरण में कवि ने मनुष्य की अनासक्त कर्म करने की विवशता का अंकन किया है ।

(2) कवि की यह चिन्तना गीता के कर्म-दर्शन के समकक्ष प्रतीत होती है जिसमें भगवान कृष्ण ने निष्काम कर्म करने की प्रेरणा दी है ।

अवतरण 2 :

इतिहास
खड्ग से नहीं
मानवीय उदातता से लिखा जाना चाहिए ।
क्या होगा
इतिहास को इतना दास बनाकर कि
वह राजभित्तियों पर चित्रित तथा
शिलालेखों पर उत्कीर्णित
हमारी चारण-गाथा लगे,
और जीवन्तता के अभाव में
उन चित्रों, शिलालेखों को
काल
अपने में लीन कर
इतिहासहीन कर दे ।

शब्दार्थ-

खड्ग = तलवार । उदात्तता = उदारता एवं उच्चता । राजभित्तियों = राजमहल की दीवारों। शिलालेख = चट्टानों पर राजाओं के द्वारा लिखवाये गये लेख । चारण-गाथा = किसी राजा की प्रशंसा

में चारण जाति के द्वारा सुनाई गयी कथा । जीवन्तता = सजीवता । इतिहासहीन = इतिहास से रहित ।

प्रसंग-

प्रस्तुत अवतरण श्री नरेश मेहता द्वारा रचित खण्डकाव्य 'प्रवाद पर्व' के प्रथम भाग 'इतिहास और प्रतिइतिहास' से अवतरित है । राम मनुष्य की नियति की प्रतिबद्धता पर विचारमग्न हैं । वे सोचने लगते हैं कि इस संसार में सभी मनुष्य कर्म की भट्टी में निर्धूम जल रहे हैं । हम चाहे पिछली शताब्दियों के इतिहास का अध्ययन करें या आगामी शताब्दियों की स्थितियों का अनुमान लगायें, सभी से यही तथ्य प्रमाणित होता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में कर्म के आवाहन का उत्सव समेटे हुए है अथवा परिस्थितियों के हवन-कुण्ड में वह निरन्तर आहुतियाँ दे रहा है । हमारी निजता ही हमारे इस कर्म-यज्ञ का संपादन करती है । राम आगे सोचने लगते हैं कि आज फिर हमारे राज्य के एक साधारण व्यक्ति ने राजसी गरिमा और चरित्र की मर्यादा के समक्ष एक प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया है । जब-जब राजतंत्र और इतिहास के विरूद्ध इस प्रकार के प्रश्न खड़े होते हैं, तब-तब सम्पूर्ण परिवेश एक कोलाहल से भर उठता है । इस प्रकार की साधारण आवाज का दमन नहीं करना चाहिए और न ही उसे अनसुना कर राजतंत्र की सबलता और शक्ति का प्रदर्शन करना चाहिए । वे सोचते हैं कि भले ही राजतंत्र के प्रतिनिधि को स्वयं को इतिहास की गर्त में दबा देना पड़े किन्तु उस अनाम साधारण जन की आवाज का हर स्थिति में सम्मान किया जाना चाहिए ।

व्याख्या-

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ईमानदारी से इतिहास लिखने पर बल देते हुए कह रहे हैं कि इतिहास को तोड़-मरोड़ कर मनमाने ढंग से तलवार की नोंक पर लिखवाना इतिहास के साथ बेईमानी है । तात्पर्य यह है कि इतिहास-लेखन में शक्ति का प्रयोग कभी नहीं किया जाना चाहिए । सच्चा इतिहास तभी लिखा जा सकता है जबकि उसे लिखते समय मानवीय मूल्यों का ध्यान रखा जाये अर्थात् राजतंत्र के बल पर इतिहास में केवल राजा-महाराजाओं की शौर्य-गाथाएँ ही न हों, बल्कि साधारण मानव की संवेदनाएँ, विचारधाराएँ तथा वेदनाएँ भी स्पंदित हों ताकि उस समय की सच्ची तस्वीर भावी पीढ़ी के सम्मुख प्रस्तुत की जा सके । कवि कहते हैं कि शासन को इतिहास पर इतना नियंत्रण नहीं रखना चाहिए कि वह उनका एक दास बनकर रह जाये क्योंकि ऐसी स्थिति में इतिहास राजमहल की दीवारों पर राजाओं के आदेश पर लिखवाया गया प्रशस्ति-लेख मात्र बनकर रह जायेगा । इस प्रकार के इतिहास में तत्कालीन साधारण जन-जीवन का तनिक भी स्पन्दन विद्यमान नहीं रह सकेगा । इस प्रकार लिखवाया गया इतिहास और इस प्रकार बनवाये गये चित्र समय के साथ-साथ निर्जीव शिलालेख बनकर रह जायेंगे और उनमें वास्तविक इतिहास की लेशमात्र भी झलक नहीं रहेगी । फलत: हम इतिहासहीन बनकर रह जायेंगे ।

टिप्पणी-

(1) प्रस्तुत पद्यावतरण में कवि ने इतिहास के ईमानदार लेखन की अत्यन्त सशक्त शब्दों में पैरवी की है ।

(2) अवतरण की भाषा सरल, भावानुकूल किन्तु प्रतीकात्मक है । यहाँ प्रयुक्त 'चारण गाथा' शब्द राजाओं के द्वारा शक्ति-प्रयोग के द्वारा अपनी प्रशंसा में लिखवाये गये शिलालेखों का प्रतीक बनकर आया है ।

अवतरण 3 :

नहीं राम!
इतिहास को भी वनस्पतियों की भाँति
सम्पूर्ण भेदिनी को
शोभा और गन्ध होने दो,
उसे मानवीय अभिव्यक्ति का
औपनिषदिक पद दो,
व्यक्ति मात्र को
इतिहास में परिधानित होने दो,
लगे कि
इतिहास-
मानवीय विष्णु की कण्ठश्री
वैजयन्ती है ।

शब्दार्थ -

मेदिनी = पृथ्वी । औपनिशदिक = उपनिषदों से सम्बन्धित । परिधानित = सुसज्जित, वस्त्रयुक्त । वैजयन्ती = शोभामाला ।

प्रसंग-

प्रस्तुत अवतरण श्री नरेश मेहता द्वारा रचित खण्डकाव्य 'प्रवाद पर्व' के प्रथम भाग 'इतिहास और प्रतिइतिहास' से अवतरित है । एक साधारण मनुष्य के प्रतिनिधि रूप धोबी के द्वारा सीता की पवित्रता पर तर्जनी उठाये जाने के विषय पर वे चिन्तनमग्न हैं । इस चिन्तन के फलस्वरूप वे आत्म-मंथन एवं आत्म-विश्लेषण की प्रक्रिया से गुजरते है तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राज्य में एक सामान्य व्यक्ति की आवाज का भी उतना ही मूल्य होना चाहिए जितना कि एक कुलीन वंशीय अथवा राजपरिवार से सम्बन्धित व्यक्ति के मत का । वह सोचते हैं कि यदि शासन व्यक्ति की आवाज को महत्व नहीं देगा तो इतिहास कुछ गिने-चुने राजपरिवारों की यशगाथा मात्र बनकर रह जायेगा, उसमें से इतिहास-तत्व का लोप हो जायेगा । अत: श्रेयस्कर यही है कि हम इतिहास-लेखन के प्रति एक ईमानदार दृष्टि रखें, उसमें जनसाधारण की संवेदनाओं को भी स्थान दें ।

व्याख्या -

प्रस्तुत पद्यावतरण में राम आत्म-मंथन करते हुए स्वयं से ही राजनैतिक मूल्यों एवं इतिहास-लेखन के विषय में एक लोक कल्याणकारी निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं । वे स्वयं से कहते हैं कि इतिहास को राजपरिवारों की धरोहर बनाना उचित नहीं है । लोक हितकारी एवं लोक कल्याणकारी यही होगा कि हम इतिहास को उसी प्रकार सम्पूर्ण मानव जाति से जोड़कर रखें, जिस प्रकार वनस्पतियाँ बिना किसी भेदभाव के सम्पूर्ण पृथ्वी को अपनी मादक एवं मधुर गंध से सराबोर कर देती हैं । कवि

कहते हैं कि इतिहास अपना वास्तविक रूप उसी समय धारण कर सकेगा जबकि वह साधारण व्यक्ति मात्र की विचारधारा एवं जीवन शैली की सच्ची अभिव्यक्ति करेगा । इसलिए राम इतिहास को मानवीय अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने पर बल देते हैं । वे कहते हैं कि जिस प्रकार उपनिषदों में जगत के शाश्वत सत्य का विवेचन किया गया है, उनमें लोक कल्याणकारी भाव को सुरक्षित रखने की पूरी कोशिश की गयी है, उसी प्रकार इतिहास को भी शाश्वत सत्य का विवेचन एवं लोक कल्याणकारी बन जाना चाहिए । इतिहास जब तक सामान्य जनमानस से अलग केवल राजपरिवारों की निजी सम्पत्ति बना रहेगा, तब तक वह अपने वास्तविक सौंदर्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा । इसलिए कवि कहते हैं कि इतिहास को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होने देना चाहिए अर्थात् उसे राजपरिवारों के दायरे से बाहर निकलकर जनसाधारण से जुड़ना चाहिए । ऐसा होने पर वह विष्णु भगवान के गले में पडी शोभामाला के सदृश हो जायेगा अर्थात् दिव्य एवं अलौकिक गुणों से युक्त हो जायेगा ।

टिप्पणी-

(1) प्रस्तुत पद्यावतरण में कवि ने इतिहास के जनसाधारण से जुड़ने की बात कही है ।

(2) अवतरण की भाषा सरल, सहज, आलंकारिक और प्रतीकात्मक है । 'औपनिषदिक पद', मानवीय विष्णु की कण्ठश्री वैजयन्ती आदि पदों में प्रतीकात्मकता का सौंदर्य देखा जा सकता है ।

अवतरण 4

समुद्रघोष की भाँति
जब वह बोलता था, तो
आज्ञापालन करती
दिशाएँ
प्रतिध्वनित होती थी ।
पूरे साम्राज्य
देश और काल के मन्वन्तरीय फलक में
केवल उसी के पास
वाणी
भाषा और
आदेश थे,
जबकि
शेष चराचर के पास
केवल झुके मस्तक
और आज्ञा सुनते कान थे ।
स्वयं ब्रह्मा
जिसे वेदपाठ सुनाया करते थे
ऐसे विद्याधर अधिपति
रुद्रप्रिय
रावण से बड़ा इतिहास-पुरुष कोई था लक्ष्मण?

शब्दार्थ

समुद्रघोष = समुद्र की गर्जन की आवाज । प्रतिध्वनित = गूंजना । मन्वन्तरीय = समय का विशालतम स्वरूप । चराचर = सजीव एवं निर्जीव । विद्याधर = विद्या को धारण करने वाला । रुद्रप्रिय = शिव के रुद्र रूप से प्रेम करने वाला ।

प्रसंग-

प्रस्तुत अवतरण श्री नरेश मेहता द्वारा रचित खण्डकाव्य 'प्रवाद पर्व' के द्वितीय भाग 'प्रतिइतिहास और तंत्र' से अवतरित है । इस खण्ड में सीता की पवित्रता पर लगे प्रश्नचिह्न के निर्णय के लिए राम द्वारा आयोजित सभा का वर्णन किया गया है । भरत राम से कहते हैं कि इस विवाद को सुलझाने के लिए उचित सभासदीय कार्यवाही अनिवार्य है क्योंकि राजमहिषी की पावनता पर यह प्रश्नचिह्न एक साधारण धोबी के द्वारा लगाया गया है । यह उसकी अनधिकार चेष्टा है । राम भरत के इस मत का विरोध करते हैं और कहते हैं कि यदि यह उंगली किसी साधारण स्त्री के चरित्र पर उठाई गयी होती, तब भी क्या तुम उसे अनधिकार चेष्टा ही कहते? वे कहते हैं कि न्याय को समदर्शी एवं तत्वदर्शी होना चाहिए । उसे राजभवनों और राजपुरुषों से ऊपर उठकर सोचना चाहिए । वे लक्ष्मण से कहते हैं कि राज्य भय से नहीं चलते । प्रजा को अपने विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए । मनुष्य का अभिव्यक्तिहीन होना समाज का भाषाहीन होना है, जो अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है । राजपुरुषों के निरंकुश व्यक्तित्व से शासन नहीं चला करते । यही कारण है कि रावण जैसे महाबली का शासन भी कायम नहीं रह सका ।

व्याख्या -

राम लक्ष्मण के विचारों का विरोध करते हुए कहते हैं कि रावण से महान इतिहास-पुरुष अन्य कोई नहीं था । वह अत्यन्त विद्वान, निरंकुश एवं तपस्या से अर्जित अनेक परात्पर शक्तियों से सम्पन्न व्यक्तित्व का धनी था । वह एक महामहिम और चक्रवर्ती सम्राट था । समस्त दिशाएँ, दिक्पाल, देवता तथा ग्रह-उपग्रह उसके आदेश का पालन करते थे । उसकी वाणी समुद्र की गर्जना के समान गहन तथा गम्भीर थी । इसलिए जब भी वह बोलता था, तो समस्त दिशाएँ भी उसके आदेश का पालन करती थीं । उसके आदेश समस्त साम्राज्य में ही नहीं, बल्कि देश और काल की सीमाओं से परे समय के विशालतम स्वरूप में भी गूँजते प्रतीत होते थे । उसका व्यक्तित्व इतना अधिक प्रभावशाली था कि समस्त चराचर जगत् शीश झुकाकर उसकी आज्ञा का पालन करने तथा उसके आदेशों को सुनने के लिए विवश था । ऐसा लगता था मानो जगत् में केवल उसी के पास वाणी हो, उसी के पास अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा हो तथा उसी के पास लोगों में प्रसारित करने के लिए आदेश हों । जिन ब्रह्मा के दर्शनों के लिए सम्पूर्ण सृष्टि लालायित रहती है, वही ब्रह्मदेव उसकी शक्तियों से कर्षित होकर उसे वेदपाठ सुनाया करते थे । वह विद्या का स्वामी तथा महान शिवभक्त था । अन्त में श्रीराम लक्ष्मण से प्रश्न करते हैं कि क्या उस महान प्रतिभाशाली, सर्वशक्तिमान रावण से बड़ा इतिहास-पुरुष कोई अन्य था? तात्पर्य यह है कि उससे बड़ा इतिहास-पुरुष कोई नहीं था । उस महान इतिहास-पुरुष की निरंकुशता भी एक बंधु की विरोधी आवाज के समक्ष नहीं टिक सकी ।

टिप्पणी-

(1) प्रस्तुत पद्यावतरण में कवि ने अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की महत्ता स्थापित की है और बताया है कि रावण जैसे दिव्य शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति की निरंकुशता भी नहीं टिक सकी ।

(2) अवतरण की भाषा सरल एवं भावानुकूल है ।

अवतरण 5 :

क्या
इतिहास को हमने
वैयक्तिकता के लिए माध्यम बनाया था?
नहीं
नहीं लक्ष्मण!
अनाम लोगों और
भयातुर,
प्रताड़ित प्रजा ने
अपने स्वत्व
स्वाधीनता, अभिव्यक्ति और
जीवन-मूल्यों तथा आदर्शो के लिए
प्राणार्पण किया था,
एक चक्रवर्ती के विरुद्ध
साधारणता ने
युद्ध का आवाहन किया था ।

शब्दार्थ -

अनाम = नाम रहित । भयातुर = भय से व्याकुल । प्रताड़ित = पीड़ा पहुँचाना । प्राणार्पण = प्राण देना । आवाहन = घोषणा ।

प्रसंग-

प्रस्तुत अवतरण श्री नरेश मेहता द्वारा रचित खण्डकाव्य 'प्रवाद पर्व' के द्वितीय भाग 'प्रतिइतिहास और तंत्र' से अवतरित है । राम, लक्ष्मण और भरत आपस में सीता की पावनता पर एक साधारण जन धोबी के द्वारा उठाये गये सवाल पर वाद-विवाद कर रहे हैं । भरत एवं लक्ष्मण की दृष्टि में धोबी के द्वारा अग्नि परीक्षा के बाद भी सीता की पवित्रता को प्रश्न उठाना वास्तव में राजद्रोह है, जबकि राम का मत है कि वास्तविक प्रजातंत्र में एक साधारण नागरिक को भी अपना विचार व्यक्त करने का उतना ही अधिकार है जितना कि किसी विशिष्टजन को । यदि व्यक्ति की विचारधारा का कोई मूल्य नहीं होता, तो रावण की निरंकुश, शक्ति-सम्पन्न सत्ता एक व्यक्ति के विरोध से धराशायी न हो जाती । कवि कहते हैं कि जब रावण की निरंकुशता स्वर्णमयी लंका में अपनी पूरी प्रचण्डता के साथ व्याप्त थी, तब विभीषण ने अकेले ही उस निरंकुशता के विरूद्ध आवाज उठाई थी । राम आगे कहते हैं कि हमने उस विरोध में विभीषण का साथ केवल सीता को प्राप्त करने के व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों और आदर्शों की स्थापना के उद्देश्य से दिया था ।

व्याख्या -

राम कहते है कि हमने विभीषण का साथ देकर वैयक्तिक स्तर की शक्ति को बढ़ाने की कोशिश नहीं की थी और न ही हमने अपने निजी स्वार्थो के लिए इतिहास का गलत प्रयोग किया था । रावण के विरूद्ध उस युद्ध में कोटि-कोटि नर-किन्नर-बानरों ने हमारा साथ दिया था, परन्तु वह सहयोग किसी निजी स्वार्थ से प्रेरित नहीं था । वास्तव में उस युद्ध के माध्यम से कुछ साधारण लोगों ने भय से व्याकुल और पीड़ित होकर अपने निजी अस्तित्व, स्वतन्त्रता, विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता, जीवन-मूल्यों और आदर्शो की स्थापना के उद्देश्य से अपने जीवन का बलिदान दिया था । रावण से किया गया युद्ध एक चक्रवर्ती सम्राट के विरूद्ध साधारण जनता का युद्धघोष था ।

टिप्पणी-

(1) प्रस्तुत पद्यावतरण में व्यक्ति-हित की अपेक्षा समाज-हित को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है।

(2) अवतरण की भाषा सरल एवं व्यंजनापूर्ण है ।

अवतरण 6 :

हम प्रत्येक बार
अथाह
द्वक्षान्त समुद्रों को चीर
क्षत-विक्षत
ज्यों ही शान्त तट पर
पहुँचने को होते हैं कि
एक घटना
एक व्यक्ति
फिर हमें तूफानों के उबलते
उफनतेपन में फेंक जाता है,
और हम
जल की विशाल हिल्लोलता में
विवश नारिकेल से
डूबने-उतराने लगते हैं ।
हमारा सारा व्यक्तित्व
सारा पुरुषार्थ
कैसा दिशाहारा हो जाता है सीता!
उस उतने बड़े यात्रा-पुरुषार्थ
और
यज्ञ-अरणियों की भाँति
एक-एक कर तुलते गये
मानवीय-उद्यम की व्यर्थता
जब आपके सामने
फिर नया संघर्ष खोल दे

तब आप क्या करेंगे?

कोई क्या करेगा?

शब्दार्थ -

अथाह = जिसकी गहराई न नापी जा सके । क्षत-विक्षत = घायल । नारिकेल = नारियल । दिशाहारा = लक्ष्यभ्रष्ट । अरणियों = अग्नियों । उद्यम = परिश्रम ।

प्रसंग-

प्रस्तुत अवतरण श्री नरेश मेहता द्वारा रचित खण्डकाव्य 'प्रवाद पर्व' के शक्ति : 'एक सम्बन्ध, एक साक्षात्' खण्ड से अवतरित है । राम एक धोबी के द्वारा सीता की पवित्रता पर उंगली उठाने के कारण चिन्तन में निमग्न हैं । वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि व्यक्ति चाहे साधारण हो या राज-परिवार से सम्बन्धित, सभी को अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार होना चाहिए, यही सच्चा जनतंत्र है । किन्तु लक्ष्मण, भरत तथा अन्य सभासद इसे राजद्रोह कहकर इसका विरोध करते हैं क्योंकि सीता की अग्निपरीक्षा हो चुकी है । तब राम धोबी की विचारगत अभिव्यक्ति के पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं । वे कहते हैं कि साधारण मनुष्य को विचारगत स्वतन्त्रता न देना एक प्रकार से साधारणता को इतिहासहीन करना है । ऐसा करने पर मुझमें और रावण में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा । मनुष्य सृष्टि की जिह्वा है । यदि उसी की अभिव्यक्ति पर रोक लगा दी गयी तो सृष्टि एक प्रकार से ईश्वरहीन और सारे काव्य, सारे मन्त्र, उपनिषद एवं पुराण सम्बोधनहीन हो जायेंगे । इसी चिन्तन की उद्विग्नता में वे शयनागार में पहुँच जाते हैं । सीता उन्हें उदास और खिन्न देखकर कारण पूछती है । दोनों के मध्य राजनीति, राज्य, व्यक्ति, नियति आदि विषयों पर वार्तालाप होता है । राम कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी-अपनी नियति होती है तथा हमने भी एकान्त घाटियों, वनों में वानरों और राक्षसों के बीच अपनी नियति को भोगा है ।

व्याख्या -

उक्त संदर्भ में ही राम सीता के समक्ष अपनी चिन्ता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यह नियति बड़ी विचित्र है । हम जैसे ही गहन उथल-पुथल से युक्त संकटों को पार कर थके-हारे और घायल अवस्था में किनारे तक पहुँचने वाले होते हैं कि शांति प्राप्त की जा सके अथवा राहत की साँस ली जा सके, तभी हमारे जीवन में कोई दूसरी ऐसी घटना घटित हो जाती है कि हम फिरे संकटों के चक्रव्यूह में घिर जाते हैं । हमारे जीवन में पुन: एक ऐसा व्यक्ति अवतरित होता है, जो हमारे जीवन की शांति को भंग कर देता है और हमें उबलते तूफानों के बीच फेंक जाता है । हम उन तूफानों की तपिश में उबलने को विवश हो जाते हैं । फलत: हम पुन: समय की जलधारा में उसी प्रकार डूबने-उतराने लगते हैं जैसे कोई नारियल विशाल जलराशि में फँसकर कभी डूबता है और कभी जल के ऊपर आ जाता है और तैरने लगता है । इन विषम परिस्थितियों और संकटों के बीच घिरकर हम अपने लक्ष्य से भटक जाते हैं । राम कहते हैं कि उस समय हम अत्यन्त विवश और असहाय हो जाते हैं । तब हमारी सम्पूर्ण जीवन-यात्रा में किये गये सारे कर्म, सभी श्रम व्यर्थ एवं निस्सार प्रतीत होते हैं । जिस प्रकार यज्ञ में दी गयी आहुतियाँ उसकी अग्नि में पहुँचकर भस्म हो जाती हैं, उसी प्रकार संकटों और संघर्षो की अग्नि में हमारे सभी कर्म व्यर्थ हो जाते हैं, क्योंकि एक संघर्ष से उबरने पर नियति हमारे समक्ष एक नया संघर्ष प्रस्तुत कर देती है । उस स्थिति में हे सीता, हम उस संघर्ष

से जूझने और उसके परिणामों को झेलने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकते । अन्त में राम सीता से यही कहते है कि ऐसी स्थिति में मैं और तुम ही क्या, कोई भी मनुष्य कुछ कर सकता।

टिप्पणी-

(1) कवि ने प्रस्तुत पद्यावतरण में मनुष्य को नियति के हाथ का खिलौना बतलाया है क्योंकि वह जिस प्रकार मनुष्य को नचाती है, उसी प्रकार नाचने के लिए वह विवश हो जाता है । स्वयं जयशंकर प्रसाद ने भी नियति को 'नटी' कहकर सम्बोधित किया है ।

(2) नारिकेल-से में उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है ।

(3) अवतरण में प्रतीकों के सुन्दर प्रयोग से जीवन्तता आ गयी है, यथा- अशान्त समुद्र, यज्ञ-अरणि।

अवतरण 7

सप्तपदी के बाद
तुम्हारे ये रक्त अलक्तक चरण
इक्ष्वाकुओं के राजभवन के
संगमरमरी सुगन्धित दालानों में नहीं न
वरन
निषाद गुह और राक्षसों से भरे
असुरक्षित
अगम अरण्यों की ओर बढ़ेंगे?
चीनांशुक वल्कल में परिणत हो जाएगा
और हम
अपने राजसी कुल-गोत्र को
खण्डित यज्ञोपवीत की भाँति उतार
साधारण अनामता धारण कर
नितान्त पृथ्वीपुत्र कर दिये जाएँगे ।
हमारे वैवाहिक जीवन का
यह कैसा राजसी समारम्भ था प्रिये!

शब्दार्थ -

सप्तपदी = विवाह की प्रमुख रस्म, फेरे । चीनांशुक = रेशमी वस्त्र । वल्कल= छाल के कपड़े । खण्डित = टूटा हुआ। यज्ञोपवीत = जनेऊ । पृथ्वी पुत्र = साधारण जन । अनामता = बिना नाम का ।

प्रसंग -

प्रस्तुत अवतरण श्री नरेश मेहता द्वारा रचित खण्डकाव्य 'प्रवाद पर्व' के 'शक्ति एक सम्बन्ध, एक साक्षात' खण्ड से अवतरित है । प्रस्तुत भाग में राम और सीता के मध्य राजनीति, राज्य, व्यक्ति, नियति जैसे विषयों पर पारस्परिक वार्तालाप का चित्रण किया गया है । वे कहते हैं कि हे प्रिये, हम दोनों के मध्य नियति बार-बार क्रूरतापूर्वक एक अभेद्य दीवार खड़ी कर देती है और हम उस प्राचीर से टकरा-टकराकर लौटने के लिए विवश हो जाते हैं । हमारा यही संघर्ष, यही त्याग और समाज की

मर्यादाओं की रक्षा के लिए किया गया यही प्रयास हमें इतिहास-पुरुष बना देता है । काल हमें अपने उपनिषद में मात्र एक वाक्य के रूप में प्रयुक्त करता है और हमें किसी अज्ञात शून्य में फेंक देता है । वे कहते हैं कि कभी-कभी तो मुझे ऐसा अहसास होता है कि जैसे हम इतिहास के उपवन में उगी वनस्पतियों के समान हैं जो इतिहास को सौंदर्य एवं क्षणिक गंध प्रदान करती हैं । मैंने जितना अधिक तुम्हें पाने का प्रयास किया है, मैं तुम्हें उतना ही अधिक खोता गया हूँ । पहले हमारे अलगाव के लिए रावण ने हमारे द्वार की साँकल बजाई थी और अब एक अनाम साधारण जन द्वार खटखटा रहा है ।

व्याख्या -

उपरोक्त संदर्भ में ही राम कहते हैं कि विवाह की सबसे महत्वपूर्ण रस्म सप्तपदी के पश्चात तुम्हारे ये कोमल, अरुणिम चरण इक्ष्वाकु राजवंश के राजभवन के संगमरमर से बने भव्य आँगन में इसलिए तो नहीं पड़े थे कि तुम्हें राजभवन के सुख के स्थान पर वन में सुविधाहीन कठोर जीवन जीना पड़े । तुम्हें राज-परिवार में रहना चाहिए था, परन्तु नियति ने तुम्हारे लिए पृथक विधान की व्यवस्था की थी । उसी व्यवस्था के अन्तर्गत तुम्हें उन भयानक, दुर्गम, घने और असुरक्षित वनों में निषाद, गुह तथा राक्षसों के बीच रहने को विवश होना पड़ा । तुम्हारे रेशमी वस्त्र छाल से बने वल्कल वस्त्रों में परिवर्तित हो गये अर्थात् तुम्हें अपने राजसी रेशमी वस्त्र उतार कर वल्कल वस्त्र धारण करने पड़े । आगे वे कहते हैं कि हमें नियति ने अपने राजसी कुल-गोत्र को त्यागने के लिए उसी प्रकार विवश किया जिस प्रकार कोई अपने खण्डित यज्ञोपवीत को त्यागने के लिए विवश होता है । इस प्रकार अपने राजकुल विषयक समस्त चिह्नों को त्यागकर हमें एक साधारण मनुष्य का रूप धारण करना पड़ा । मैं आज तक यह नहीं समझ पाया हूँ कि यह हमारे वैवाहिक जीवन की कैसी राजसी शुरुआत थी?

टिप्पणी -

(1) प्रस्तुत पद्यावतरण में कवि ने बतलाया है कि किस प्रकार राम और सीता के राजकुलीय विवाह-सम्बन्ध के पश्चात् भी उन्हें नियति के हाथों का खिलौना बनकर एक साधारण व्यक्ति के समान वनों में भटकना पड़ा ।

(2) पद्यावतरण की भाषा में एक अद्भुत पावनता एवं वैष्णवता है ।

(3) शब्द-प्रयोग असाधारण एवं सांस्कृतिक बोध से युक्त है, यथा-अलक्तक चरण, चीनांशुक, वल्कल, यज्ञोपवीत आदि ।

अवतरण 8 :

एक निष्णात त्रासदी
जिसके गौण पात्र
स्थान, संदर्भ बदल गये हैं
परन्तु
मुख्य पात्र
वही तीनों हैं-
राम, सीता और लक्ष्मण!

किस महोत्सव के अवसर पर
किस प्रयोजन पर
यह त्रासदी खेली जा रही है
कोई नहीं जानता राम!!
कोई नहीं!!

शब्दार्थ -

त्रासदी = दुखद घटना ।

प्रसंग -

प्रस्तुत अवतरण श्री नरेश मेहता द्वारा रचित खण्डकाव्य 'प्रवाद पर्व' के अन्तिम भाग 'निर्वेद विदा' से अवतरित है । राम सीता के पुन: वनवास का निर्णय ले चुके हैं । वे सभा के मध्य यह घोषणा करते हैं कि प्रजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए कल सूर्योदय के साथ ही सीता वनवास के लिए प्रस्थान करेगी । वनवास-काल में उन्हें कोई राजकीय पद, मर्यादा, सुविधा और सुरक्षा प्राप्त नहीं होगी तथा राज्य की सीमा के अन्त तक लक्ष्मण उनके सारथि बनकर उन्हें वन तक छोड़ने जायेंगे । राम का यह निर्णय सुनकर सभी अवाक् रह जाते हैं तथा अगले दिन सूर्योदय के साथ ही सीता लक्ष्मण के साथ वन के लिए प्रस्थान करती है । राम उनके रथ को उदास भाव से दूर जाते हुए देखते हैं । वे स्वगत कहते हैं कि जिस प्रकार आज तुम प्रिया के रथ को वन की ओर जाते देख रहे हो, क्या उसी प्रकार कभी इस रथ का लौटना भी देख सकोगे? वे सोचने लगते हैं कि सीता यज्ञ के चरुपात्र की तरह पवित्र और मांगलिक है, परन्तु फिर भी उनके ऐतिहासिक निर्णय के कारण लक्ष्मण उन्हें राज्य की सीमा तक छोड़ने जा रहे है । वे स्वयं से कहते हैं कि हे राम, क्या कभी तुमने यह सोचा था कि इसी दिन तुम स्वयं अपनी प्रिया को रेशमी वस्त्रों के स्थान पर वल्कल पहनाओगे? उन्हें याद आता है कि एक दिन इसी प्रसंग पर वार्तालाप के दौरान सीता ने ठीक ही कहा था कि जब मनुष्य इतिहास के लिए समर्पित हो जाता है, तब इस प्रकार की दुखद घटना का घटित होना आवश्यक हो जाता है । वे सोचते हैं कि क्या वे राज्य के लिए अपनी प्रिया को अनासक्त भाव से विदा कर सकते हैं? शायद नहीं, क्योंकि उन्होंने तो जीवन भर वनवास ही भोगा है, कभी राज्य तो किया ही नहीं । उन्हें लगता है कि प्रथम वनवास के ही नाटक को उसके जीवन में दोहराया जा रहा है, केवल स्थान, संदर्भ एवं मुद्राएँ बदल गयी हैं ।

व्याख्या -

प्रस्तुत पंक्तियों में राम सीता को पुन: लक्ष्मण के साथ वन की ओर जाते हुए देखकर सोचने लगते हैं कि जीवन में मनुष्य की इच्छा से कुछ नहीं होता है । सब कुछ नियति के द्वारा पूर्व-निर्धारित होता है । वे सोचने लगते हैं कि उनके जीवन में आज से चौदह वर्ष पहले वनवास की जो दुखद घटना घटित हुई थी, वही त्रासदी आज पुन: घटित हो रही है, परन्तु इस घटना में गौण पात्र बदल गये हैं, परन्तु प्रमुख पात्र यथावत है, अर्थात् प्रमुख पात्र वही तीनों राम, सीता और लक्ष्मण हैं । इस घटना में स्थान और संदर्भ पहले के संदेश नहीं हैं, उनमें भी बदलाव आ गया है । पुन: वे सोचते हैं कि आज यह त्रासदी किस महोत्सव के अवसर पर और क्यों आयोजित की जा रही है, यह कोई नहीं जानता ।

टिप्पणी -

(1) प्रस्तुत पद्यावतरण में कवि ने राम के खिन्न एवं उदास मन का मर्मस्पर्शी एवं यथार्थपरक चित्रण किया है ।

(2) कवि ने यहाँ यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि जीवन में दुखद घटनाएँ, कब, क्यों और किस उद्देश्य से घटित होती हैं, व्यक्ति के लिए यह सदैव रहस्य ही बना रहता है, किन्तु इतना निश्चित है कि त्रासदी के मूल में सदैव किसी महान आदर्श की स्थापना के बीज निहित होते हैं ।

14.5 सारांश

'प्रवाद पर्व' एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि एक साधारण जन की अभिव्यक्ति को भी पूरा महत्व मिलना चाहिए तथा शासक को तटस्थ एवं अनासक्त मनःस्थिति से युक्त होना चाहिए । उन्होंने यह व्यक्त कर दिया है कि न्याय और कानून से ऊपर कोई नहीं हो सकता है । यहाँ कवि ने सीता के चरित्र को मानवीय आदर्शों और इतिहास-पुरुष की कर्तव्यशीलता के प्रति समर्पित बताते हुए सीता की संस्कारशीलता को भारतीय स्थिति के अनुरूप दृढ़ करने का भी प्रयास किया है । इसमें हम आपातकाल का सामयिक संदर्भ और सत्ता के तानाशाही रूप का भी यथार्थ अंकन देख सकते हैं । अमियचन्द पटेल ने इस संदर्भ में लिखा है कि "कवि युगबोध और समसामयिक परिस्थितियों से जूझता हुआ मानवीय चेतना के विकास को प्रज्ञा-प्रतीक राम के माध्यम से व्यक्त करने में पूरी तरह समर्थ हुआ है ।

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 : निम्नलिखित पद्यावतरणों की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए और आवश्यकतानुसार टिप्पणी भी दीजिए-

(1)

पूरे समय
अपने व्यक्तित्व में
यह अग्निपर्व
यह आवाहोत्सव धारण किए रहना
अपने को
प्रतिहवन-कुण्ड बना लेना है राम!
छूब की अनामता से लेकर
अनन्त आयामी
मानवीय प्रज्ञा तक -
अग्नि, जल, वायु
जन्म-मृत्यु के सदाशिव और पाशुपत श्लोकों में
यह कैसा लीलामय अभिषेक

सम्पन्न हो रहा है ।
यही है वह रुद्रपाठ
जो सृष्टि के मन्वन्तर-स्वरूप में
अहोरात्र उच्चरित है ।
(2)
इतिहास
खड्ग से नहीं
मानवीय उदात्तता से लिखा जाना चाहिए ।
क्या होगा
इतिहास को इतना दास बनाकर कि
वह राजभित्तियों पर चित्रित तथा
शिलालेखों पर उत्कीर्णित
हमारी चारण-गाथा लगे,
और जीवन्तता के अभाव में
उन चित्रों, शिलालेखों को
काल
अपने में लीन कर
इतिहासहीन कर दे ।
(3)
भरत : न्याय समदर्शी होता है प्रभु!
राम: केवल समदर्शी ही नहीं उसे तत्वदर्शी भी होने दो ।
राजभवनों और राजपुरुषों से ऊपर
राज्य और न्याय को
प्रतिष्ठापित होने दो भरत!
यदि ये तत्वदर्शी नहीं होते
तो एक दिन
निश्चय ही ये भय के प्रतीक बन जाएँगे,
और
तब कौन इसमें
प्रजा बनकर रहना चाहेगा?
राज्य को सामूहिक आकांक्षा का
प्रतीक बनने दो भरत!
प्रजा के भी अधिकार होते हैं ।
(4)
क्या
इतिहास को हमने

वैयक्तिकता के लिए माध्यम बनाया था?
नहीं
नहीं लक्ष्मण!
अनाम लोगों और
भयातुर,
प्रताड़ित प्रजा ने
अपने स्वत्व
स्वाधीनता, अभिव्यक्ति और
जीवन-मूल्यों तथा आदर्शों के लिए
प्राणार्पण किया था,
एक चक्रवर्ती के विरुद्ध
साधारणता ने
युद्ध का आवाहन किया था ।

(5)

यह धूप का महोत्सव
दाक्षिणात्य चन्दनगंधी हवाएँ
गन्धमादन की पुष्पीय विपुलता
वानस्पतिकता का उदार
विपुल परिवार
आकाश-गंगा से लेकर
ग्राम्य-गंगा तक की यह
सम्पूर्ण विराट- विनम्र
सृष्टि-
किसके माध्यम से बोलती है लक्ष्मण?
कौन है सृष्टि की बाँषी-भाषा?
बंधु!
मनुष्य,
एक मात्र मनुष्य ही
सृष्टि की जिह्वा है ।

14.7 संदर्भ ग्रंथ

1. नरेश मेहता; दूसरा सप्तक
2. डॉ. रामकमल राय; कविता की ऊर्ध्वयात्रा
3. श्रीराम वर्मा; संशय की एक रात : अभिव्यक्ति का स्वरूप
4. डॉ. विष्णु प्रभा शास्त्री; नरेश मेहता की वैष्णव काव्य-यात्रा
5. महिमा मेहता; उत्सवप्रिय श्री नरेश मेहता

6. डॉ. प्रभाकर शर्मा; नरेश मेहता का काव्य : विमर्श और मूल्यांकन

इकाई - 15

प्रवाद पर्व का अनुभूति पक्ष

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 'प्रवाद पर्व' का अनुभूति पक्ष

15.2.1 अनासक्त कर्म की पक्षधरता

15.2.2 साधारण जन की प्रतिष्ठा

15.2.3 प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना

15.2.4 समसामयिकता

15.2.5 व्यक्ति बनाम इतिहास

15.2.6 राजनैतिक मूल्य

15.2.7 नर-नारी के प्रति समान दृष्टि

15.2.8 मानवीय दृष्टिकोण

15.2.9 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

15.2.10 सांस्कृतिक चेतना

15.2.11 विवशताजनित पीड़ाबोध

15.3 सारांश

15.4 पाठ में संकलित संदर्भ

15.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.6 संदर्भ ग्रंथ

15.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई कें अध्ययन के पश्चात् आप -

- पाठ्यक्रम में निर्धारित श्री नरेश मेहता के खण्डकाव्य 'प्रवाद पर्व' की मूल संवेदना से अवगत हो सकेंगे ।
- विद्यार्थी न केवल प्रस्तुत खण्डकाव्य के मूल कथ्य को समझ सकेंगे, बल्कि श्री नरेश मेहता की काव्य-चेतना से भी परिचित हो सकेंगे ।
- कवि अपनी रचनाधर्मिता के बल पर पौराणिक संदर्भो के माध्यम से समसामयिक परिवेश में मूल्यों की स्थापना के लिए किस प्रकार प्रयत्नशील रहता है, यह जान सकेंगे ।

15.1 प्रस्तावना

श्री नरेश मेहता द्वारा रचित 'प्रवाद पर्व' खण्डकाव्य उनकी एक अनुपम कृति है । यह कृति राम के सीता और लक्ष्मण सहित चौद्ह वर्ष का वनवास पूर्ण करने के पश्चात् अयोध्या लौटने तथा एक धोबी के द्वारा सीता की पावनता पर उंगली उठाने के रामायणगत संदर्भ पर आधारित है । यह

कृति आपातकाल के दौरान सन् 1975 में लिखी गयी थी, परन्तु इसका प्रकाशन 1977 में आपातकाल के पश्चात् ही हुआ। अत: इस कृति में सीता की पावनता पर एक धोबी के द्वारा लगाये गये प्रश्नचिह्न के माध्यम से कवि ने पूर्ण कौशल के साथ तत्कालीन समसामयिक संदर्भो को अभिव्यक्त किया है । तत्कालीन परिवेशजनित अनेक राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रश्न उठाये हैं तथा उनके समाधान भी तलाशने का प्रयास किया है ।

15.2 प्रवाद पर्व का अनुभूति पक्ष

'प्रवाद पर्व' श्री नरेश मेहता की रामायण के एक मार्मिक प्रसंग पर आधारित अनुपम काव्य-कृति है । यह काव्य-कृति रामायण के उस प्रसंग को आधार बनाकर लिखी गयी है जिसमें राम सीता एवं लक्ष्मण के साथ वनवास एवं रावण-वध के पश्चात् अयोध्या लौटते हैं, समस्त प्रजा एवं राजपरिवार उनका हर्षोल्लास के साथ स्वागत करता है । राम राजगद्दी संभालते हैं तथा सभी राजनीतिक आदर्शो एवं मूल्यों की रक्षा करते हुए अपने भाइयों एवं मंत्रिमण्डल के सहयोग से शासन करने लगते है । कुछ ही समय बाद उनकी प्रजा का एक मामूली-सा धोबी सीता की अग्निपरीक्षा से प्रमाणित एवं सिद्ध पावनता पर पुन: एक प्रश्नचिह्न लगा देता है । राज्य-व्यवस्था के अनुसार वह धोबी अपराधी था, उत्तरदायित्वहीन एवं राजद्रोही था, परन्तु राम की दृष्टि में वह न तो अपराधी है, न उत्तरदायित्वहीन है और न ही राजद्रोही है । राज्य-परिषद का निर्णय है कि उस धोबी को इस भयंकर अपराध के लिए दण्डित किया जाना चाहिए, परन्तु राम इस निर्णय से सहमत नहीं हैं । वे व्यक्ति-स्वातंत्र्य एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं, इसलिए उनकी दृष्टि में मनुष्य चाहे राजपरिवार से सम्बन्धित हों या सामान्य परिवार से, उसे हर स्थिति में अपने विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए । वस्तुत: प्रजातंत्र में यह उसका मूल अधिकार है, जिससे उसे किसी भी स्थिति में वंचित नहीं किया जा सकता । यही वह मूल 'प्रवाद' है जिसे कवि ने प्रस्तुत काव्य में उठाया है । इसी के सहारे उन्होंने तत्कालीन राजनीति से सम्बन्धित कई अन्य प्रश्न भी उठाये हैं जो प्रस्तुत काव्य के अनुभूति पक्ष का सबल पक्ष प्रस्तुत करते हैं ।

प्रभाकर शर्मा के शब्दों में, पाँच खण्डों में विभक्त इस काव्य का सृजन मई-जून 1975 में हो गया था और तभी देश में आपात स्थिति लागू हो गयी थी । यही वजह है कि इसमें नरेश मेहता ने रामायण के एक मार्मिक प्रसंग की प्रस्तुति समकालीन बोध से जोड़कर की है । रावण-वध के बाद राम अयोध्या तो आ जाते हैं, शासन-भार तो संभाल लेते हैं किन्तु उनकी प्रजा का एक साधारण धोबी सीता की चरित्र-मर्यादा पर उंगली उठा देता है । राज्य व्यवस्था के अनुसार उसे अपराधी, अनुत्तरदायित्वपूर्ण और राजद्रोही करार दिया जाता है । यही प्रवाद है कि वह अनाम और साधारण जन राम की दृष्टि में न तो अपराधी है, न राजद्रोही है, किन्तु राज्य-परिषद की निगाह में वह अपराधी है - दण्ड का अधिकारी है । बस इसी विवाद से इस काव्य की भूमि पटी हुई है और इसी को हल करने के प्रयास में कवि अनेक प्रश्न और भी उठाये हैं । व्यक्ति-स्वातंत्र्य, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और ऐसे ही विविध प्रश्नों से जूझता हुआ कवि व्यक्ति और प्रशासक के सम्बन्धों पर भी विचार प्रस्तुत कर सका है । नरेश ने राम के प्रश्निल व्यक्तित्व के सहारे मानवीय चिन्तक और आधुनिक व्यक्ति

के संघर्श को प्रस्तुत किया है । कवि का मानवीय दृष्टिकोण आद्यन्त रचना में व्याप्त है । प्रस्तुत काव्य-कृति के अनुभूति पक्ष को अग्रांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है।

15.2.1 अनासक्त कर्म की पक्षधरता

प्रस्तुत काव्य का प्रारम्भ उसके प्रथम भाग 'इतिहास और प्रतिइतिहास से हुआ है । काव्य का प्रारम्भ ही कवि ने अनासक्त कर्म की पक्षधरता से किया है । राम अयोध्या के राजभवन के एक कक्ष में उद्विग्न भाव से टहल रहे हैं औ सोच रहे हैं कि क्या मनुष्य का भाग्य यही है कि वह निरन्तर बिना उसके परिणाम के विषय में सोचे, अनासक्त भाव से कर्म करता चला जाये? वे मन ही मन सोचते हैं कि अनासक्त भाव से कर्म करना अत्यन्त दुष्कर कार्य होता है, क्योंकि इस प्रकार के कर्म मनुष्य के व्यक्तित्व को उसके सभी रागात्मक सम्बन्धों से काटकर अलग कर देते हैं । संभवत: वह इसीलिए देश और काल के दो विपरीत ध्रुवों के मध्य आजीवन एक प्रत्यंचा के समान तना रहता है और कर्म के बाणों को वहन करता रहता है । कर्म रूपी बाणों के माध्यम से प्रत्येक मनुष्य पात्र या अपात्र, दिशा या अदिशा में संधान करता रहता है, क्योंकि मनुष्य नियति के द्वारा निर्धारित कर्म करने के लिए विवश है । यदि वह आसक्त भाव से कर्म करता है तो उसे असफल होने पर पीड़ाबोध और सफल होने पर अहंकारबोध से ग्रसित होना पड़ता है । इसलिए उसे अनासक्त कर्म करने के लिए तत्पर रहना चाहिए । यहाँ कवि की विचारधारा गीता के निष्काम कर्म की अवधारणा के निकट प्रतीत होती है जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' कहकर निष्काम कर्म करने की प्रेरणा दी थी । यहाँ भी कवि ने लिखा है कि मनुष्य के प्रारब्ध में ललाट पर नियति ने निर्मम य अनासक्त कर्म रूपी अग्नि का तिलक लगा दिया है तथा सभी मनुष्य इसी भयानक कर्म की भट्टी में निर्धूम जल रहे हैं-

कहीं भी चले जाओ
किसी भी
गत या आगत शताब्दी में
असंग या
स्मृतिहीन बनकर
यात्रा
प्रतियात्रा कर आओ
पर
कर्म के इस तटस्थ
भागवत अनुष्ठान से
कोई मुक्ति नहीं
कोई निष्कृति नहीं!!

15.2.2 साधारण जन की प्रतिष्ठा

नये काव्य में श्री नरेश मेहता के प्रस्तुत काव्य 'प्रवाद पर्व' का उल्लेखनीय स्थान है । नयी कविता की लगभग सभी विशेषताएँ इस काव्य में दृष्टिगत होती हैं । नयी कविता के सदृश यहाँ भी लघुता अर्थात् साधारण जन की प्रतिष्ठा की गयी है । प्रस्तुत काव्य का सम्पूर्ण कथ्य कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में साधारण जन की गरिमा की स्थापना के लिए प्रयत्नशील दिखाई देता है । सीता की अग्निपरीक्षा सिद्ध पावनता पर एक अनाम धोबी के द्वारा उंगली उठाना प्रमाणित करता है कि समाज केवल उच्च और प्रबुद्ध अथवा राजपुरुषों से ही नहीं बनते हैं, वरन् उनमें साधारण जनों की भी अहम् भूमिका होती है । यही कारण है कि राम की दृष्टि में राजकुल की मर्यादा पर उंगली उठाना उस साधारण धोबी क मूलभूत अधिकार है जबकि राजसभा एवं राजपरिवार के अन्य सदस्यों की दृष्टि में यह भयंकर अपराध है तथा एक प्रकार से राजद्रोह है । कवि ने लिखा है-

तर्जनी
वह किसी की भी हो
वाणी ही होती है ।
यह कोई आवश्यक नहीं कि
शक्ति
केवल मंत्रों और श्लोकों में ही हो ।
अनेक बार
ऐसी ऐतिहासिक अनाम तर्जनी में भी
इतिहास को
प्रतिइतिहास में बदल देने की शक्ति होती है ।

कवि ने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि अधिकार केवल राज्य या राजपुरुषों या इतिहास-पुरुषों के ही नहीं होते, बल्कि अनाम साधारण जन के भी होते हैं । जब-जब इतिहास में साधारण जन की आवाज को दबाने की कोशिश की गयी है, तब-तब वही साधारण जन अपनी कर्मठतापूर्ण साधारणता के साथ ही अपने अस्तित्व को प्रमाणित करते हुए इतिहास-पुरुष बन जाते हैं । इसलिए कवि ने लिखा है कि राज्य में सब कुछ किया जाना चाहिए परन्तु किसी भी स्थिति में उस अनाम जन की साधारणता को इतिहासहीन नहीं किया जाना चाहिए अर्थात् साधारण जन के स्वर को भी इतिहास में उतना ही महत्व दिया जाना चाहिए जितना कि राजपुरुषों की वाणी को । यह कोई आवष्यक नहीं होता है कि सत्य सदैव अपनी ऐतिहासिक अभिव्यक्ति के लिए केवल राजपुरुषों अथवा पंडितों का चयन करे । कभी-कभी सत्य एक अनाम साधारण जन के माध्यम से भी स्वयं को अभिव्यक्त करता है ।

15.2.3 प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना

श्री नरेश मेहता ने 'प्रवाद पर्व' नामक काव्य में लघु मानव की प्रतिष्ठा के द्वारा प्रजातांत्रिक मूल्यों को स्थापित करने का सफल प्रयास किया है । वास्तव में देखा जाये तो रामायण का जो प्रसंग कवि ने उठाया है, उसके मूल मे उसका यही उद्देश्य निहित प्रतीत होता है । ध्यान रहे कि कवि ने प्रस्तुत काव्य की रचना 1975 में आपातकाल के दौरान की थी । भारत के इतिहास में यह वह समय

था जब आपातकाल की आड़ में देश में स्थापित प्रजातांत्रिक मूल्यों पर प्रहार किया जा रहा था । किसी भी रचनाकार की रचनाधर्मिता उसे परिवेश के प्रति सजग रहने की प्रेरणा देती है । यही कारण है कि कवि ने अपने समसामयिक परिवेश में ह्रासमान और दमित किये जा रहे प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना के लिए 'प्रवाद पर्व' के रूप में अपना स्वर बुलन्द किया है । प्रजातंत्र में वर्गभेद नहीं होता । मनुष्य की समानता की स्थापना होती है तथा प्रत्येक वर्ग के मनुष्य को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त होती है । प्रस्तुत काव्य में एक साधारण धोबी के द्वारा सीता की पावनता पर उठायी गयी उंगली को राजपरिवार एवं सभासद राजद्रोह एवं अनधिकार चेष्टा के रूप में ग्रहण करता है जबकि राम उनके इस मत का स्पष्ट विरोध करते हैं । वे कहते हैं कि सच्चे प्रजातंत्र में सभी मनुष्यों को अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार होना चाहिए परंतु दुर्भाग्यवश जब-जब राजतंत्र ने सशक्त रूप धारण किया है, तब-तब सबसे पहला आघात साधारण जन की भाषा पर किया गया है । वह सदा ही समाज के लिए शारीरिक श्रम करने वाला एक साधन मात्र रहा है, परन्तु यह सत्य है कि साधारण जन के स्वर को किसी भी राजाज्ञा या राजकीय आदेश से नहीं दबाया जा सकता है और न ही उस अनाम तर्जनी को झुकाया जा सकता है, क्योंकि गरिमा, चरित्र और अधिकार सभी वर्गो के लिए समान रूप से निर्धारित होते हैं । इन पर केवल राजपुरुषों या इतिहास-पुरुषों का ही एकाधिकार स्थापित नहीं होता । वे कहते है-

सब कुछ किया जा सकता है
किया भी जाना चाहिए
परन्तु
मनुष्य
उसकी अनाम साधारणता को
इतिहासहीन नहीं ।

यदि हम मनुष्य की अनाम साधारणता को इतिहासहीन करने का प्रयास करेंगे तो राजभित्तियों पर चित्रित तथा शिलालेखों पर उत्कीर्णित इतिहास वास्तव में इतिहास न रहकर हमारी चारण-गाथा बन कर रह जायेगा । उसमें सत्य का अंश न रहने से उसकी जीवन्तता भी निःशेष हो जायेगी । सभा में जब सभी सभासद एवं भरत तथा लक्ष्मण सीता की पावनता पर तर्जनी उठाने वाले धोबी का विरोध करते हैं तब राम स्पष्ट शब्दों में प्रश्न करते हैं कि यदि वह इस तरह का दोष किसी अनाम नारी पर लगाता, तब भी क्या आप लोग उसकी चेष्टा को अनधिकार चेष्टा ही कहते? संभवत: नहीं । तब लक्ष्मण उत्तर देते हुए कहते हैं कि देवी सीता की तुलना किसी अन्य साधारण स्त्री से करना अनुचित है । प्रत्युत्तर में राम का यह कथन प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना की दिशा में उठाया गया एक ठोस कदम प्रतीत होता है । वे कहते हैं कि हममें से संभवत: किसी को यह प्रिय नहीं कि सीता की तुलना एक साधारण स्त्री से की जाये, परन्तु हमें इस बात पर अपना ध्यान केन्द्रित न करते हुए केवल इस बात की और अधिक ध्यान देगा चाहिए कि राज्य के हित में क्या है? आज तक हमारे इन कानों तक किसी अनाथ नारी की असहाय अवमानना का स्वर नहीं पहुँचा, फिर हम सीता से जुड़े इस प्रश्न को इतना महत्व क्यों दें? राजशक्ति केवल राजपरिवार की धरोहर नहीं है, वह जंगल

में लकड़ियाँ बीन कर गुजारा करने वाली निर्धन असहाय स्त्री के लिए भी वही है जो राजमहिषी सीता के लिए है । उनका यह कथन स्पष्टत: प्रजातांत्रिक मूल्यों का पक्षधर प्रतीत होता है-

लक्ष्मण!
सम्बन्ध नहीं होता ।
सत्ता के गोमुख पर बैठकर ।
उसके सारे शक्ति-जलों को
अपने ही अभिषेक के लिए
सुरक्षित रखना-
वह कौन सा दर्शन है लक्ष्मण?

आगे वे कहते हैं कि सच्चा न्याय वही है जो समदर्शी होने के साथ-साथ तत्वदर्शी भी हो जो राजभवनों और राजपुरुषों से ऊपर स्थापित हो, क्योंकि यदि न्याय को समदर्शी के साथ-साथ तत्वदर्शी नहीं बनाया गया तो वह एक दिन अवश्य ही भय का प्रतीक बन जायेगा । उस स्थिति में कोई भी नागरिक इस तरह के भयाक्रान्त राज्यों में रहना पसन्द नहीं करेगा । स्वतंत्रता एवं प्रजातांत्रिक मूल्य सभी को प्रिय होते हैं-

राज्य को सामूहिक आकांक्षा का
प्रतीक बनने दो भरत!
प्रजा के भी अधिकार होते हैं ।

प्रस्तुत काव्य में प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना के संदर्भ में कवि ने रावण का उदाहरण भी दिया है । अपने भाइयों एवं सभासदों से उक्त प्रवाद पर बातचीत करते समय राम कहते हैं कि यदि हम राज्य में प्रजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा नहीं कर सकेंगे तो हममें और लंकाधिपति रावण में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा । वे उन्हें याद दिलाते हैं कि हमने केवल सीता को प्राप्त करने के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित होकर उससे युद्ध नहीं किया था, यह तो एक बहाना मात्र था । वास्तव में तो हम उसे युद्ध में परास्त कर उसके भय और आतंक से ग्रस्त और त्रस्त प्रजा को उनके अधिकार दिलवाना चाहते थे, वहाँ प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना करना चाहते थे । लंका में प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्ष करने के उपरान्त अपने राज्य में उनकी अवमानना और उपेक्षा करना अनुचित है ।

15.2.4 समसामयिकता

'प्रवाद पर्व' समसामयिक बोध से युक्त काव्य है । कवि ने 1975 के आपात्काल के दौरान प्रजातांत्रिक मूल्यों पर सत्ता द्वारा किये गये कुठाराघात के विरूद्ध अपना स्वर बुलन्द किया है । सीता की पावनता पर एक अनाम साधारण जन द्वारा उठायी गयी तर्जनी यहाँ वास्तव में प्रजा के अधिकारों की प्रतीक है, सत्ता के मद में चूर राजनेताओं के समक्ष खड़ा किया गया एक सशक्त प्रश्नचिह्न है । लक्ष्मण और भरत जब धोबी के द्वारा सीता की पावनता पर उठायी गयी उँगली का विरोध करते हैं और कहते हैं कि उसे ऐसा कहने से पहले तनिक सोच लेना चाहिए था, तब राम उनके मत का विरोध करते हुए कहते हैं कि यदि वह धोबी अपना विचार व्यक्त करने से पहले सोच लेता तो शायद यह तथ्य कभी हमारे सामने नहीं आता । कई बार बोलने से पहले मस्तिष्क का प्रयोग

हमारी अभिव्यक्ति पर नियंत्रण लगा देता है । इसलिए इस प्रकार गूंगे होने की अपेक्षा वाचालता अधिक श्रेयस्कर है, क्योंकि वह अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, राज्य के विकास में सहयोग देती है । इस वार्तालाप के माध्यम से कवि ने आपातकालीन स्थिति में वाणी की स्वतंत्रता पर लगे प्रतिबन्ध की ओर स्पष्ट संकेत किया है । वे कहते हैं कि रावण जैसा शक्ति-सम्पन्न सम्राट अत्यन्त मेधावी, तेजस्वी एवं पण्डित था, परन्तु सत्ता के मद ने उसके श्रेयस चिन्तन पर रोक लगा दी थी । इसलिए वह सोचता था तो अपने लिए, करता था तो अपने लिए । उसका आतंक इतना अधिक बढ़ गया था कि उसकी प्रजा की तो बात ही क्या, समस्त दिशाएँ भी उससे भयाक्रान्त रहती थीं । उसके सभी सभासद, मंत्री तथा अन्य कर्मचारी उसकी निरंकुशता के क्रियान्वयन का माध्यम बन गये थे । उस विकट स्थिति में उसकी प्रजा में से किसी भी साधारण जन ने उस पर तर्जनी उठाने या उसकी निरंकुश सत्ता का विरोध करने का साहस नहीं था । इसलिए उसी के राजपरिवार के एक व्यक्ति को (विभीषण को) प्रजा का प्रतिनिधित्व करते हुए उसकी निरंकुशता का विरोध करना पड़ा था । हमने भी दक्षिण के करोड़ों नर-किन्नरों के लिए उससे संघर्ष नहीं किया था, बल्कि उस भयातुर प्रजा के स्वत्व, स्वाधीनता, अभिव्यक्ति और जीवन-मूल्यों तथा आदर्शों की रक्षा के लिए ही उससे संघर्ष किया था । इस प्रसंग में समसामयिक बोध आद्यन्त विद्यमान है ।

आपातकाल के दौरान हमारे देश में भी सत्ता के मद में चूर राजनेताओं का भयानक आतंक व्याप्त हो गया था । लोग अपने विचार व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र नहीं थे । अपने अधिकारों की रक्षा के लिए जिन-जिन लोगों ने आवाज उठाई, उन्हें राजनीतिक दमन-चक्र में पीसकर रख दिया गया । असंख्य लोगों को उस समय भी अपने स्वत्व एवं अधिकार के लिए बलिदान देना पड़ा था । अन्ततः वहाँ भी विजय प्रजातांत्रिक मूल्यों की ही हुई, प्रजा के अधिकारों की ही हुई । अतः प्रजा के अधिकारों का हनन किसी भी स्थिति में नहीं किया जाना चाहिए, यही स्थापित करने का प्रयास श्री नरेश मेहता ने इस खण्डकाव्य में किया है । इसलिए इसे समसामयिकता से युक्त काव्य ही माना जाना चाहिए ।

15.2.5 व्यक्ति बनाम इतिहास

श्री नरेश मेहता ने प्रस्तुत काव्य में यह स्थापित किया है कि किसी भी राज्य के साधारण से साधारण व्यक्ति की भी इतिहास-सृजन में महती भूमिका होती है । इसलिए वे उस अनाम साधारण धोबी द्वारा सीता की पावनता पर उठाई गयी तर्जनी को विशेष महत्व देते हैं । राज-परिवार एवं समस्त सभासद इस तर्जनी का विरोध करते हैं, उस साधारण व्यक्ति की वाणी का विरोध करते हैं और एक प्रकार से व्यक्ति का विरोध करते हैं । उनकी दृष्टि में सीता की पावनता पर उँगली उठाने से पहले उसे सोच लेना चाहिए था । राम उनके इस मत को स्वीकार नहीं करते हैं । वे स्पष्ट कहते हैं कि इतिहास-रचना केवल राज-परिवारों और राज्य का दायित्व नहीं है । उसमें राज्य के प्रत्येक नागरिक की बराबर भूमिका होनी चाहिए अन्यथा वह राजकुलों का प्रशस्ति-लेख मात्र बनकर रह जायेगा । वे उस धोबी की विचारधारा का पूर्ण सम्मान करते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में प्रजा के गूंगेपन की अपेक्षा उसकी वाचालता अधिक श्रेयस्कर है, क्योंकि वही सच्चे इतिहास के निर्माण में सहायक बनती है । उनकी दृष्टि में एक अनाम साधारण जन की तर्जनी का प्रतिऐतिहासिक महत्व होता है । इस ऐतिहासिक

अनाम तर्जनी में इतिहास को प्रतिइतिहास में बदल देने की भरपूर क्षमता होती है । वे इतिहास में व्यक्ति की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं-

इतिहास भी आग होता है
और आग पर
कोई और नहीं
केवल पिपीलिका ही चल सकती है,
संज्ञाहीन पिपीलिका ।

यहाँ 'पिपीलिका' साधारणा जन की प्रतीक है । कवि कहना चाहता है कि सच्चे इतिहास की रचना उसी समय सम्भव है जबकि वह एक साधारण व्यक्ति की वाणी को भी महत्व दे । राजसत्ता के मद में चूर प्रशासक भले ही साधारण व्यक्ति को उसकी अभिव्यक्ति के जुर्म में बलि की वेदी पर चढ़ा दें, परन्तु उसके अस्तित्व को समूल नष्ट नहीं कर सकते, क्योंकि बलिदान के बाद इस प्रकार के लोग इतिहास की आग पर चलकर पुराण-पुरुष बन जाते हैं । इसलिए मनुष्य की उस अनाम साधारणता को किसी भी स्थिति में इतिहासहीन नहीं किया जाना चाहिए । यही साधारण इतिहास को मानवीय अभिव्यक्ति का माध्यम बना देती है-

व्यक्ति मात्र को
इतिहास से परिधानित होने दो
लगे कि
इतिहास -
मानवीय विष्णु की कण्ठश्री
वैजयन्ती है ।

यदि हम लोकवाणी को प्रतिबंधित करने का प्रयास करेंगे तो हमारा समस्त इतिहास सम्बोधनहीन हो जायेगा और सम्बोधनहीनता ही वास्तव में जड़ता है । इसलिए आवश्यक है कि इतिहास अनाम साधारण व्यक्ति की अभिव्यक्ति बने, राज-परिवारों की चारण-गाथा नहीं । कवि ने लिखा है-

इतिहास
खड्ग से नहीं
मानवीय उदात्तता से लिखा जाना चाहिए ।
क्या होगा
इतिहास को इतना दास बनाकर कि
वह राजभित्तियों पर चित्रित तथा
शिलालेखों पर उत्कीर्णित
हमारी चारण-गाथा लगे,
और जीवन्तता के अभाव में
उन चित्रों, शिलालेखों को
काल
अपने में लीन कर
इतिहासहीन कर दे ।

राम इतिहास का निरूपण करते समय स्वयं को नयी स्थिति में पाते हैं कि एक साधारण जन धोबी ने सीता की पावनता, राजसी गरिमा पर तर्जनी उठाई है । राम उसे तर्जनी नहीं मानते, इसके प्रति-इतिहास महत्व भी है । यह प्रतिइतिहास अनाम और अलिखित होता है और यह इतिहास को भी प्रति-इतिहास में बदल सकता है । राम साधारण जन के महत्व को समझते हैं । वह सत्य को पकड़ने में प्रयत्नरत दिखाई देते हैं । वह मानते हैं कि सत्य की अभिव्यक्ति का श्रेय केवल राजपुरुषों या इतिहास-पुरुषों को ही नहीं होता, उन साधारण जन को भी होता है जो अनाम जीते है.....राम के अनुसार साधारण जन के पास भाषा कब होती है, वह तो केवल सदा देह से बोलता आया है । हाथ झुकाया जा सकता है लेकिन साधारण जन की तर्जनी को नहीं । सत्य और मानवीय सत्य की रक्षा का हितैषी बनकर आने वाला इतिहास ही मानवीय सत्य का प्रतिनिधि होता है । राम इसी अनुभूति के कारण प्रश्नों के ऊहापोह के बावजूद एक साधारण जन के वाणीविहीन प्रति-इतिहास के समक्ष अपनी ऐतिहासिक परीक्षा देना चाहते हैं । व्यक्ति चाहे वो कोई भी हो । "यही है इतिहास में व्यक्ति की महत्ता की स्थापना ।

15.2.6 राजनैतिक मूल्य

प्रवाद पर्व श्री नरेश मेहता द्वारा रचित एक ऐसा काव्य है जिसकी रचना कवि ने उस समय की थी, जबकि हमारे देश की राजनैतिक स्थिति अत्यन्त अस्थिर एवं अराजकतापूर्ण थी । सत्ता के मद में चूर कुछ चुनिन्दा लोग आम जनता के मौलिक अधिकारों का खुले आम हनन कर रहे थे । यह वह समय था जबकि राजनैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना अनिवार्यता बन चुकी थी । कारण यह था कि राजनैतिक आदर्शो, मर्यादाओं और मूल्यों को मनमाने ढंग से अपने हित-साधन के लिए तोड़ा-मरोड़ा जा रहा था । वह भी राजनैतिक दृष्टि से संकट का समय था और प्रस्तुत काव्य में अभिव्यक्त समय, परिस्थिति एवं राजनीति के समक्ष भी कवि ने कुछ इसी प्रकार का संकट उत्पन्न कर उस समसामयिक राजनीतिक समस्या का समाधान तलाशने का प्रयास किया है । प्रस्तुत काव्य में कवि ने एक धोबी के द्वारा सीता की पावनता पर उंगली उठाने के प्रसंग का मार्मिक चित्रण किया है । धोबी एक सामान्य नागरिक है, एक साधारण आम आदमी है, तब क्या उसे राजकुल की राजसी गरिमा और चरित्र-मर्यादा पर उंगली उठाने का अधिकार है? कवि ने सबसे पहला यही प्रश्न इस काव्य में उठाया है और इसके माध्यम से अराजकतापूर्ण राजनैतिक स्थिति का आदर्शीकरण करने का प्रयास किया है । कवि ने लिखा है कि जब-जब सत्ता की निरंकुशता अथवा मर्यादा के विरूद्ध आम आदमी आवाज उठात है, तब-तब राजतंत्र और इतिहास में एक कोलाहल-सा उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि सामान्य जन की इस आवाज का एक प्रतिऐतिहासिक महत्व होता है । यह प्रतिइतिहास सदैव अलिखित रहता है और उसे जन्म देने वाला सदा एक अनाम साधारण नागरिक होता है, परन्तु फिर भी उसमें सम्पूर्ण इतिहास को बदलने की अद्भुत शक्ति होती है, क्योंकि इतिहास भी अनेक प्रश्नों, विद्रोहों और संकटों की अग्नि से परिपूर्ण होता है । केवल साधारण जन में ही इस अग्नि को झेलने की क्षमता होती है । ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार केवल एक संज्ञाहीन पिपीलिका ही अग्नि पर चलने का साहस दिखा सकती है । इसके माध्यम से कवि ने राजनीति में आम आदमी की आवाज का महत्व प्रतिपादित किया है ।

यहाँ दूसरा राजनैतिक प्रश्न कवि ने यह उठाया है कि क्या एक साधारण व्यक्ति के द्वारा राजकुल की मर्यादा पर उंगली उठाना राजद्रोह या विद्रोह है? इस प्रश्न का उत्तर कवि ने राम, लक्ष्मण एवं भरत के आपसी वार्तालाप के माध्यम से प्रस्तुत किया है । कवि ने लिखा है कि गरिमा और चरित्र केवल राजपरिवारों और राजपुरुषों की ही धरोहर नहीं होते हैं, वे साधारण मनुष्य के पास भी होते हैं । जितने राजनैतिक अधिकार राजपुरुषों को प्राप्त होते हैं, उतने ही अधिकार एक साधारण आदमी के भी होते हैं । अत: उन्हें समूल नष्ट करने का प्रयास बेमानी है । भले ही वे आज की तरह इतिहास रूपी यज्ञ की वेदी पर बलिदान कर दिये जायें, परन्तु उनका अस्तित्व तब भी नष्ट नहीं होता, क्योंकि वे अपनी कर्मठ साधारणता से अपने अस्तित्व को प्रमाणित करते हुए पुराण-पुरुष बन जाते हैं । अत: राजपुरुष का दायित्व है कि वह विधि-नियमों के दायरे में रहकर उस उठी हुई अनाम तर्जनी का उत्तर दे, उसका दमन करने का प्रयास न करे । यही राजपुरुष के विराट व्यक्तित्व की चरित्र-मर्यादा है । फलत: राम लक्ष्मण से कहते हैं-

लक्ष्मण!
हमारे इन राजसी कानों तक
कभी किसी अनाथ
नारी की
असहाय अवमानना आयी है?
राज्य की यह आतुरता
कर्मठता
केवल सीता
या हमारे ही लिए क्यों?
क्यों नहीं
जंगल में लकड़ियाँ बीनने वाली
असहाय
अनाम नारी के लिए
यह तुम्हारी सर्वसत्तात्मक
राजशक्ति तत्पर होती?
लक्ष्मण!
राज्य या न्याय
सम्बन्ध नहीं होता ।
सत्ता के गोमुख पर बैठकर
उसके सारे शक्ति-जलों को
अपने ही अभिषेक के लिए
सुरक्षित रखना-
यह कौन-सा दर्शन है लक्ष्मण?

यहाँ कवि ने राजनीति के लोककल्याणकरी स्वरूप की स्थापना का प्रयास किया है । कवि की मान्यता है कि राजशक्ति को शक्ति के सारे स्त्रोतों का प्रयोग स्वहित के लिए नहीं बल्कि लोकहित के लिए करना चाहिए । न्याय राजशक्ति के प्रयोग का एक सशक्त माध्यम है, अत: न्याय को भी समदर्शी तथा तत्वदर्शी होना चाहिए । ऐसा होने पर ही वह किसी भी मामले की गहराई से छानबीन कर निष्पक्ष निर्णय कर सकेगा । यदि वह भी राजभवनों और राजपुरुषों के निजी हितों की रक्षा में ही लगा रहेगा तो वह दिन दूर नहीं जबकि वह प्रजा के लिए भय और आतंक का प्रतीक बन जायेगा-

राजभवनों और राजपुरुषों से ऊपर
राज्य और न्याय को
प्रतिष्ठापित होने दो भरत!
यदि ये तत्वदर्शी नहीं होते
तो एक दिन
निश्चय ही ये भय के प्रतीक बन जायेंगे
राज्य को -सामूहिक आकांक्षा का
प्रतीक बनने दो भरत!
प्रजा के भी अधिकार होते हैं ।

यहाँ कवि ने मानवीय स्वातंत्र्य, मानवीय भाषा, मानवीय अभिव्यक्ति तथा मानवीय प्रतिगरिमा को आदर्श राजनीति का मूल आधार बताते हुए उनकी सुरक्षा करने का आह्वान किया है । उन्होंने लिखा है कि राज्य या न्याय राष्ट्र की इच्छा, आशा-आकांक्षा, सम्मान और गरिमा के प्रतीक होते हैं, किसी व्यक्ति विशेष के प्रतीक नहीं । अत: किसी की वैयक्तिकता नहीं, बल्कि सम्पूर्ण की समग्रता ही राष्ट्र है ।

15.2.7 नर-नारी के प्रति समान दृष्टि

प्रस्तुत काव्य में कुछ संदर्भो में नर-नारी के प्रति समान दृष्टि रखने का संकेत भर दिया गया है । कवि का यह समतापरक दृष्टिकोण प्रस्तुत काव्य के 'प्रतिइतिहास और निर्णय' शीर्षक भाग में व्यक्त हुआ है । जब लक्ष्मण समस्त सभासदों के समक्ष सीता की अग्निपरीक्षा के लिए समस्त राजपरिवार को इतिहास-दोषी घोषित करते हैं, तब कवि का यह वैचारिक धरातल और अधिक पुष्ट एवं सबल रूप में व्यक्त हो जाता है । उनके लिए स्त्री समाज का दलित वर्ग नहीं है, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा एवं आदर्शो का प्रतीक है । उनके लिए स्त्री का सम्मान भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि किसी पुरुष का । लक्ष्मण का यह वक्तव्य इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है-

हम इतिहास-दोषी हैं
प्रकारान्तर से
हमारे इस अमानुशी कृत्य के द्वारा
समस्त नारी जाति के चरित्र और स्वत्व पर
कभी न मिट सकने वाला
एक ऐतिहासिक प्रश्नचिह्न लगा ।
मानवता

हमें चाहे और किसी बात के लिए
स्मरण न करे,
समय
हमें चाहे इतिहासहीन कर दे
परन्तु बन्धुओं!
भावी मानवता और इतिहास
अकेले इस कर्म के लिए ही
हमें कभी क्षमा नहीं करेंगे ।

यहाँ लक्ष्मण के इस वक्तव्य का उत्तर देते हुए राम ने जो वक्तव्य प्रस्तुत किया है, वह भी नर और नारि के प्रति कवि के समतापरक दृष्टिकोण का परिचायक है । राम कहते हैं कि सीता की अग्निपरीक्षा के लिए लक्ष्मण द्वारा जो हमें इतिहास-दोषी बताया गया है, वह उचित नहीं है, क्योंकि अग्निपरीक्षा व्यक्तित्व का अपमान नहीं, बल्कि व्यक्ति के उदात्त चरित्र की अभिव्यक्ति है । वे कहते हैं कि राष्ट्र के प्रत्येक सदस्य को चाहे वह नर हो या नारी, राष्ट्र के लिए परीक्षा देनी होती है, केवल अग्निपरीक्षा का स्वरूप बदल जात है । उनके अनुसार किसी साधारण जन के द्वारा आधे पेट खाकर रहना भी अपने चरित्र के धैर्य की अग्निपरीक्षा देना है, जो सीता की अग्निपरीक्षा से किसी भी स्थिति में कम नहीं है, फिर हम उसके लिए स्वयं को इतिहास-दोषी क्यों नहीं मानते? आगे वे कहते हैं कि यदि राजपरिवार की ही बात करें तो राष्ट्र के लिए अग्निपरीक्षा केवल सीता ने ही नहीं दी है, वरन् राजपरिवार के अन्य स्त्री-पुरुषों ने भी दी है । मेरे पिता महाराज दशरथ ने आदर्श पितृत्व तथा अपने वचन की रक्षा के लिए प्राण न्यौछावर कर अग्निपरीक्षा दी, लक्ष्मण ने आदर्श अनुजत्व की स्थापना के लिए स्वेच्छा से वल्कल धारण कर अग्निपरीक्षा दी, भरत ने आत्मनिर्वासन के रूप में अग्निपरीक्षा दी, तीनों माताओं, उर्मिला, माण्डवी आदि ने भी अपने-अपने स्तर पर राष्ट्र के सम्मान की रक्षा के लिए अग्निपरीक्षा दी । फिर हम केवल सीता की अग्निपरीक्षा की ही चर्चा क्यों करें? यहाँ कवि ने अपने मत की पुष्टि के लिए स्त्री और पुरुष दोनों की अग्निपरीक्षा की चर्चा की है, जो नर-नारी के प्रति उनके समतापरक दृष्टिकोण की परिचायक है ।

15.2.8 मानवीय दृष्टिकोण

श्री नरेश मेहता के द्वारा प्रवाद पर्व में रामायण के जिस प्रसंग को उठाया गया है, उसके मूल में प्रमुखत: भले ही राजनैतिक मूल्यों की स्थापना का उद्देश्य विद्यमान रहा हो, परन्तु उस उद्देश्य का निरूपण करते समय भी वे स्पष्टत: एक मानवीय धरातल पर खड़े दिखाई देते हैं । सबसे पहली बात तो यह कि जब कोई भी कवि अपने काव्य में साधारण और आम आदमी की बात करता है तो यह स्वत: सिद्ध हो जाता है कि वह मानवीय दृष्टिकोण का पक्षधर है । यही बात खुले तौर पर नरेश मेहता के विषय में भी कही जा सकती है, क्योंकि प्रस्तुत काव्य में आद्यन्त उनकी चर्चा का विषय एक अनाम साधारण धोबी है । वे मर्यादा पुरुषोत्तम विराट व्यक्तित्व एवं राजपुरुष श्रीराम की चर्चा से अधिक महत्व साधारण जन की चर्चा को देते हैं । उनकी दृष्टि में वर्गभेद महत्वपूर्ण नहीं

है, महत्वपूर्ण है मूल्यों की स्थापना । इसलिए उनका मानवीय दृष्टिकोण यहाँ भली-भाँति व्यक्त हुआ है ।

काव्य का प्रारम्भ ही कवि के मानवीय दृष्टिकोण से हुआ है जबकि राम अपने राजभवन के एक कक्ष में विचारमग्न खड़े हैं । उनकी समस्या है कि एक साधारण धोबी ने सीता की पवित्रता पर तर्जनी उठाई है । यहाँ वे भी एक साधारण मनुष्य की भाँति नियति के क्रूर प्रहारों से तनिक विचलित एवं चिन्तित दिखाई देते हैं । कवि बने राम के दिव्य व्यक्तित्व को भी पूर्णत: मानवीय धरातल पर ही प्रस्तुत किया है । एक सामान्य मनुष्य जिस प्रकार संकट आने पर कुछ त्रस्त और चिन्तित हो जाता है उसी प्रकार राम को कवि ने चिन्तित मुद्रा में विचारमग्न एवं चिन्तनशील रूप में प्रस्तुत किया है । उल्लेखनीय है कि राम का दृष्टिकोण भी पूर्णत: मानवीय है क्योंकि समस्या उनकी व्यक्तिगत है कि उनकी पत्नी सीता की पावनता पर प्रश्नचिह्न लगाया गया है, परन्तु जब वे उस समस्या पर विचार करते हैं तो उनकी यह समस्या तनिक भी व्यक्तिगत नहीं रह जाती है । फलत: वे एक मानवीय समस्या पर विचार करते दिखाई देते हैं । वे सोचने लगते हैं कि मनुष्य किस प्रकार नियति के हाथ का खिलौना बनकर रह जाता है और उसे विपरीत परिस्थितियों में भी अपने हृदय को कठोर बनाते हुए, अपनी भावनाओं का दमन करते हुए अनासक्त भाव से कर्म करने को विवश होना पड़ता है । वह जीवन भर एक प्रत्यंचा के समान कर्म के बाणों को वहन करने के लिए तना रहता है । यही उसकी विवशता है-

क्या इसीलिए मनुष्य
देश और काल के विपरीत चुम्बकताओं में
जीवन भर
एक प्रत्यंचा-सा तना हुआ
कर्म के बाणों को वहन करने के लिए
पात्र या अपात्र
दिशा या अदिशा में सन्धान करने के लिए
केवल साधन है?

वे सोचते हैं कि नियति ने मानवीय प्रारब्ध के ललाट पर यह कैसा निर्मम व अग्निरूपी तिलक लगा दिया है कि सभी मनुष्य कर्म की भट्टी में निर्धूम जलने के लिए विवश हैं । हम चाहे किसी भी शताब्दी में चले जायें, हमें मनुष्य कर्म के तटस्थ भागवत-अनुष्ठान में ही लीन दृष्टिगत होंगे । तात्पर्य यह है कि अनासक्त कर्म से मनुष्य की मुक्ति किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं है।

कवि ने अनाम साधारण धोबी के द्वारा राजकुल की मर्यादा सीता की पावनता पर उठाये गये प्रश्न को भी पूर्णत: मानवीय दृष्टिकोण से व्यक्त किया है । राजकुल चाहे तो उस वाणी को राजद्रोह या राजकुल की प्रतिष्ठा का अपमान मानते हुए दबा भी सकता है, परन्तु कवि की दृष्टि में यह नीति मानवीय नहीं राजकीय हे, राजपरिवारीय है । इसलिए वे उस धोबी की बात को पूर्ण महत्ता प्रदान करते हैं । यों भी इस काव्य के द्वारा उन्होंने जिन प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया है, उनके अनुसार प्रजातंत्र में प्रत्येक आम से आम और खास से खास व्यक्ति को अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए । भले ही वे विचार राजपरिवार से ही सम्बन्धित

क्यों न हों । उनकी दृष्टि में एक साधारण अनाम व्यक्ति की तर्जनी मात्र एक तर्जनी नहीं होती, उसका एक प्रतिऐतिहासिक महत्व होता है और उस तर्जनी में इतिहास को प्रतिइतिहास में बदलने की अद्भुत क्षमता होती है । उस साधारण जन को दबाया जा सकता है, उसके प्रश्नचिह्न के रूप में झुके हाथ को झुकाया जा सकता है, परन्तु उसकी तर्जनी के रूप में जो प्रश्न उठा है, उसे किसी भी प्रकार से अनसुना नहीं किया जा सकता है । कवि यहाँ मानवीय अधिकारों की पैरवी करता हुआ दिखाई देता है-

कैसे है?
राजशक्ति पर प्रश्नचिह्न लगाना
विरोधी संकल्प कैसे है?
क्या गरिमा
क्या चरित्र
क्या अधिकार
केवल राज्य
राजपुरुषों या
इतिहास-पुरुषों के ही होते हैं?
अनाम साधारण जन के कुछ नहीं होते राम?

सब कुछ किया जा सकता है
किया जाना चाहिए
परन्तु
मनुष्य
उसकी अनाम साधारणत को
इतिहासहीन नहीं ।

यहाँ तक कि कवि इतिहास-रचना के लिए भी मानवीय उदात्तता को ही आधार के रूप में स्वीकार करने की बात करता है । कवि कहता है कि यदि इतिहास-लेखन में मानवीय उदात्तता का ध्यान नही रखा गया तो निश्चय ही हमारा इतिहास इतिहास न रहकर राजभित्तियो पर चित्रित हमारी चारण-गाथा बनकर रह जायेगा, जिसमें जीवन्तता का पूर्णत: अभाव होगा । प्रस्तुत काव्य की ये पंक्तियाँ कवि के मानवीय दृष्टिकोण को ही अभिव्यक्ति प्रदान कर रही हैं-

नहीं
नहीं राम!
इतिहास को भी वनस्पतियों की भाँति
सम्पूर्ण मेदिनी की
शोभा और गन्ध होने दो,
उसे मानवीय अभिव्यक्ति का
औपनिशदिक पद दो,

व्यक्ति मात्र को
इतिहास से परिधानित होने दो,
लगे कि
इतिहास -
मानवीय विष्णु की कण्ठश्री
वैजयन्ती है ।

क्योंकि कोई भी राजपुरुष इतिहास पुरुष तथा पुराण-पुरुष मानवीय देशकालता से ऊपर नहीं होता । एक विद्वान के अनुसार, नरेश मानवतावादी कवि हैं । उनके मानवतावाद की सीमाएँ यहाँ से वहाँ तक राष्ट्रीय से अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक फैली हुई हैं । मेहता ने पूरी आस्था के साथ मनुष्य को पहचाना है, उसके मानवीय सम्बन्धों को स्वीकारा है और तत्पश्चात् लोकमंगल और सांस्कृतिक संदर्भो में मानवतावाद को प्रस्तुत किया है ।

15.2.9 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

कवि ने प्रस्तुत काव्य में जहाँ प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना की बात की है, वहीं इस बात पर भी विशेष बल दिया है कि प्रजातंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का होना अत्यधिक आवश्यक है । प्रजातंत्र प्रजा का तंत्र अर्थात् प्रजा द्वारा लोकहित में स्थापित शासन व्यवस्था है, अत: इस प्रकार की शासन व्यवस्था में प्रजा के छोटे से छोटे और साधारण व्यक्ति को भी अपने विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए, परन्तु दुर्भाग्यवश प्रजातंत्र में भी कुछ चुनिन्दा राजशक्ति सम्पन्न लोग सम्पूर्ण सत्ता को अपने हाथों में केन्द्रित कर अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का गला घोंटने का प्रयास करते हैं । यही इस काव्य में भी चित्रित किया गया है । एक अनाम साधारण धोबी के द्वारा जब चौदह वर्ष का वनवास काटकर, रावण का वध कर सीता एवं लक्ष्मण सहित लौटे राम की पत्नी सीता की पावनता पर प्रश्नचिह्न लगाया जाता है, उस स्थिति में जबकि वे अग्निपरीक्षा द्वारा अपनी पवित्रता को सिद्ध कर चुकी हैं, तब प्रजातंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का यह प्रश्न और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है । सभा बैठती है । लक्ष्मण एवं भरत धोबी के इस प्रयास को राजद्रोह एवं राजपरिवार की चरित्र मर्यादा के अपमान के रूप में घोषित करते हैं, परन्तु राम उनकी इस विचारधारा से सहमत नहीं हैं । 'राम न्याय को समदर्शी नहीं, तत्वदर्शी मानते हैं - राज्य न्याय न्याय होता है, मानवीय सम्बन्ध नहीं । उसे समूची मानवता के विशाल परिप्रेक्ष्य में देखते हैं । राम लक्ष्मण से कहते हैं कि यह तर्जनी सीता पर उठी है इसलिए राजशक्ति इसके विरूद्ध है । अगर यही एक साधारण, एक असहाय, अनाम नारी पर उठती तो क्या राजशक्ति इसका विरोध करती? सत्ता के गोमुख पर बैठकर अपने लिए सारे अधिकार सुरक्षित नहीं रखने चाहिए । राम लक्ष्मण को सचेत करते हैं कि राज्य भय से नहीं चला करते हैं । राम चाहते हैं कि राज्य सामूहिक आकांक्षा का प्रतीक होना चाहिए, प्रजा को इसमें पूरे अधिकार मिलने चाहिए । राम लघु की प्रतिष्ठा कर लोक की आवाज को महत्व देते हैं । वे जनता को गूंगा नहीं करना चाहते । वह वाचालता को गूंगेपन से अधिक श्रेयस्कर मानते हैं, क्योंकि व्यक्ति का अभिव्यक्तिहीन होना समाज के दुर्भाग्य का आरम्भ है । राम का उपर्युक्त उत्तर हमारे काल की स्थिति को उजागर करता है ।

राम यह भी कहते हैं कि यह कोई आवश्यक नहीं कि सत्य सदा अपनी ऐतिहासिक अभिव्यक्ति के लिए केवल राजपुरुषों या पंडितों को ही चुने, वह किसी अनाम साधारण जन को भी अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बना सकता है । अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता विषयक उनके विचारों की प्रस्तुति काव्य के 'प्रतिइतिहास और तंत्र' नामक भाग में स्पष्ट रूप से की गयी है । यहाँ राम रावण का उदाहरण देकर लक्ष्मण और भरत सहित सभी सभासदों को अभिव्यक्ति की महत्ता समझाने का प्रयास करते हैं । वे कहते हैं कि रावण से बड़ा कोई इतिहास-पुरुष नहीं था । उसका प्रभुत्व तीनों लोकों तथा दसों दिशाओं में व्याप्त था । स्वयं ईश्वर भी उसकी इच्छा के विरूद्ध नहीं जा सकते थे, किन्तु जब उसकी शक्ति उसकी निरंकुशता का पर्याय बन गयी, वह स्वयं को राष्ट्र समझने लगा, तब उसकी प्रजा में से न सही, उसके बन्धुओं में से ही आमजन के प्रतिनिधि के रूप में एक विरोधी स्वर प्रस्फुटित हुआ। उसने उस स्वर को दबाने के लिए अपनी शक्ति के सारे स्त्रोतों का प्रयोग कर लिया, परन्तु फिर भी वह उस स्वर को दबा नहीं सका और उसे युद्ध करना पड़ा, परास्त होना पड़ा । वे सभी को इस संदर्भ में यह भी याद दिलाते हैं कि हमने दक्षिण के कोटि-कोट नर-किन्नर-वानरों के सहयोग से रावण से युद्ध किया, परन्तु हमारा यह युद्ध व्यक्तिगत युद्ध नहीं था । हम केवल सीता को पाने के लिए रावण से लड़ने नहीं गये थे, बल्कि उससे कहीं अधिक हमारा लक्ष्य उन अनाम लोगों और भयातुर प्रताड़ित जनता के स्वत्व, स्वाधीनता, अभिव्यक्ति, जीवन-मूल्यों तथा आदर्शो की रक्षा करना था । वे कहते हैं कि यह सम्पूर्ण सृष्टि मनुष्य की वाणी के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करती है, अत: इसका दमन करना एक प्रकार से सृष्टि का दमन करना है । व्याकरण और अर्थ-गन्ध से युक्त भाषा जो देश और काल को वहन तथा अभिव्यक्त करने की क्षमता रखती है, वह गायत्री स्वरूपा महाशक्ति भाषा केवल मनुष्य के पास है । भाषा भाषा है - चाहे वह राजपुरुष की हो या साधारण जन की । सबकी भाषा अर्थात् अभिव्यक्ति समान रूप से महत्वपूर्ण है । इसलिए प्रत्येक जन की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा की जानी चाहिए । वे कहते हैं-

मनुष्य का भाषाहीन हो जाना
सृष्टि का
ईश्वरहीन हो जाना होगा लक्ष्मण!
ये सारे मन्त्र
ये सारे काव्य
ये पुराण, ये उपनिषद्
ये इतिहास, ये उपाख्यान
सब सम्बोधनहीन हो जाएँगे ।
जिह्वाहीन हो जाएँगे लक्ष्मण!
जड़ता
सम्बोधनहीनता ही तो है ।

कवि ने सीता के माध्यम से भी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रत की रक्षा का संदेश दिया है । जब राम सीता को बताते हैं कि आज फिर कोई साधारण जन हमारा द्वार खटखटा रहा है तथा अपने द्वारा उठाये गये प्रश्न का उत्तर माँग रहा है, तब सीता उनसे कहती है कि यदि आज एक अनाम

साधारण जन ने मेरी चरित्र-मर्यादा पर ऊँगली उठाई है तो आपके राज्य की गरिमा को व्याकुल नहीं होना चाहिए क्योंकि ये राजकुल की मर्यादा की रक्षा के लिए तथा अपनी चरित्र-मर्यादा के लिए किसी भी प्रकार की परीक्षा देने के लिए तैयार हूँ । वे कहती हैं

राज्य, न्याय और राष्ट्र
व्यक्तियों तथा
सम्बन्धों से ऊपर होने ही चाहिए ।
यदि
यह उस
अनाम साधारण जन का विश्वास है
जिसे उसने निर्भय अभिव्यक्त किया है
तो राज्य, न्याय तथा आपको
उस अनाम प्रजा के विश्वास की
अभिव्यक्ति की
रक्षा करनी चाहिए ।
भले ही वह अकेला स्वर क्यों न हो ।

15.2.10 सांस्कृतिक चेतना

'प्रवाद पर्व' एक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया काव्य है । श्री नरेश मेहता यों भी एक संस्कृति-पुरुष के रूप में विख्यात हैं । उनके सभी काव्यों में यहाँ तक कि स्फुट कविताओं में भी सांस्कृतिक चेतना अत्यन्त प्रबल रूप में अभिव्यक्त हुई है । रामायण भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख आधार-स्तम्भ है । कवि ने उसके प्रसंग को अपने काव्य का आधार बनाकर अपने संस्कृति-प्रेम का सबल प्रमाण प्रस्तुत किया है । प्रस्तुत काव्य में रामायण कालीन परिवेश की प्रस्तुति उसके पूर्ण सांस्कृतिक गौरव के साथ की गयी है । प्रकृति के स्वतन्त्र चित्र तो इस काव्य में उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु जहाँ कहीं भी प्रसंगवश प्रकृति की चर्चा की गयी है, वह सम्पूर्णत: संस्कृतिपुष्ट है । उनकी सांस्कृतिक चेतना का एक पक्ष मानव-मूल्यों के ऊहापोह के पश्चात प्रस्तुत किए गए निष्कर्षों में भी व्यक्त हुआ है । उनकी भाषा एवं शिल्प में भी यह सांस्कृतिक चेतना अभिव्यक्त हुई है ।

यदि गहराई से देखा जाये तो इस सांस्कृतिक चेतना के मूल में कवि की ऋषि-दृष्टि दिखाई देती है । वह सचमुच संस्कृति-पुरुष है । यही कारण है कि उसके काव्य में एक सांस्कारिक राग-बोध तथा संस्कृति के प्रति एक अटूट निष्ठा का भाव प्रकट हुआ है । सांस्कृतिक बोध से परिपूर्ण कवि-हृदय प्रस्तुत काव्य में सप्तर्षि, इन्द्र, यात्रा-तपस्या, एकान्त गरुड़-सा, व्योम-सिद्ध, अग्नि-त्रिपुण्ड, स्वाहा ही स्वाहा, आवाह-वाणी, भागवत-अनुष्ठान, आवाहोत्सव, प्रतिहवन-कुण्ड, अग्निपर्व, सदाशिव और पाशुपत श्लोक, मन्वन्तर, वैश्वानरी, नारदीय स्वरूप जैसे शब्दों का प्रयोग करता है । उदाहरणार्थ-

दूब की अनामता से लेकर
अनन्त आयामी
मानवीय प्रज्ञा तक-

अग्नि, जल, वायु
जन्म-मृत्यु के
सदाशिव और पाशुपत श्लोकों में
यह कैसा लीलामय अभिषेक
सम्पन्न - हो रहा है ।
यही है वह
रूडपाठ
जो सृष्टि के
मन्वन्तर स्वरूप में
अहोरात्र, उच्चरित है ।

इतना ही नहीं, कवि ने यहाँ सांस्कृतिक वर्ग के प्रतीक, बिम्ब और उपमानों का भी बहुलता के साथ प्रयोग किया है । यदि कोई कवि अपनी कृति को जीवन्त एवं सशक्त बनाने के लिए संस्कृति, धर्म एवं पुराण सामग्री को आधारभूत रूप में प्रयुक्त -करता है तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह कवि सबल सांस्कृतिक चेतना युक्त कवि है । नरेश मेहता का प्रस्तुत काव्य उनके सम्पूर्ण काव्य-साहित्य के सदृश सांस्कृतिक चेतना का जीवन्त आलेख प्रतीत होता है । इस काव्य के पात्रों के चरित्र भी संस्कृतिपुष्ट हैं । राम की उद्विग्नता, प्रजातांत्रिक मूल्यों में विश्वास, स्वहित से ऊपर उठकर लोकहित के विषय में सोचने की उनकी प्रकृति, निष्पक्षता, लक्ष्मण और भरत का अपनी विचारधारा को निर्भीक होकर प्रस्तुत करना तथा राम के तर्को के समक्ष नतमस्तक होकर उनके निर्णय को स्वीकार करना, सीता का पति की मनोव्यथा को समझकर उनके मनोबल को दष्ट आधार प्रदान करना आदि सभी विशेषताएँ भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप को व्यक्त करती हैं-

मैं या
कोई भी
राष्ट्र-न्याय औ सत्य से बड़ा नहीं ।
मेरी ओर से
आपको सर्वथा आश्वस्त हो जाना चाहिए आर्यपुत्र!
आसन्न मातृत्व के
इस संकट की स्थिति में भी
मैं आपकी राज्य-गरिमा
और अपनी चरित्र-मर्यादा के लिए
कोई सी भी परीक्षा दे सकती हूँ
पर प्रजा के विश्वास की
निर्भय अभिव्यक्ति की रक्षा अनिवार्य है ।
नहीं राम!
इतिहास को भी वनस्पतियों की भाँति
सम्पूर्ण मेदिनी की

शोभा और गन्ध होने दो,
उसे मानवीय अभिव्यक्ति का
औपनिषदिक पद दो,
व्यक्ति मात्र को
इतिहास से परिधानित होने दो, लगे कि
इतिहास -
मानवीय विष्णु की कण्ठश्री
वैजयन्ती है ।

इन कवितांशों से स्पष्ट है कि प्रस्तुत काव्य में कवि की विचारणा, भाषा, उनके द्वारा प्रयुक्त उपमान, प्रतीक और बिम्ब आदि सभी सांस्कृतिक बोध के अत्यन्त निकट हैं । "कवि के चिन्तन क्रम में सांस्कृतिक बोध, वैदिक, औपनिषदिक संदर्भ इतने अधिक हैं कि लगता है जैसे कवि के व्यक्तित्व की पहचान ही यहाँ है । धरित्री जो रत्नगर्भा है, वही नरेश को कहीं से भी छू 'ऋचा' प्रतीत होती है और देवदार के वृक्षों की लम्बाई उसे उपनिषदीय आभास दे जाती है । कवि की चिन्तना का लगभग आधा भाग इसी बिन्दु से जुड़ा हुआ है । मेहता में जो जीवनबोध है, जो प्रकृति बोध है और यहाँ तक कि जो मूल्य बोध है, उस सबमें एक विशिष्ट गरिमा, स्वच्छता, धवलता और शुभ्रतापूर्ण सन्तुलन का आधार कवि की सांस्कृतिक चेतना ही है । " इसी प्रकार उक्त काव्यांशों में प्रयुक्त मेदिनी, औपनिषदिक पद, मानवीय विष्णु की कण्ठश्री वैजयन्ती आदि शब्द कवि की सांस्कृतिक चेतना के स्पष्ट परिचायक हैं ।

15.2.11 विवशताजनित पीड़ाबोध

विवशताजनित पीड़ाबोध नयी कविता की एक अन्यतम विशेषता है जिसके माध्यम से आधुनिक जीवन की आपाधापी में पिसते मनुष्य का दर्द अभिव्यक्ति पा सका है । उल्लेखनीय है कि नयी कविता में मनुष्य की जीवन के विविध मोड़ों पर संघर्शरत चेतना की विवषता व्यक्त हुई है । परन्तु इस विवशता से मानवीय हताशा और निराशा के स्वर नहीं, बल्कि आस्था, आशा और संघर्षशीलता के स्वर प्रस्फुटित होते दिखाई देते हैं । "नरेश मेहता की वेदना तो निर्माण की पृष्ठभूमि पर तैयार हुई है । उसमें सब कुछ सहकर भी कुछ कर गुजरने की बलवती भावना है । कवि का करपात्री मन पीड़ा को वहन भी करता है और सहन भी करता है । सहन करना ही जिन्दगी है और जो असहय है, वही कविता का रूप धारण कर लेता है । अत: कवि पीड़ा या दर्द को सहने का ही संदेश देता है । वस्तुत: इस वेदना की पृष्ठभूमि में सृजन की कामना है । मेहता के काव्य में वेदना की अनुभूति निष्क्रियता, उद्भ्रान्ति और शैथिल्य को नहीं उभारती है । यही प्रवृत्ति नरेश मेहता के सम्पूर्ण काव्य के समान हमें 'प्रवाद पर्व' में भी उजागर होती दिखलाई देती है ।

प्रस्तुत काव्य का प्रारम्भ ही राम के विवशता जनित पीड़ाबोध से होता है, जबकि वे अयोध्या के राजभवन में उद्विग्न भाव से टहलते हुए राज्य के सम्मुख आई समस्या के विषय में विचार करते हैं । वे सोचते हैं कि मनुष्य की यह कैसी विडम्बना और विवशता है कि उसे निर्भयतापूर्वक कर्म करने के लिए प्रस्तुत होना पड़ता है, भले ही उन कर्मो के सम्पादन के लिए उसे तलवार की धार पर से

गुजरना पड़े । इस प्रकार के निष्ठुर कर्म उसके व्यक्तित्व को उसके सभी स्नेह-सम्बन्धों से काटकर अलग कर देते हैं और वह जीवनभर विवश होकर देश और काल के परस्पर विरोधी चुम्बकत्व में एक प्रत्यंचा के सदृश तना रहता है तथा कर्म के बाणों को वहन करता रहता है । यहाँ तक कि उसे यह भी ज्ञात नहीं होता कि उसके ये कर्म उसे किस दिशा की ओर ले जा रहे हैं । तात्पर्य यह है कि वह जीवन पर नियति के द्वारा निर्धारित प्रारब्ध के हाथों में एक कंदुक की तरह उछलता रहता है । वह चाहकर भी कर्म के इस तटस्थ भागवत अनुष्ठान से मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता है ।

राम की विवशता है कि वे मर्यादाओं, राज-व्यवस्था तथा अपने राजनैतिक आदर्शों की डोर से इस प्रकार बँधे हैं कि परिस्थितिजन्य खेल का भागीदार बनने के अतिरिक्त उनके पास और कोई रास्ता नहीं है । उनकी प्रजा के एक साधारण धोबी ने अग्निपरीक्षा के बाद भी सीता की पावनता का प्रश्न उठाया है और वे भीतर से गहन वेदना को भोगते हुए भी मर्यादा और राजनैतिक मूल्यों के दायरे में उसका समाधान तलाशने के लिए विवश हैं । उनके अनुज भरत, लक्ष्मण सहित सभी सभासद धोबी की उस तर्जनी को राजद्रोह तथा राष्ट्र की अवमानना के रूप में स्वीकार करते हैं । राम अपनी पीड़ा को हृदय के गहनतम स्तरों में दबा कर रखते हुए सभी के प्रश्नों के लोकहितकारी समाधान तलाश करते हैं । वे कहते हैं कि प्रजा के लघु से लघु मनुष्य को अपने विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता है, इसलिए धोबी के वक्तव्य को राजद्रोह नहीं कहा जा सकता है । उसका विचार राष्ट्र की अवमानना इसलिए नहीं है क्योंकि कोई भी एक व्यक्ति राष्ट्र नहीं है, सीता भी राष्ट्र नहीं है, फिर उसकी चरित्र-मर्यादा पर उठा प्रश्न राष्ट्र की अवमानना किस प्रकार कहा जा सकता है? फलत: वे लोककल्याण के लिए सीता को निष्कासन की सजा सुनाते हैं । सजा सुनाने से पूर्व उनका सीता के साथ जो वार्तालाप प्रस्तुत किया गया है, उससे भी राम की विवशताजनित पीड़ा का बोध होता है । वे कहते हैं कि हमने हर बार जीवन में उथल-पुथल उत्पन्न करने वाली समस्याओं से जूझकर, उन पर विजय प्राप्त कर जीवन में शान्ति की कामना की है, परन्तु हर बार कोई एक घटना और कोई एक व्यक्ति हमें तूफानों के उबलतेपन में फेंक जाता है और हम विवश नारियल के समान जीवन-सागर की लहरों में डूबते-उतराते रहते हैं । उस समय हमारा सारा व्यक्तित्व दिशाहारा हो जाता है । हमें अपने दायित्वों का भली-भाँति निर्वाह करने के लिए न जाने कितने बलिदान देने पड़ते हैं, कितनी पीड़ाओं से होकर गुजरना पड़ता है । वे सीता से कहते हैं-

सप्तपदी के बाद
तुम्हारे ये रक्त अलक्तक चरण
इक्ष्वाकुओं के राजभवन के
संगमरमरी सुगन्धित दालानों में नहीं
वरन्
निषाद गुह और राक्षसों से भरे
असुरक्षित
अगम अरण्यों की ओर बढ़ेंगे?
चीनांशुक वल्कल में परिणत हो जाएगा
और हम
अपने राजसी कुल-गोत्र को

खण्डित यज्ञोपवीत की भाँति उतार
साधारण अनामता धारण कर
नितान्त पृथवी पुत्र कर दिये जाएँगे ।
हमारे वैवाहिक जीवन का
यह कैसा राजसी समारम्भ था प्रिये!

उनके इस कथन में उनके हृदय में विद्यमान गहन पीड़ा पूरी मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त हुई है । यहाँ राम के साथ-साथ सीता के व्यक्तित्व में निहित विवशताजनित पीड़ाबोध की भी अभिव्यक्ति हुई है-

मुझे अवगत था
आर्यपुत्र!
आरम्भ से ही मुझे इसकी प्रतीति थी
कि मुझे
इतिहास और
इतिहास-पुरुष के पार्श्व में
केवल एक प्रतिमा-सा खड़ा होना है ।

परन्तु सबसे उल्लेखनीय तथ्य यह है कि सभी विवशताओं और पीड़ाओं को जीते तथा भोगते हुए ये पात्र न तो कहीं अपने कर्तव्य-पथ से विचलित हुए हैं और न ही हताशा और निराशा के शिकार हुए हैं । सब कुछ भोगते हुए भी राम निर्वेद की पीठिका पर खड़े होकर अपने दायित्व का पूर्ण कौशल एवं उत्साह के साथ निर्वाह करते दिखाई देते हैं तथा सीता भी सम्पूर्ण समस्याओं से ऊपर उठकर अपने व्यक्तिगत सुखों एवं हितों को तिलांजलि देकर यह घोषणा करती हुई दिखाई देती है कि वे राजकुल की मर्यादा के लिए तथा अपने चरित्र की मर्यादा की रक्षा के लिए इस आसन्न प्रसव की स्थिति में भी हर प्रकार की परीक्षा देने के लिए तैयार है । इसी विवशताजनित पीड़ाबोध की पीठिका पर प्रस्तुत काव्य में सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा चारित्रिक मूल्यों की स्थापना पूर्ण कौशल एवं प्रभविष्णुता के साथ की गयी है ।

15.3 सारांश

उपर्युक्त विवेचनोपरान्त संक्षेप में कहा जा सकता है कि नरेश मेहता का 'प्रवाद पर्व' एक ऐसा अनमोल एवं अद्भुत काव्य है जो कई दृष्टियों और सन्दर्भो में विशिष्ट दिखाई देता है । यहाँ कवि एक पौराणिक प्रसंग के माध्यम से नये जीवन-मूल्यों का अन्वेषण करता, राजनैतिक मूल्यों को समकालीनता की कसौटी पर कसता तथा वर्तमान जीवन के चक्रव्यूह में विवश हो पिसते तथा समस्याओं से जूझते मनुष्य का आशावाद के साथ मार्गदर्शन करता दिखाई देता है । वह स्पष्ट करता है कि जब-जब राज्य एकाधिकारवादी और निरंकुश बनते हैं, तब-तब उन्हें आम जन की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है । कवि ने स्पष्ट किया है कि ऐसी स्थिति में राज्य के दायित्व की इतिश्री उस साधारण जन के स्वर का दमन करके नहीं, बल्कि उसे राजसत्ता के विरूद्ध एक चुनौती के रूप में स्वीकार करके ही करनी चाहिए । कवि ने राम के माध्यम से इसी राजनैतिक मूल्य की स्थापना का सफल प्रयास किया है । एक प्रकार से कहा जा सकता है कि कवि ने इस काव्य के माध्यम से

राज्य की निरंकुश सत्ता के मुकाबले में उठी साधारण जन की आवाज की स्थापना की है । उन्होंने इस काव्य के माध्यम से यह विश्वास व्यक्त किया है कि साधारण जन की चेतना को रौंदने का प्रयास कभी भी सफल नहीं होता । यद्यपि सीता को पुन: वन की ओर भेजना एक गहरा अन्याय था, परन्तु कवि ने इस प्रसंग को जिस कुशलत के साथ तत्कालीन समकालीन संदर्भ से जोड़ा है, वह अत्यन्त सारगर्भित एवं महत्वपूर्ण है ।

15.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नरेश मेहता के काव्य 'प्रवाद पर्व' के अनुभूति पक्ष पर एक विवेचनात्मक लेख लिखिए ।
2. " 'प्रवाद पर्व' जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास है" । इस कथन के आलोक में प्रस्तुत काव्य के भावपक्ष पर प्रकाश डालिए ।
3. ' 'प्रवाद पर्व' नयी कविता की एक उल्लेखनीय कृति है । " इस कथन की समीक्षा कीजिए ।
4. 'प्रवाद पर्व' के भावपक्ष की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
5. अनुभूति पक्ष की दृष्टि से 'प्रवाद पर्व' एक उल्लेखनीय कृति है । ' इस कथन से आप कही तक सहमत हैं? समीक्षा कीजिए ।

15.5 पाठ में संकलित संदर्भ

1. प्रभाकर शर्मा; नरेश मेहता का काव्य: विमर्श और मूल्यांकन पृष्ठ 126- 127
2. डॉ. विष्णु प्रभा शर्मा; श्री नरेश मेहता की वैष्णव काव्य-यात्रा, पृष्ठ 105- 106
3. प्रभाकर शर्मा; नरेश मेहता का काव्य: विमर्श और मूल्यांकन, पृष्ठ 41
4. डॉ. विश्णु प्रभा शर्मा; श्री नरेश मेहता की वैष्णव काव्य-यात्रा, पृष्ठ 106
5. प्रभाकर शर्मा; नरेश मेहता का काव्य: विमर्श और मूल्यांकन, पृष्ठ 35
6. प्रभाकर शर्मा; नरेश मेहता का काव्य: विमर्श और मूल्यांकन, पृष्ठ 44-45

15.8 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. रीता गौड़; नरेश मेहता की काव्य-भाषा का अनुशीलन ।
2. रामकमल राय; नरेश मेहता कविता की ऊर्ध्वयात्रा ।
3. डॉ. विष्णु प्रभा शर्मा; श्री नरेश मेहता की वैष्णव काव्य-यात्रा ।
4. प्रभाकर शर्मा; नरेश मेहता का काव्य : विमर्श और मूल्यांकन ।
5. श्री नरेश मेहता; प्रवाद पर्व ।

इकाई - 16

'प्रवाद पर्व का अभिव्यंजनात्मक पक्ष

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 काव्य परिचय

16.3 प्रवाद पर्व का अभिव्यंजना पक्ष

16.3.1 प्रवाद पर्व का भाषा-विधान

16.3.1.1 शब्द-प्रयोग

16.3.1.2 सूक्ति-प्रयोग

16.3.2 प्रवाद पर्व में प्रयुक्त अप्रस्तुत विधान

16.3.3 प्रवाद पर्व में प्रतीक विधान

16.3.4 प्रवाद पर्व में बिम्ब विधान

16.3.5 प्रवाद पर्व में छन्द एवं काव्य-रूप

16.4 सारांश

16.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.6 पाठ में संकलित संदर्भ

16.7 संदर्भ ग्रंथ

16.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई श्री नरेश मेहता के द्वारा रचित एक उल्लेखनीय खण्ड काव्य 'प्रवाद पर्व' के अभिव्यंजना पक्ष से सम्बन्धित है । प्रस्तुत इकाई में श्री नरेश मेहता की काव्यकला के परिप्रेक्ष्य में 'प्रवाद पर्व' के शिल्पगत सौंदर्य का विवेचन किया गया है । इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

- विद्यार्थी श्री नरेश मेहता के भाषा, अप्रस्तुत, प्रतीक, बिम्ब एवं छन्द-विधान विषयक मानदण्डों से परिचित हो सकेंगे
- नरेश मेहता ने काव्य-सृजन के दौरान अनुभूतिपक्ष एवं अभिव्यक्ति पक्ष के मध्य सन्तुलन को जान सकेंगे ।
- नरेश महेता के 'प्रवाद पर्व' नामक काव्य के शिल्पगत सौंदर्य से परिचित हो सकेंगे ।

16.1 प्रस्तावना

'प्रवाद पर्व श्री नरेश मेहता द्वारा रचित रामकथा के प्रसंग पर आधारित एक खण्डकाव्य है। यह काव्य सन् 1975 में आपातकाल के दौरान लिखा गया था, परन्तु इसका प्रकाशन 1977 में हुआ। प्रस्तुत कृति में कवि ने राम-कथा के उस प्रसंग के माध्यम से जिसमें एक धोबी अग्नि-परीक्षा

दे चुकी सीता की पावनता पर प्रश्नचिह्न लगाता है, समसामयिक राजनीतिक परिवेश और उससे उत्पन्न समस्याओं और स्थितियों का पूर्ण कौशल के साथ निरूपण किया है ।

16.2 काव्य-परिचय

'प्रवाद पर्व' श्री नरेश मेहता की एक अनुपम प्रबन्धात्मक कृति है । सशक्त कथानक, सबल समसामयिकता और प्रभावपूर्ण अनुभूति पक्ष के साथ-साथ मौलिक अभिव्यंजना कौशल ने प्रस्तुत कृति को नयी काव्य-परम्परा की अग्रणी पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया है । इस कृति के कथानक का मूल केन्द्र सीता का निष्कासन है । जब राम रावण का वध करके अयोध्या लौटते हैं, तब अयोध्या का एक धोबी सीता की चरित्र-मर्यादा पर उँगली उठाता है । शासक वर्ग इसे अनुचित मानता है किन्तु राम की दृष्टि में यह उचित है । राम की मान्यता है कि लोकतंत्र में सभी मनुष्यों को चाहे वे किसी भी वर्ग से सम्बन्धित हों, अपनी बात कहने का अधिकार होना चाहिए । इस काव्य में पाँच सर्ग हैं जिनमें कवि ने राजपुरुष, राज्य और सामान्य जन के निकट सम्बन्धों को स्पष्ट किया है । यहाँ उन्होंने अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर जोर दिया है । यहाँ उन्होंने शासक की तटस्थ एवं अनासक्त मनस्थिति का भी चित्रण किया है । शासक को सामाजिक जीवन के प्रति सजग होकर व्यक्तिगत सुख- सुविधाओं का परित्याग करना आवश्यक होता है । विदा के समय राम का व्यक्ति-मन चंचल हो उठा है । वे प्रेम से अभिभूत हो गये हैं, लेकिन निर्णय देते समय उनका न्यायप्रिय प्रशासकीय मन दृढ़ रहा है । उन्होंने यह व्यक्त कर दिया है कि न्याय और कानून से ऊपर कोई नहीं हो सकता है । इसमें एक तथ्य यह भी निरूपित हुआ है कि सीता इतिहास-पुरुष के बाजू में एक प्रतिमा बनकर खड़ी है । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि सीता के चरित्र को मानवीय आदर्शों और इतिहास-पुरुष की कर्तव्यशीलता के प्रति समर्पित दिखाना चाहते हैं, भारतीय स्थिति के अनुरूप सीता की संस्कारशीलता को दृढ़ करना चाहते हैं । एक बात यह भी है कि व्यक्ति की अनासक्त असंग स्थिति में निरन्तर कर्मरत रहते हुए जीवन-मूल्यों की खोज करना और मानवीय गरिमा को प्रतिष्ठित करना भी कवि का लक्ष्य रहा है । 'प्रवाद पर्व' निश्चित ही इन सभी भाव-भूमियों को सफलता से निरूपित कर सका है । इस काव्य में सामयिक संदर्भ और सत्ता की तानाशाही के रूप को भी प्रतिबिम्बित देखा जा सकता है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि यहाँ कवि युगबोध और समसामयिक परिस्थितियों से जूझता हुआ मानवीय चेतना के विकास को प्रज्ञा-प्रतीक राम के माध्यम से व्यक्त करने में पूरी तरह समर्थ हुआ है ।

16.3 'प्रवाद पर्व' का अभिव्यंजना-पक्ष

प्रत्येक रचनाकार का अपना-अपना अभिव्यंजना-बोध अथवा शिल्प-बोध होता है जिसमें कवि की वैयक्तिकता ही अधिक विद्यमान रहती है । कभी-कभी एक ही युग-परिवेश एवं संस्कार के प्रभाव से अनुप्रेरित कवि के शिल्प एक-से प्रतीत होते हैं, फिर भी उनमें विविधता आवश्यक होती है । इसी दिशा में नये कवि अपनी मनोनुकूल शैलियों के कई तत्व लेकर अपनी-अपनी मिट्टी की मूरत गढ़ने की कोशिश करते हैं । अपनी अनुभूतियों का रंग भरते हैं और इस प्रकार अपनी विशिष्टता की छाप इन शैलियों पर लगाते हैं । इसी से उनके काव्य के अभिव्यंजना पक्ष की पृष्ठभूमि तैयार होती है। काव्य के संदर्भ में शिल्प अभिव्यंजना पद्धति का बोध कराता है ।

श्री नरेश मेहता द्वारा रचित 'प्रवाद पर्व' अनुभूति पक्ष की दृष्टि से जितनी सशक्त एवं सबल कृति है, अभिव्यंजना पक्ष की दृष्टि से भी यह उतनी ही महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय कृति है । भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अनुसार किसी भी कृति के अभिव्यंजना पक्ष के विवेचन के आधारभूत तत्व भाषा-शैली, अलंकार विधान, प्रतीक विधान, बिम्ब विधान, छन्द प्रयोग और काव्य-रूप माने गये हैं । इन तत्वों के संदर्भ में 'प्रवाद पर्व' काव्य का मूल्यांकन किया जा रहा है ।

16.3.1 'प्रवाद पर्व' का भाषा-विधान

भाषा ही वह प्राणशक्ति है, जिसके माध्यम से कवि या रचनाकार अपने अनुभव को पाठकों तक सम्प्रेषित करता है । सच्ची काव्य-भाषा वही कहलाती है जिसमें सम्प्रेषणीयता का गुण विद्यमान हो । रचनाकार स्वत: उद्भूत शब्दावली में रचना करता है, क्योंकि कविता मन के भावों का मूर्त रूप है । भाषा परिवर्तनशील होती है तथा देशकाल और वातावरण के साथ भाषा में भी बदलाव आता है । नरेश मेहताप्रधानत: परिष्कृत भाषा के प्रयोक्ता कवि हैं, किन्तु अपनी भाषा को जनसामान्य के निकट लाने के लिए उन्होंने तत्सम शब्दों को कहीं-कहीं इतना सरलीकृत कर लिया है कि वे पाठक से आत्मीय रिश्ता कायम कर लेते हैं । उनकी मान्यता है कि वास्तव में भाषा काव्य-भाषा का रूप तभी ग्रहण करती है, जब कवि सजग रहता हुआ अपनी भावानुभूतियों और विचारणाओ को सही शब्द के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है । नरेश मेहता ने प्रवाद पर्व की भूमिका में लिखा है कि "प्राय: तो भाषा के स्तर पर ही अधिकांश कवि, काव्य-श्रोता तथा पाठक काव्यात्मकता की तलाश में रहते हैं । कितने जानते हैं कि काव्य भाषा को शब्द और अर्थ से मुक्ति दिलाने की प्रक्रिया है । भाषा के बंधन का नहीं, मुक्ति का नाम काव्य है । " भाषा के सम्बन्ध में नरेश मेहता प्रयोगशील प्रवृत्ति के व्यक्ति थे । उन्होंने स्वयं प्रारम्भ में भाषा सश्वश्वी प्रयोग किए थे, जो विशेष तौर पर सप्तमी के प्रयोग थे । वे भाषा को सहजता से नहीं, गम्भीरता से लेते थे और भाषा के विषय में उनका चिन्तन स्थूल न होकर सूक्ष्म था । वे भाषा को विकास की एक अनवरत प्रक्रिया मानते थे जो उचित है । उन्होंने भाषा के विवेचन को संस्कार से जोड़ा और भाषा के संस्कारित होने की अनिवार्यता पर बल दिया । उनकी भाषागत विशेषताओं के मूल्यांकन में शब्द-चयन, लोकोक्ति-मुहावरे, काव्य-गुण, शब्द-शक्तियाँ, शब्द-निर्माण की प्रवृत्ति और उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा के नये प्रयोग आदि का पर्याप्त महत्व है ।

16.3.1.1 शब्द-प्रयोग

श्री नरेश मेहता की अन्य काव्य-कृतियों के अनुरूप 'प्रवाद पर्व' में भी कवि ने तत्सम, तद्भव, विदेशी(उर्दू-फारसी), ब्रजभाषा और बंगला के शब्दों का प्रयोग किया है । कुछ बिम्बधर्मी विशेषण शब्दों का प्रयोग भी किया गया है । निर्मित शब्दावली तथा ध्वनिमूलक एवं विशिष्ट शब्दों का भी प्रयोग प्रस्तुत काव्य में किया गया है । तत्सम शब्दों में प्रारब्ध, निर्मम-कर्म, व्यक्तित्व, प्रत्यंचा, संधान, पात्र, अपात्र, अपौरुषेय, प्रतिध्वनि, अवरोध, क्षितिज, अनन्त काल, शून्य, व्योमसिद, ललाट, अग्निपर्व, प्रतियात्रा, आगतशब्दोंवली मानवीय प्रज्ञा, व्याघ्रचर्म, वैशानरी, संकल्प-जल, कंठमाल, राजशक्ति, अग्नि-गुंजलक, सदाशिव, लीलामय, मन्वन्तर, तर्जनी, पिपीलिका, संज्ञाहीन, जीवन्तता, अज्ञात,

श्रेयसु, मेदिनी, वैश्वानरी, संधानित, अभियुक्त, प्रासंगिकता, शीर्षजन तथा दूरगामी आदि शब्द उल्लेखनीय हैं । कवि के द्वारा प्रयुक्त तत्समशब्दों के सम्बन्ध में एक बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि कवि ने अपने सभी काव्य-संग्रहों में कुछ अप्रचलित तत्समशब्दों का प्रयोग किया है । 'प्रवाद पर्व' भी इसका अपवाद नहीं है । इस प्रकार के शब्दों में पृथुज्जन, वरेण्य, प्रतिइतिहास, प्रणव, पर्जन्य,आप्त, ऋतम्भरा, सैन्धव, उपत्यका, अगत्या, व्योमकेश, प्रणव, प्रत्यंचा, निष्कृति, मन्वन्तर, उत्कीर्णित, कौस्तुभ, चीनाशुक, दाक्षिणात्य, वैश्विक, गायत्रिन, बिल्वपत्र आदि-परन्तु उनकी भाषा की इस विशिष्टता को किसी भी स्थिति में उसका दोष नहीं माना जा सकता है ।

'प्रवाद पर्व' के शब्द भण्डार में तद्भव शब्दों का भी महत्वपूर्ण स्थान है । इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग कवि ने मूलत: अपनी अभिव्यक्ति को सरल और प्रेषणीय बनाने के लिए, भाषा में ताजगी लाने के लिए तथा अपनी भाषा को जनसामान्य से जोड़ने के लिए किया है । प्रस्तुत काव्य में आये तद्भव शब्द हैं- देह, दूब, पितर, धू-धू, आग, बावड़ी, काई खायी, हरहराने, धोबी, लकड़ियाँ, गूंगेपन, देख-बाँचकर, बाँशी-भाषा, माटी-भाषा, चिन्ता, हिल्लोलता, उफनतापन, डूबना-उतराना, पैठना, साँकल, दालान, पगडण्डी, ओट, फूल, पड़ाव, घोड़ा आदि । श्री नरेश मेहता ने प्रस्तुत काव्य में विदेशी शब्द भण्डार से उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है । प्रस्तुत काव्य में प्रयुक्त इस प्रकार के शब्दों में दस्तक, कोलाहल, अनाम, देह, दस्ते, दुस्साहस, उफनतेपन आदि उल्लेखनीय हैं ।

'प्रवाद पर्व' के शब्द-भण्डार में बिम्बधर्मी विशेषण शब्दों का प्रयोग भी विशिष्ट स्थान रखता है । ये शब्द पाठकों के समक्ष लेखक के अनुभूत का बिम्ब प्रस्तुत कर, देते हैं । इस प्रकार के शब्दों में धारदार वस्त्र, क्षितिज-अवरोध, यात्रा-तपस्या, एकान्त गरुड़, व्योमसिद्ध, आदिम जिज्ञासा, अग्नि-त्रिपुण्ड, अनुष्ठान, भागवत, वैश्वानरी विवशता, निरीह-नेत्र, पिपीलिकावत साधारणता, पुराण-पुरुष, मानवीय विष्णु, ऋतम्भरा व्यक्तित्व, मन्वन्तरीय फलक, गायत्री-सत्य, यज्ञ-पुरुष, दाक्षिणात्य चन्दनगन्धी हवाएँ, पुष्पीय विपुलता, बाँशी-भाषा, माटी-भाषा, अशान्त समुद्र, एकान्त उपत्यकाएँ, यज्ञ-अरणियों, रक्त अलक्तक चरण, आकाशवर्णी पुरुष, अनागरिक सन्यासी, स्फटिक चरित्र, अग्नितपी, वानस्पतिक उपाख्यान, घटना-कवच, वल्कली संस्पर्शिता, निस्पृह सौम्यता, माधवी प्रिया आदि शब्द उल्लेखनीय हैं । यहाँ कवि ने गिने-चुने ब्रजभाषा के शब्दों के साथ ही निर्मित शब्दोंवली एवं ध्वनिमूलक शब्दों का भी प्रयोग किया है । उन्होंने नये शब्दों का निर्माण भाषा को सहजता, सम्प्रेषणीयता और औचित्य प्रदान करने के उद्देश्य से किया है । उन्होंने कहीं-कहीं उपसर्ग और प्रत्यय के योग से भी शब्द निर्माण कर लिया है । कतिपय निर्मित शब्द ऐसे भी हैं जो संज्ञा से विशेषण बनाये गये हैं और कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो क्रिया से विशेषण बनाये गये हैं । इस प्रकार के शब्दों में अहोरात्र, मंत्रित, उत्सवित, अनप्रश्निन, अनुत्तरित, अदिशा, चुम्बकता, असंग, रागात्मिकाओं, प्रतिहवन, आवाहोत्सव, प्रतिइतिहास, आक्षण, समुद्रघोष, प्रतिगरिमा आदि का उल्लेख किया जा सकता है । कहीं-कहीं उन्होंने दो शब्दों के मेल से भी नये शब्दों का निर्माण किया है ।

नरेश मेहता ने अपने सम्पूर्ण काव्य की भाषा में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो रेखांकित करने योग्य भी हैं और विशिष्ट भी हैं । 'प्रवाद पर्व' में प्रयुक्त 'पृथुज्जन' इसी प्रकार का एक आकर्षक शब्द है । 'पृथु' शब्द का अर्थ है पृथ्वी और इसलिए इस शब्द का प्रयोग साधारण जन के अर्थ में

किया गया है । उन्होंने अपनी भाषा में लाक्षणिकता को पूरी ईमानदारी से स्थान दिया है । यथा - असंग कर्म, भागवत अनुष्ठान, व्योमसिद्ध, अग्नि-त्रिपुण्ड, वैश्वानरी विवशता, ऋतम्भरा व्यक्तित्व, पीपल-पुरुष, बाँषी-भाषा, माटी-भाषा, अग्नितपी, वानस्पतिक उपाख्यान आदि ।

16.3.1.2 सूक्ति-प्रयोग

नरेश मेहता ने अपनी काव्य-भाषा में अनेक सूक्तियों का प्रयोग करके भाषा में प्रभविष्णुता, गम्भीरता और सम्प्रेषणीयता का समावेश कर दिया है । ये सूक्तियाँ कवि के गहन चिन्तन का जीवन्त प्रमाण हैं । उनके प्रवाद पर्व में भी इस प्रकार का प्रभावशाली सूक्ति-प्रयोग देखा जा सकता है जिनसे कवि की निजी मान्यताएँ, सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् की भावना अभिव्यक्त होती है । इन सूक्तियों ने काव्य की भाषा को अर्थगाम्भीर्य, प्रेषणीयता और वैष्णवता के गुणों से संवलित किया है । कतिपय उदाहरण द्रश्टव्य हैं -

1. आग पर कोई नहीं केवल
   पिपीलिका ही चल सकती है ।
2. साधारणता से इतर
   सृष्टि में कहीं कोई सहिष्णुता नहीं ।
3. पुराण पुरुष/ मानवीय देशकालता से ऊपर नहीं होता
4. राज्य या न्याय सम्बन्ध नहीं होता
   सत्ता के गोमुख पर बैठकर
   उसके सारे शक्ति जलों को
   अपने ही अभिषेक के लिए सुरक्षित रखना
   कहो कौन-सा दर्शन है लक्ष्मण?
5. राज्य को सामूहिक आकांक्षा का
   प्रतीक बनने दो
6. जिस दिन मनुष्य अभिव्यक्तिहीन हो जायेगा
   वह सबसे अधिक/ दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा ।

उपर्युक्त उद्धरण इस बात को संकेतित करते हैं कि नरेश मेहता सूक्ति-प्रयोग में कुशल हैं । कुछ सूक्तियाँ ऐसी भी हैं जो देखने में साधारण कथन-सी हैं, किन्तु यदि प्रसंग से जोड़कर उन्हें देखा जाये तो उनकी सूक्तिपरकता पाठक के सामने उजागर हो जाती है । उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा पाठक के मर्म को छू जाती है और पाठक कवि की प्रयोगगत नवीनता से अभिभूत हो उठता है । उनकी भाषा आश्चर्य चिन्तनपरक भाषा है । उसमें प्रेषणीयता, प्रवाहशीलता, चित्रोपमता, प्रकृति-सौंदर्य से युक्तता, भावमयता, लयात्मकता, उदात्ता, सरलता, कथ्य एवं प्रसंगानुकूलता आदि गुण विद्यमान हैं ।

16.3.2 'प्रवाद पर्व' में प्रयुक्त अप्रस्तुत विधान

किसी भी काव्य के शिल्प-पक्ष में अप्रस्तुत विधान या उपमान योजना पर्याप्त महत्व रखती है । अप्रस्तुत विधान के सही प्रयोग से काव्य-भाषा का सौंदर्य तो बढ़ता ही है, अभिव्यक्ति में भी नवीनता, चारुता और अतिरिक्त आकर्षण उत्पन्न हो जाता है । नये कवियों ने अलंकार-योजना की अपेक्षा उपमान-योजना पर अधिक ध्यान दिया है तथा एक स्वर से उपमानों की काव्यगत महत्ता और आवश्यकता को स्वीकार किया है । अप्रस्तुत योजना का दूसरा नाम उपमान योजना है । उपमान सौंदर्याभिव्यक्ति के महत्तम साधन हैं । इनके माध्यम से वर्ण्य-विषय को सौंदर्य प्राप्त होता है और उसमें अतिरिक्त आकर्षण आ जाता है । उपमान सम्प्रेषणीयता में सहायक होते हैं । इनके माध्यम से अनेक बार वर्ण्य-विषय मूर्तित होकर सामने आ जाता है । इनके सहारे अनेक बिम्ब निर्मित होते हैं और उन बिम्बों से कविता का सौंदर्य बढ़ता है और कवितागत अनुभूति साकार होती हुई पाठक के गले उतर जाती है । "उपमान वस्तुत: काव्य का प्राण तत्व है । इससे काव्य में रसाद्दता, प्रभविष्णुता, प्रेषणीयता और मर्मस्पर्शिता का संचार होता है । अप्रस्तुत योजना से प्रकृष्ट रूप से संयोजित कविता पाठक एवं श्रोता को काव्यानन्द प्रदान करने में सहायक होती है । "

कविता में प्रयुक्त होने वाले अप्रस्तुत सदैव एक जैसे नहीं होते हैं, क्योंकि कवि का कल्पना-जगत् विशाल होता है । कवि के मन में तरंगित होने वाली भावनाएँ कभी तो प्रकृति की ओर देखती हैं, कभी धर्म, संस्कृति, पुराण, इतिहास और कला की ओर दृष्टिपात करती हैं । यह दृष्टिपात वे जानबूझकर नहीं करती हैं, अपितु कथ्य की सप्राणता और अनुभूतियों की सघनता स्वयं अपने अनुकूल स्त्रोत तलाश कर लेती है । ये स्त्रोत ही अप्रस्तुतों का रूप निर्माण करते हैं । स्त्रोतगत विविधता के आधार पर ही अप्रस्तुतों का वर्गीकरण किया जाता है । स्थूल रूप से देखा जाये तो अप्रस्तुत दो प्रकार के होते हैं - प्राचीन और नवीन । प्राचीन अप्रस्तुतों के अन्तर्गत उन अप्रस्तुतों को स्थान प्राप्त है जो वैदिक काल से लेकर अब तक चले आ रहे हैं तथा बहुप्रयुक्त होने के कारण रूढ़ हो गये हैं । नये अप्रस्तुत वे हैं जो सामाजिक परिवेश, समकालीन जीवन और कवियों की प्रकृति और जीवन के प्रति नवीन दृष्टि से उद्भूत हुए हैं या दैनन्दिन जीवन से सम्बन्धित हैं । नयी कविता यथार्थ जीवन की कविता रही है इसलिए उसके अन्तर्गत कोमल, मूर्त, अमूर्त, परुष और दैनिक जीवन के विविध कार्य-कलापों से सम्बन्धित अप्रस्तुतों को भी काम में लिया गया है । नयी कविता के संदर्भ में- अप्रस्तुतों को छ: वर्गों में विभक्त किया गया है- प्राकृतिक अप्रस्तुत, सांस्कृतिक अप्रस्तुत, वैज्ञानिक अप्रस्तुत, समकालीन जीवन एवं परिवेश से गहीत अप्रस्तुत, संगीतपरक अप्रस्तुत और कलापरक अप्रस्तुत ।

नरेश मेहता प्रकृति, उदात्त प्रेम और वैष्णवता के कवि हैं । उनके काव्य में आये अप्रस्तुत न तो आरोपित हैं और न अनावश्यक हैं, अपितु कथ्य की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति के लिए और भाषा को असाधारणता प्रदान करने के लिए काम में लिये गये सार्थक अप्रस्तुत हैं । उन्होंने अपने काव्य के अभिव्यंजना पक्ष को और अधिक सशक्त बनाने के लिए जिस प्रकार के अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है, उनमें प्राकृतिक, वैज्ञानिक कलापरक तथा समकालीन परिवेश और जीवन से ग्रहीत अप्रस्तुत विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । उनके द्वारा प्रयुक्त सांस्कृतिक अप्रस्तुतों में ऐतिहासिक, पौराणिक, धार्मिक और औपनिषदिक अप्रस्तुत भी समाहित हैं । उनके काव्य में जितना महत्व प्राकृतिक अप्रस्तुतों का

है, उतना ही महत्व सांस्कृतिक अप्रस्तुतों का भी है । ये वे अप्रस्तुत हैं, जो काव्य की उदात्ता या कहें कि वैष्णवता के पर्याय बनकर आये हैं ।

प्राकृतिक अप्रस्तुत

जहाँ तक 'प्रवाद पर्व' में कवि के अप्रस्तुत विधान का प्रश्न है, प्रस्तुत काव्य में कवि ने केवल प्राकृतिक, सांस्कृतिक, कलात्मक एवं दैनिक जीवन से ग्रहीत अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है । उनके द्वारा यहाँ प्रयुक्त प्राकृतिक अप्रस्तुत मूलत: दो प्रकार के हैं - प्रथम तो वे जो परम्परा से ग्रहीत हैं और दूसरे वे जो आधुनिक परिवेश से ग्रहीत हैं । दोनों ही प्रकार के प्राकृतिक अप्रस्तुतों के प्रयोग ने प्रस्तुत काव्य के अभिव्यंजना-पक्ष को सशक्त आधार प्रदान करने में महती भूमिका निभाई है । इस प्रकार के अप्रस्तुतों के प्रयोग से उनकी अभिव्यक्ति अधिक मार्मिक और सम्प्रेषणीय बन गयी है । उदाहरणार्थ :

और हम
जल की विशाल हिल्लोलता में
विवश नारिकेल से
डूबने-उतराने लगतें हैं ।
+ + +
केवल हम ही
असंख्य पगडण्डियों भरी
धरती की विस्तीर्णता में
वनस्पतिवत् खड़े कर दिये जाते हैं
जैसे
हम यात्रा करते वृक्ष हों ।
+ + +
इतिहास को भी वनस्पतियों की भाँति
सम्पूर्ण मेदिनी की
शोभा और गन्ध होने दो,
उसे मानवीय अभिव्यक्ति का
औपनिषदिक पद दो ।

इन उदाहरणों में कवि ने कहीं प्रभावसाम्य से, कहीं गुणसाम्य से और कहीं धर्मसादृश्य के आधार पर प्राकृतिक अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है । नरेश मेहता के अप्रस्तुत विधान में जो नवीनता और सौंदर्य विधायकता है, वह कम ही कवियों में देखी जा सकती है । यहाँ 'और हम जल की विशाल हिल्लोलता में विवश नारिकेल-से डूबने-उतराने लगते हैं' कहकर कवि ने प्राकृतिक अप्रस्तुत का आकर्षक एवं सार्थक विधान किया है ।

सांस्कृतिक अप्रस्तुत

नरेश मेहता एक सांस्कृतिक दृष्टि-सम्पन्न कवि हैं । यही कारण है कि उनके सम्पूर्ण काव्य की भाँति प्रवाद पर्व में भी सांस्कृतिक अप्रस्तुत देखे जा सकते हैं । ये अप्रस्तुत इतिहास, पुराण, धर्म,

दर्शन एवं संस्कृति से सम्बन्धित हैं जो वर्तमान परिवेश में भी अपनी प्रासंगिकता रखते हैं । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

और उत्तर-
स्वयं प्रश्न बना
एकान्त गरुड़ सा
अपर ब्रह्माण्डों के पार
व्योमसिद्ध भाव से चला जा रहा है ।
+ + +
लगा कि जैसे
धरती को फोड़कर
कोई पुरालेख निकल आया हो
जिसे देख-बाँच कर
शक्ति पीली पड़ जाए ।
+ + +
और हम
अपने राजसी कुल-गोत्र को
खण्डित यज्ञोपवीत की भाँति उतार
साधारण अनामता धारण कर
नितान्त पृथ्वीपुत्र कर दिये जाएँगे ।

इन सभी काव्यांशों में प्रयुक्त अप्रस्तुत पुराण, इतिहास एवं संस्कृति के विविध पक्षों से लिये गये हैं । एकान्त 'गरुड़-सा', 'जैसे कोई पुरालेख निकल आया हो' तथा 'खण्डित यज्ञोपवीत की भाँति' आदि पंक्तियों में कवि के सांस्कृतिक अप्रस्तुतों की सार्थकता को देखा जा सकता है ।

कलात्मक अप्रस्तुत

कलात्मक अप्रस्तुत वे अप्रस्तुत होते हैं, जिनमें कवि अपनी अभिव्यक्ति के लिए कलाजगत् से उपकरण चुनता है । 'प्रवाद पर्व' में भी कहीं-कहीं इस प्रकार के कलात्मक अप्रस्तुत देखे जा सकते हैं । प्रस्तुत काव्य में एक स्थान पर कवि ने 'सृष्टि की बाँशी-भाषा' पंक्ति में कलात्मक अप्रस्तुत का प्रयोग किया है जो न केवल अनुपम एवं कलात्मक है, अपितु भावपूर्ण भी है ।

दैनिक जीवन एवं परिवेश से ग्रहीत अप्रस्तुत

दैनिक जीवन एवं परिवेश से ग्रहीत अप्रस्तुत भी प्रस्तुत काव्य 'प्रवाद पर्व' में यत्र-तत्र मिल ही जाते हैं । काव्य के प्रारम्भ में आई ये पंक्तियाँ इस वर्ग के अप्रस्तुत-विधान का स्पष्ट प्रमाण हैं-

भले ही वह कर्म
धारदार अस्त्र की भाँति
न केवल देह
बल्कि
उसके व्यक्तित्व को

रागात्मिकताओ को भी काट कर रख दे ।
+ + +
जीवन भर
एक प्रत्यंचा-सा तना हुआ
कर्म के बाणों को वहन करने के लिए
पात्र या अपात्र
दिशा या अदिशा में सन्धान करने के लिए
केवल साधन है?
+ + +
राज्य भय के
एकमात्र स्वर्ण प्रतीक-सा बैठा हुआ
शक्ति का महाउपासक
एक सम्राट

उपर्युक्त उदाहरणों में कवि ने असंग कर्म की तीक्ष्णता को पाठकों के समक्ष घनीभूत रूप में प्रस्तुत करने के लिए उसके लिए 'धारदार अस्त्र' जैसे अप्रस्तुत का मर्मस्पर्शी प्रयोग किया है, जो यह भी अभिव्यक्त कर देता है कि मनुष्य किस प्रकार अनेक मानसिक यातनाओं को सहकर भी असंग कर्म करने के लिए विवश हो जाता है और वह कर्म के दो विपरीत ध्रुवों के मध्य एक प्रत्यंचा-सा तना रहता है ।

इस प्रकार कवि ने 'प्रवाद पर्व' काव्य में प्रकृतिपरक, सांस्कृतिक, कलापरक एवं दैनिक जीवन एवं परिवेश से ग्रहीत अप्रस्तुतों का ही अधिक प्रयोग किया है ।

16.3.3 'प्रवाद पर्व' में प्रतीक विधान

किसी भी स्तर की समान रूप वस्तु द्वारा किसी अन्य विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है । अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षताओं के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत, वस्तु, भाव, विचार, क्रियाकलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है । प्रतीकों का प्रयोग प्रस्तुत को अधिक भावव्यंजक बनाने के उद्देश्य से किया जाता है । यह भाषा का एक ऐसा क्रिया-व्यापार है जो शब्द की लक्षणा-व्यंजना शक्तियों पर आधारित होता है । काव्य में प्रतीक एक नहीं, अनेक कार्य करते हैं, यथा-विषय की व्याख्या, अलंकृति और सबसे महत्वपूर्ण कार्य है प्रतिनिधित्व करने की शक्ति या व्यंजना । इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि प्रतीक अनुभूति, भाव या किसी वस्तु की सही और सफल व्यंजना करते हैं । यही प्रतीकों की काव्योपयोगिता है ।

नरेश मेहता के काव्य के संदर्भ में प्रतीकों को प्रमुखत: तीन वर्गो में विभक्त किया जा सकता है - प्राकृतिक प्रतीक, सांस्कृतिक प्रतीक और युगबोध से सम्बन्धित प्रतीक । युगबोध से सम्बन्धित प्रतीकों में ही वैज्ञानिक एवं जन-जीवन से गृहीत व समस्याओं के उद्‌घाटक प्रतीकों को भी सम्मिलित किया गया है । नरेश मेहता एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपने काव्य में प्रतीकों का प्रयोग करके भाषा

की अर्थवत्ता और सम्प्रेशणीयता को तो बढ़ाया ही है, साथ ही साथ अनेक बार तो मामूली से मामूली शब्द को भी प्रतीकत्व प्रदान करके अर्थाभिव्यक्ति कर ली है । ऐसा करते समय उन्होंने यह भी प्रमाणित कर दिया है कि महत्व प्रतीक का नहीं होता, अपितु उसमें निहित अर्थ का होता है या प्रतीकार्थ का होता है ।

प्राकृतिक प्रतीक

प्राकृतिक प्रतीकों से अभिप्राय किसी भावना या किसी विचार को प्रतिनिधित्व देने वाले प्राकृतिक प्राणी या पदार्थ के क्षेत्रों से गृहीत प्रतीकों से है जिसके अन्तर्गत समस्त प्रकृति से सम्बद्ध प्रतीक, दृश्य जगत्, पशु-वर्ग एवं उनके द्वारा मानवीकृत मूर्त प्रतीक आ जाते हैं । 'वनपाखी सुनो', 'बोलने दो चीड़ को' और 'तुम मेरा मौन हो' आदि काव्य-कृतियों में कवि ने पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग किया है । उनके काव्य में 'महिर' प्रौढ़ावस्था का, 'रेत' वार्धक्य का, 'सूर्योदय' शैशव का और 'अश्वत्थ' पूज्य उदात्त भाव का प्रतीकार्थ लिए हुए है । ये सभी प्रतीक प्राकृतिक वर्ग में ही आते हैं । इनके माध्यम से कवि ने अपनी विविध भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है । अमलतास, कपास, मावसी केश, हंस, ज्वालामुखी और गुलाल आदि भी ऐसे ही प्रतीक हैं जो लगभग वही प्रतीकार्थ रखते हैं जो परंपरा से चले आ रहे हैं । नरेश मेहता का खण्डकाव्य 'प्रवाद पर्व' भी इस प्रकार के प्रतीकों भरा पड़ा है । यहाँ 'पिपीलिका' साधारण जन का, 'पीपल-पुरुष' शाश्वत जीवन-मूल्यों का 'बाँशी-भाषा' अभिव्यक्ति की मधुरता का, 'नारिकेल' मनुष्य की असहायता और विवशता का, 'आकाशवाणी' व्यक्तित्व की विशालता का, 'मेघवस्त्र' अलंकृत वस्त्रों के प्रतीक के रूप में प्रयोग में लाये गये हैं । एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

दिशाएँ उत्तर की प्रतीक्षा में
स्वयं प्रश्न बनीं
आकाश और ब्रह्माण्ड थामे खड़ी-खड़ी
वृद्ध हो रही हैं
+ + +

उपर्युक्त उदाहरणों में 'दिशाएँ' समाधान की खोज अर्थात् जीवन अस्तित्व रक्षण के लिए संघर्ष करते आधुनिक व्यक्ति का, 'आकाश और 'ब्रह्माण्ड' आस्था और अनास्था के तथा घास की पत्ती मर्यादा का प्रतीक है । उक्त सभी प्राकृतिक प्रतीकों की श्रेणी में समाहित किए जा सकते हैं।

सांस्कृतिक प्रतीक

नरेश मेहता सांस्कृतिक प्रतीकों के प्रयोग की दृष्टि से सर्वाधिक सशक्त कवि हैं । ये प्रतीक इस बात के द्योतक हैं कि कवि संस्कृति, दर्शन, धर्म, इतिहास और पुराण आदि के संदर्भो और उनकी महत्ता को कितनी गहराई से समझते हैं । उनकी काव्य-कृतियों में पौराणिक प्रतीक इस बात के प्रमाण हैं कि वे अपनी काव्य-यात्रा में वैष्णवता के पक्षधर रहे हैं । उनके काव्य में प्रयुक्त सांस्कृतिक प्रतीकों में राम, रावण, सीता, लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । इनके प्रयोग के द्वारा कवि ने न केवल इन पात्रों को प्रतीकत्व प्रदान किया है, अपितु उनके माध्यम से अपने आधुनिक बोध को भी अभिव्यक्ति दी है । उनकी 'संशय की एक रात', 'महाप्रस्थान' और 'पुरुष' आदि कृतियों के समान 'प्रवाद पर्व' भी सांस्कृतिक प्रतीकों की दृष्टि से उल्लेखनीय कृति है । इस कृति का नामकरण

भले ही स्पष्टत: प्रतीकात्मक न हो, परन्तु इसके चरित्र प्रतीकात्मक हैं । राम का प्रवाद प्रकारान्तर से आमजन का प्रवाद है, तो उसकी तर्जनी के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति-स्वातंत्र्य का बोध कराता है । आपातकालीन स्थिति का बोध भी 'प्रवाद पर्व' में प्रक्षेपित है । इस काव्य में वैचारिकता पर्याप्त मात्रा में है, अत: सभी सर्गो में विचार की सफल अभिव्यक्ति हुई है । सर्ग भी प्रतीकात्मकता लिए हुए है । प्रथम सर्ग 'इतिहास और प्रतिइतिहास' समकालीन सामाजिक चुनौती का, प्रति इतिहास और तंत्र सत्ता और व्यवस्था के जन के प्रति व्यवहार का, तृतीय सर्ग 'शक्ति: एक सम्बन्ध एक साक्षात्' जन के परतन्त्रता बोध एवं स्वतन्त्रता के लिए सत्ता के विरूद्ध संघर्ष का, चतुर्थ सर्ग 'प्रतिइतिहास और निर्णय' निरपेक्ष न्याय तथा भाषा-स्वातंत्र्य का, 'निर्वेद विदा' नामक अन्तिम और पाँचवा सर्ग असंगति का प्रतीक है । इस काव्य के चरित्र भी प्रतीक-रूप हैं । इस कृति में राम काव्य के नायक हैं । उन्हें जनसाधारण की स्वाधीनता और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का प्रतीक माना जा सकता है । इसलिए वे धोबी के कृत्य को राजद्रोह नहीं मानते हैं । वे आमजन के असंग कर्म के भी प्रतीक हैं । वे लोकतंत्र के प्रतीक हैं । सीता पृथ्वी व राम आकाश का भी प्रतीक हैं । स्वयं सीता के माध्यम से कवि ने इस प्रकार के भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की है-

विशालता और वैराट्य
भिन्न दिशाओं की ओर जाने वाली
भाव भूमियाँ हैं ।
मैं पृथिवी और
आप आकाश -
हमारी युति
हमारी सन्धि
सदा अप्राप्य क्षितिज ही रहेगी,

इसी प्रकार लक्ष्मण, भरत एवं मंत्री राष्ट्रवर्धन, राजतंत्र और सत्ता के प्रतीक हैं । रावण शक्ति-मद से चूर राष्ट्र का प्रतीक है तथा स्वतन्त्रता का अपहरण करते हैं । इस काव्य में कुछ प्राकृतिक प्रतीकों का भी सार्थक प्रयोग कवि ने किया है, जैसे - 'कंगूरा' अस्तित्व का प्रतीक है, तो 'गोमुख' मूल स्त्रोत का । सांस्कृतिक प्रतीकों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

मानवीय प्रारब्ध के ललाट पर
यह कैसा अग्नि-त्रिपुण्ड लिख दिया गया है कि
चारों ओर
केवल स्वाहा ही स्वाहा की
आवाह-वाणी:
वनस्पतियों से लेकर व्यक्तित्वों तक
सुनाई दे रही है ।
+ + +
कर्म के इस तटस्थ
भगवत-अनुष्ठान से

कोई मुक्ति नहीं ।
+ + +
यही है वह
रुद्रपाठ
जो सृष्टि के
मन्वन्तर-स्वरूप में
अहोरात्र उच्चरित है ।
+ + +
इतिहास -
मानवीय विष्णु की कण्ठश्री
वैजयन्ती है ।

उपर्युक्त उदाहरणों में 'अग्नि त्रिपुण्ड' निर्मम कर्म की अग्नि का, 'स्वाहा ही स्वाहा' कर्म की भट्ठी में निर्धूम जल रहे सभी मनुष्यों की विवशता का, 'भागवत अनुष्ठान' पवित्रता एवं मांगलिकता का, 'रुद्रपाठ मंगल' कामना का, 'वैजयन्ती' मानव-गाथा का प्रतीक हैं । इस प्रकार कह सकते हैं कि नरेश मेहता द्वारा रचित 'प्रवाद पर्व' काव्य प्रतीक-योजना की दृष्टि से अत्यन्त सार्थक एवं विशिष्ट कृति है । इस कृति में कवि ने प्रमुखत: प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग किया है । यद्यपि कुछ प्रतीक दैनिक जीवन एवं परिवेश से भी लिये गये हैं, परन्तु वे बहुत कम हैं । कवि के द्वारा प्रयुक्त कुछ प्रतीक ऐसे भी हैं जो मात्र प्रतीक नहीं हैं, बिम्ब भी है और मिथक भी ।

अत: कहा जा सकता है कि नरेश मेहता का 'प्रवाद पर्व' नामक काव्य प्रतीक-योजना की दृष्टि से विशिष्ट एवं उल्लेखनीय है । उन्होंने यहाँ प्रमुखत: सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक वर्ग के प्रतीकों से ही अपनी काव्य-भाषा को लाक्षणिक, व्यंजनात्मक एवं बिम्बधर्मी बनाया है । उनके प्रतीक सहजगम्य और सहज ही पाठक की चेतना में प्रविष्ट होने वाले हैं ।

16.3.4 प्रवाद पर्व में बिम्ब विधान

बिम्ब भावगुम्फित वे शब्द-चित्र होते हैं, जिनके मूल में राग-तत्व निहित होता है तथा जो अधिकतर सर्जनात्मक कल्पना से निर्मित होते हैं । बिम्ब में शब्दों की चित्रात्मकता, ऐन्द्रियता, अलंकृति और लाक्षणिकता, भावोद्बोधकता तथा भावोत्पादकता आदि चार प्रमुख लक्षणों का होना अनिवार्य है । डॉ. कैलाश वाजपेयी ने बिम्बों के छ: भेद किए हैं- दृश्य बिम्ब, वस्तु बिम्ब, भाव बिम्ब, अलंकृत बिम्ब, सान्द्र बिम्ब और विवृत बिम्ब । डॉ. नगेन्द्र ने बिम्बों को पाँच वर्गो में विभक्त किया है - दृश्य, लक्षित और उपलक्षित, सरल और संश्लिष्ट, खण्डित और समाकलित, वस्तुपरक और स्वच्छन्द बिम्ब ।

श्री नरेश मेहता के काव्य में प्रयुक्त बिम्ब-विधान को पाँच वर्गो में विभक्त किया जा सकता है - दृश्य या चाक्षुष बिम्ब, अलंकृत बिम्ब, भाव या विचार बिम्ब, परिवेश से ग्रहीत बिम्ब तथा संवेद्य बिम्ब । चाक्षुष बिम्बों में दृश्य गुण की प्रधानता होती है तो अलंकृत बिम्बों में दृश्यात्मकता या चाक्षुषता के साथ-साथ कोई न कोई अलंकार भी होता है । भावपरक बिम्ब भावप्रवण और भावानुभूति से प्रेरित

होते हैं और विचारपरक बिम्ब रचनाकार के विचारों का मूर्तीकरण होते है । विचारात्मक बिम्ब काव्य में जहाँ-जहाँ प्रस्तुत होते हैं, वहाँ-वहाँ रचनाकार के चिन्तन-अनुचिन्तन को बिम्बित करते चलते हैं । परिवेश से ग्रहीत बिम्ब यथार्थबोध से जुड़े होते हैं और रचनाकार की युगबोध के प्रति संसिक्ति और प्रतिबद्धता को उजागर करते हैं । संवेद्य बिम्ब ज्ञानेन्द्रियों के बोध से सम्बन्धित होते हैं । इस प्रकार के संवेद्य बिम्बों में ध्वनि, घ्राण, स्पर्श, रंग और आस्वाद्य बिम्ब स्वत: ही समाहित हो जाते हैं । नरेश मेहता के काव्य में ये सभी बिम्ब स्पष्टत: देखे जा सकते हैं । उनका 'प्रवाद पर्व' भी बिम्ब विधान की दृष्टि से एक श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट काव्य बन गया है । प्रस्तुत काव्य में लगभग सभी प्रकार के बिम्बों के उदाहरण मिल जाते हैं ।

दृश्य बिम्ब

जब कोई भी कवि अपनी सरल एवं सहज भाषा-शैली के द्वारा किसी वस्तु या वर्ण्य-व्यापार को शब्दबद्ध करते हुए उसका स्पष्ट चित्र पाठक के समक्ष उतार देते हैं तब काव्य में चाक्षुष या दृश्य बिम्ब होता है । ये बिम्ब भी दो प्रकार के होते हैं - स्थिर चाक्षुष बिम्ब और गतिशील चाक्षुष बिम्ब । नरेश मेहता के काव्य में प्रयुक्त इस प्रकार के बिम्बों -का मूल स्त्रोत प्रकृति ही है । उन्होंने संध्या, प्रभात, मेघों से घिरे आकाश, सूर्य, धूप और चाँदनी के बिम्ब प्रस्तुत करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है । 'प्रवाद पर्व' से एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

हम प्रत्येक बार
अथाह
अशान्त समुद्रों को चीर
क्षत-विक्षत
ज्यों ही शान्त तट पर
पहुँचने को होते हैं कि
एक घटना
एक व्यक्ति
फिर हमें तूफानों के उबलते
उफनतेपन में फेंक जाता है,
और हम
जल की विशाल हिल्लोलता में
विवश नारिकेल से
डूबने-उतराने लगतें हैं ।
+ + +
राम! यह कैसा दृश्य तुम देख रहे हो?
आम्र-कुंजों के बीच से जाता
ष्वेत घोड़ों वाला
प्रिया का यह राजरथ
और यात्रा को अस्वीकारती
तुम्हारी ओर

उड़ आने को आकुल
उसकी यह प्रकम्पित पताका ।

उपर्युक्त दोनों ही उदाहरण पाठकों के समक्ष अपने वर्ण्य-विषय को पूर्णत: साकार कर देते है । प्रथम उदाहरण में कवि ने अशान्त समुद्रों की उत्ताल लहरों के वेग के साथ डूबते-उतराते नारियल के माध्यम से परिस्थितियों के भँवर में फँसे मनुष्य की विवशता का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है तो दूसरे उदाहरण में राम के द्वारा सीता के निष्कासन के पश्चात् वन की ओर जाते राजरथ को सुन्दर दृश्य बिम्ब द्वारा प्रस्तुत किया है । दोनों ही उदाहरणों में चाक्षुष बिम्ब का सौंदर्य देखते ही बनता है ।

अलंकृत बिम्ब

नरेश मेहता ने अपने काव्य में अलंकृत बिम्बों का भी सुन्दर प्रस्तुतीकरण किया है । उनके इस श्रेणी के बिम्ब कहीं बोझिल और कहीं अलंकृत होकर भी सपाट और सरल बने रहे हैं । 'समय देवता' में उनके बोझिल अलंकृत बिम्ब देखे जा सकते हैं । प्रवाद पर्व में आये अलंकृत बिम्ब सीधे, सरल, सहज एवं प्रभावशाली हैं, उदाहरणार्थ

और उत्तर-
स्वयं प्रश्न बना
एकान्त गरुड़ सा
अपर ब्रह्माण्डों के पार
व्योमसिद्ध भाव से चला जा रहा है ।
+ + +
नहीं राम!
इतिहास को भी वनस्पतियों की भाँति
सम्पूर्ण भेदिनी को
शोभा और गन्ध होने दो,
उसे मानवीय अभिव्यक्ति का
औपनिशदिक पद दो,
व्यक्ति मात्र को
इतिहास में परिधानित होने दो,
लगे कि
इतिहास-
मानवीय विष्णु की कण्ठश्री
वैजयन्ती है ।

इन दोनों ही उदाहरणों में कवि ने सरल एवं सहज अलंकार-प्रयोग के द्वारा बिम्ब प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है ।

विचार एवं भाव बिम्ब

'प्रवाद पर्व' में कवि ने एक से बढ़कर एक प्रभावशाली भाव और विचार बिम्ब प्रस्तुत किए हैं । ये वे मानस बिम्ब हैं जो भाव एवं विचार-प्रेरित होते हैं और पाठकों के समक्ष रचनाकार की

भावानुभूतियों और विचारानुभूतियों को प्रत्यक्ष कराने में विशेष सहायक होते हैं । नरेश मेहता ने अपनी चिन्तनशीलता और भावुकता दोनों के ही चरम क्षणों में सृजन-धर्म अपनाते हुए इस प्रकार के बिम्बों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है । अग्रलिखित उदाहरण में कवि ने सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त असंग-कर्म करने की विवशता को अभिव्यक्त करने के लिए एक सशक्त भाव एवं विचार बिम्ब प्रस्तुत किया है जो पाठकों के समक्ष यह स्पष्ट कर देता है कि जिस प्रकार सागर अपनी अथाहता और असीमता के बावजूद ज्वारों के कशाघात सहने के लिए विवश होता है, वनस्पतियाँ जिस प्रकार दावानल से जलने के लिए, दीपक अग्नि से जलने के लिए विवश होता है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य असंग कर्म की भट्टी में निर्धूम जलने के लिए विवश होता है -

ज्वारों के कशाघात सहते
योजनों विस्तार में फैले
सागरों
समुद्रों को कभी देखा है?
यह कैसी वैश्वानरी विवशता है
जो वनस्पतियों से लेकर
दीपों की एकान्तता
वनों की अगाधता
आकाश की अगम्यताओं तक
अनासक्त भाव से व्याप्त है ।
सारे के सारे
विनम्र तथा उग्र वर्चस्व
संकल्प जलों की भाँति
नदियों, प्रपातों के रूप में
इस महाकाली
कर्म-शिवा का अभिषेक कर रहे हैं ।

परिवेश से ग्रहीत बिम्ब

सृजन के क्षणों में जब रचनाकार अपने आसपास पर दृष्टिपात करता हुआ, बहुत कुछ एक साथ अनुभव करने लगता है, तब सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व धार्मिक परिवेश में बिखेरे हुए सूत्र कविताबद्ध होने लगते हैं और तभी काव्य में परिवेश से ग्रहीत बिम्बों का सृजन होने लगता है । 'प्रवाद पर्व' में भी कवि ने इस प्रकार के बिम्ब प्रस्तुत तो किए हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है । कुछ उदाहरण दर्शनीय

क्या इसीलिए मनुष्य
देश और काल के विपरीत चुम्बकताओं में
जीवन भर
एक प्रत्यंचा-सा तना हुआ
कर्म के बाणों को वहन करने के लिए
पात्र या अपात्र

दिशा या अदिशा में सन्धान करने के लिए
केवल साधन है?
+ + +
यदि किसी
एकान्त
भयावह बावड़ी की
काई खायी
जर्जर विद्रूप चट्टानों को फोड़कर
प्रतिइतिहास का तेजस्वी
पीपल-पुरुष
हरहराने लगे तो
उसे चुनौती के स्थान पर
सहज सत्य की अभिव्यक्ति
क्यों नहीं माना जाना चाहिए?

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में कवि ने दैनिक जीवन के विविध उपादानों के माध्यम से बिम्ब का सृजन किया है और उसी के सहारे अपने कथ्य को पाठकों तक सम्प्रेषित करने का प्रयास किया है । प्रथम उदाहरण में 'विपरीत चुम्बकताओं', 'प्रत्यंचा' और 'बाणों' के माध्यम से बिम्ब का सृजन कर कवि ने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि मनुष्य देश और काल की विपरीत परिस्थितियों के मध्य उसी प्रकार तना रहकर कर्म करने के लिए विवश होता है, जिस प्रकार एक प्रत्यंचा दो विपरीत कोनों के मध्य लगी रहकर बाणों को वहन करने के लिए विवश होती है । दूसरे उदाहरण में कवि ने 'भयावह बावड़ी', 'काई खायी' जर्जर विद्रुप चट्टानों 'पीपल-पुरुष' आदि के माध्यम से बिम्ब का सृजन कर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि साधारण जन की भावाभिव्यक्ति को भी महत्व दिया जाना चाहिए । परिवेश से गृहीत बिम्बों में कुछ बिम्ब ऐसे भी हैं जो वैष्णव-बोध से सम्बन्धित हैं । इन बिम्बों में कहीं-कहीं गो-चारण, गो-दोहन आदि के बिम्ब भी आए हैं तथा कहीं-कहीं स्वाहा, अग्नि, वनस्पतियाँ, औषधि गंध, अग्निहोत्रिन और हवि आदि के संदर्भो को बिम्बों के माध्यम से व्यक्त किया गया है । ये बिम्ब यह प्रमाणित करते हैं कि कवि कल्पनालोक में ही नहीं विचरता, अपितु उसकी कवि चेतना परिवेश की ओर भी उन्मुख हुई है और उसने जीवन के विविध व्यापारों को बिम्बों में बाँधते हुए जीवन्त चेतना का परिचय दिया है ।

संवेद्य बिम्ब

संवेद्य बिम्ब इन्द्रिय-बोध पर आधारित होते हैं । इस प्रकार के बिम्बों में घ्राण, स्पर्श, रंग, आस्वाद्य आदि बिम्बों को विशेष स्थान प्राप्त है । यदि नरेश मेहता के सम्पूर्ण काव्य पर दृष्टिपात किया जाये तो उनके काव्य में सर्वाधिक संख्या इन्द्रियबोध पर आधारित संवेद्य बिम्बों की ही है । इनके काव्य में रंग-संवेद्य, ध्वनि संवेद्य, स्पर्श संवेद्य बिम्बों को अधिक ममत्व के साथ ग्रहण किया गया है । 'प्रवाद पर्व' काव्य भी इसका अपवाद नहीं है । उनके द्वारा सृजित इन बिम्बों की विशेषता यह है कि इनके प्रयोग से कवि की भाषा में एक विशेष सौंदर्य उत्पन्न हो गया है । ऐसा प्रतीत होता है मानो उनकी काव्य-भाषा इन संवेद्य बिम्बों के प्रयोग से अतिरिक्त सम्प्रेषणीयता से

युक्त होकर रंग, गंध, स्पर्श और ध्वनि के सहयोग से पाठकों से वार्ता कर रही हो । कहीं-कहीं कवि ने विविध इन्द्रिय बोध पर आधारित संश्लिष्ट बिम्ब भी सृजित किए हैं जो अत्यन्त आकर्षक बन पड़े है । कतिपय उदाहरण द्रश्टव्य हैं -

रंग, स्पर्श और गन्ध का संश्लिष्ट बिम्ब

सप्तपदी के बाद
तुम्हारे ये रक्त अलक्तक चरण
इक्ष्वाकुओं के राजभवन के
संगमरमरी सुगन्धित दालानों में नहीं
वरन
निषाद गुह और राक्षसों से भरे
असुरक्षित
अगम अरण्यों की ओर बढ़ेंगे?

स्पर्श संवेद्य बिम्ब

इतिहास भी आग होता है
और आग पर
कोई और नहीं
केवल
पिपीलिका ही चल सकती है,
संज्ञाहीन पिपीलिका!!

ध्वनि संवेद्य बिम्ब

समुद्रघोष की भाँति
जब वह बोलता था, तो
आज्ञापालन करती
दिशाएँ
प्रतिध्वनित होती थी ।

घ्राण संवेद्य बिम्ब

यह धूप का महोत्सव
दाक्षिणात्य चन्दनगंधी हवाएँ
गन्धमादन की पुष्पीय विपुलता
वानस्पतिकता का उदार
विपुल परिवार

प्रथम उदाहरण में कवि ने पूर्ण कौशल के साथ रंग, स्पर्श और गंध का संश्लिष्ट बिम्ब प्रस्तुत किया है। रक्त अलक्तक चरण, सप्तपदी आदि शब्दों के माध्यम से सुन्दर बिम्ब सृजित किया गया है । 'आग पर पिपीलिका ही चल सकती है' कहकर कवि ने न केवल साधारण जन की संघर्षशीलता और कर्मठता को अभिव्यक्त किया है, अपितु सुन्दर स्पर्ष संवेद्य बिम्ब भी प्रस्तुत किया है । इसी

प्रकार तीसरे उदाहरण मे समुद्रघोष से रावण की रौबदार आवाज की तुलना कर कवि ने ध्वनि संवेद्य बिम्ब का सृजन किया है त अन्तिम उदाहरण स्पष्टत: घ्राण संवेद्य बिम्ब प्रस्तुत करता है ।

इस प्रकार ये सभी बिम्ब इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि कवि नरेश मेहता के पास अद्भुत बिम्ब-निर्मात्री कल्पना है । कहीं तो उनके बिम्ब सहज अनुभूति को साकार करते हैं और कहीं इन्द्रियबोध के आधार पर हमारी चेतना में बिम्ब को उद्‌बुद्ध करते हैं । उनके लगभग सभी बिम्बों में गतिशीलता और प्रवाहमयता, औचित्यपरकता, जीवन्तता, भावमयता, मौलिकता, नवीनता, संष्लिष्टता आदि विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं ।

16.3.5 प्रवाद पर्व में छन्द एवं काव्य-रूप

प्रवाद पर्व में छन्द-विधान

किसी भी काव्य-कृति के अभिव्यक्ति-पक्ष में छन्द-योजना का विशेष महत्व है क्योंकि इससे काव्य-कृति में आन्तरिक एवं बाह्य -अनुशासन, प्रभावोत्पादकता, रागात्मकता, रमणीयता, सौंदर्य बोध, प्रभविष्णुता और प्रेषणीयता के गुण उत्पन्न होते हैं जो उसे सरस, ग्राह्य एवं प्रभावशाली बनाते हैं। छन्द बिखरे हुए विचारों और भावों को एक श्रृंखला में पिरो देते हैं । यों तो छन्द दो प्रकार के होते हैं- मात्रिक और वर्णिक । वर्णिक छन्दों में वर्णो की निश्चित संख्या और लघु-गुरू का निश्चित विधान रहता है । मात्रिक छन्द स्पष्टत: मात्राओं पर आधारित होते हैं । इनमें मात्राओं की निश्चित संख्या के साथ स्थान विशेष पर लघु-गुरू का निर्देश भी बना रहता है । नये काव्य के संदर्भ में छन्दों को परम्परागत, किंचित् परिवर्तित परम्परागत छन्द, मिश्रित परम्परागत छन्द, नवीन छन्द, उर्दू गजल, रूबाई, सानेट आदि वर्गो में विभक्त किया गया है । नरेश मेहता ने अपने काव्य में परम्परागत, मिश्रित और नवीन छन्दों का प्रयोग किया है, किन्तु यदि उनकी छन्द-योजना को उनके काव्य प्रवाद पर्व के संदर्भ में मूल्यांकित किया जाये तो यह निष्कर्ष सामने आ जाता है कि प्रस्तुत कृति में कवि ने मूलत: मुक्त छन्द का प्रयोग किया है । उन्होंने लय को आधार बनाया है और उनके काव्य में लय-वैविध्य भी देखने को मिलता है । लय को आधार बनाकर उन्होंने विशेषत: चतुर्मात्रिक ,पचमात्रिक ,षटमात्रिक, सप्तमात्रिक, अष्टमात्रिक और नवमात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है । इनमें भी उन्होंने सर्वाधिक सफल प्रयोग सप्तमात्रिक और अष्टमात्रिक छन्दों का ही किया है । यों पंचमात्रिक और षटमात्रिक छन्द भी उनके काव्य में देखने को मिल जाते हैं । 'प्रवाद पर्व' में प्रमुखत: पंचमात्रिक पर्व पर आधारित मुक्त छन्द का प्रयोग हुआ है और यहाँ इसके साथ ही चतुर्मात्रिक पर्व का भी प्रयोग देखने को मिलता है, किन्तु ऐसे प्रयोग अपवादस्वरूप ही हैं । प्रवाद पर्व में प्रयुक्त पंचमात्रिक पर्वाधारित मुक्त छन्द का एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

यदि किसी
एकान्त
भयावह
बावड़ी की
काई/ खाई
जर्जर विद्रूप चट्टानों को फोड़कर ।

यहाँ चतुर्मात्रिक छन्द के प्रयोग का भी एक उदाहरण देखा जा सकता है -

सीता! आज फिर एक अनाम साधारण
जन ने
तुम्हारी चरित्र मर्यादा की ओर
तर्जनी उठायी है ।

प्रवाद पर्व का काव्य-रूप

काव्य-रूप की दृष्टि से प्रवाद पर्थ एक प्रबन्ध कृति है जिसे खण्डकाव्य की श्रेणी में रखा गया है । यह कृति रामायण के उस प्रसंग पर आधारित है जबकि वनवास से लौटने के पश्चात् एक धोबी के द्वारा सीता की चरित्र-मर्यादा पर तर्जनी उठाये जाने पर राम उनका परित्याग कर देते है । कवि ने इस एक प्रसंग को बड़ी कुशलता के साथ आपातकालीन भारतीय परिवेश (1975) से जोड़ा है तथा इसके माध्यम से प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना का भी प्रयास किया है । इस कृति में मिथक का प्रयोग जहाँ पुराकथा में अभिव्यक्त भाव-बिन्दु को आधार बनाकर किया गया है, वहाँ समकालीन परिवेश के टकराव से उसकी वर्तमानकालिकता को सार्थकता प्रदान की गयी है । इसलिए मिथक और समकालीनता यहाँ परस्पर विरोधी न होकर पूरक बन गये हैं । इसकी काव्यरूपगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. यहाँ शास्त्रीय प्रबन्ध-विधान को स्वीकार नहीं किया गया है । इसमें कथा-तत्व क्षीण है, परन्तु जीवन-संघर्ष व्यापक, तीव्र एवं गहन रूप में अभिव्यक्त किया है । प्रस्तुत काव्य में सीता की चरित्र-मर्यादा पर उठे प्रश्न के माध्यम से कवि ने जीवन और राजनीति में व्याप्त संघर्ष को गहन रूप में अभिव्यक्त किया है ।
2. यहाँ सीता के प्रसंग के माध्यम से जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त किया गया है ।
3. 'प्रवाद पर्व' में कवि ने गृहीत मिथक के माध्यम से जीवन के विविध क्षेत्रों में मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया है ।
4. यह एक आधुनिक बोध से युक्त कृति है ।
5. नये खण्डकाव्यों के समान यहाँ भी कथात्मकता एवं घटनाक्रम का अभाव है ।
6. पात्रों का चरित्र-चित्रण समकालीनता के संदर्भ में किया गयास है । कवि ने राम, लक्ष्मण, भरत, सीता आदि पात्रों के माध्यम से उनके अन्तस् में छिपे प्रश्नों को उजागर करते हुए उन्हें समकालीन संदर्भ से जोड़ने का प्रयास किया है ताकि उन चरित्रों की विश्वसनीयता बनी रहे ।
7. भाषा, प्रतीक, बिम्ब एवं अप्रस्तुत प्रयोग की दृष्टि से भी यह एक उल्लेखनीय कृति है । इसमें सहजता है, कहीं भी शिल्प कथ्य पर भार नहीं बना है । यह एक ऐसी कृति है जिसकी भाषा में काव्यात्मकता है, शब्द-प्रयोग में नवीनता है और गहन तथा सशक्त प्रतीकात्मकता है । कवि ने भाषा को अर्थवत्ता प्रदान करने के लिए नवीन प्रतीकों का प्रयोग किया है । राम साधारणता के असंग कर्म के प्रतीक हैं, सीता विवेक की पुतली है और लक्ष्मण राजनयिक शक्ति के प्रतीक हैं । रावण को मदान्ध सत्ताधीश के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस काव्य की अप्रस्तुत-योजना भी नवीन और मौलिक है ।

8. इसमें प्रयुक्त मुक्त छन्द भी प्रसंग, परिस्थिति और कथ्य के अनुरूप, शब्द-साधना और प्रयोगवत्ता का परिणाम बनकर आया है ।

16.4 सारांश

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'प्रवाद पर्व' श्री नरेश मेहता की एक विशिष्ट एवं उल्लेखनीय प्रबन्ध-कृति है जो खण्डकाव्य के अन्तर्गत आती है । प्रस्तुत कृति का कथ्य जितना यथार्थपरक, समकालीन, प्रासंगिक एवं सशक्त है, उसका अभिव्यंजना पक्ष भी उतना ही प्रभावशाली एवं सबल है । कवि ने सीता की चरित्र-मर्यादा पर एक धोबी के द्वारा उठाये गयी तर्जनी जैसे छोटे से प्रसंग को अत्यन्त कुशलता के साथ 1975 के भारत के आपातकालीन परिवेश से जोड़कर न केवल साधारण जन के मौलिक अधिकारों की पैरवी की है, अपितु- आपातकाल के निरंकुश राजनीतिक परिवेश में प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना का भी स्तुत्य प्रयास किया है । भाषा-विधान, अद्भुत शब्द-संरचना, भावमय एवं प्रसंगानुकूल अप्रस्तुत योजना, सार्थक प्रतीक, मनोरम बिम्ब, मुक्त छन्द का सफल प्रयोग एवं नवीन साहित्य के स्वरूप के अनुकूल काव्य-रूप आदि विशेषताओं ने 'प्रवाद पर्व' कृति को अभिव्यंजना-पक्ष की दृष्टि से भी एक सबल, प्रभावशाली एवं सशक्त कृति बना दिया है ।

16.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'प्रवाद पर्व' काव्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
2. 'प्रवाद पर्व' के भाषा-सौष्ठव पर प्रकाश डालिए ।
3. 'प्रवाद पर्व' की अप्रस्तुत योजना पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए ।
4. "प्रतीक एवं बिम्ब विधान की दृष्टि से 'प्रवाद पर्व' एक सशक्त कृति है ।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में 'प्रवाद पर्व' का मूल्यांकन कीजिए ।

16.6 पाठ में सकलित संदर्भ

1. अमियचन्द पटेल; नरेश मेहता का काव्य; संवेदना और शिल्प, पृष्ठ 80
2. गिरिजाकुमार माथुर; नयी कविता सीमाएँ और संभावनाएँ, पृष्ठ 94
3. नरेश मेहता; प्रवाद पर्व की भूमिका, पृष्ठ 9
4. डॉ. विजयेन्द्र स्नातक; साहित्यकोश, पृष्ठ 43
5. डॉ. भागीरथ मिश्र; काव्यशास्त्र, पृष्ठ 294

16.7 संदर्भ ग्रंथ

1. पुत्तूलाल शुक्ल; आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना ।
2. डॉ. नामवरसिंह इतिहास और आलोचना ।
3. नरेश मेहता; प्रवाद पर्व ।
4. डॉ. शिवकुमार मिश्रा; नया हिन्दी काव्य ।

ISBN : 13/978-81-8496-134-8